सम्पूर्ण समाधान

नयी सामाजिक राजनैतिक अर्थ व्यवस्था

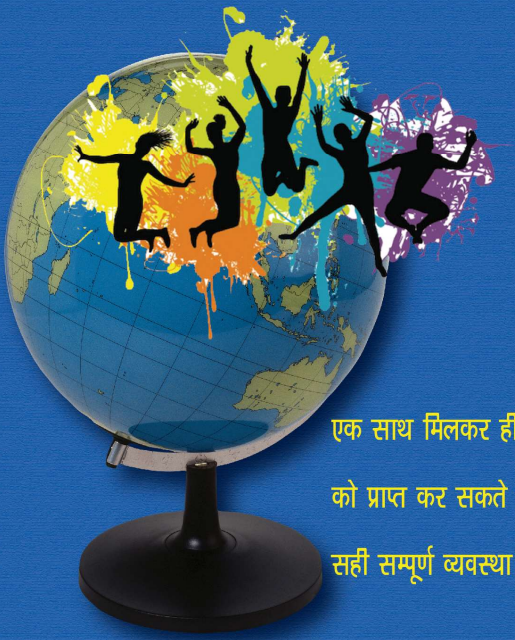

एक साथ मिलकर ही हम सारे सुखों को प्राप्त कर सकते हैं। यदि एक सही सम्पूर्ण व्यवस्था हो तो।

लेखक ... प्रेमजीत

सम्पूर्ण समाधान नयी सामाजिक राजनैतिक अर्थ व्यवस्था

तालिका

व्यवस्था में सरकार के उद्देश्य एवं जनमत संग्रह अभियान 0

इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य 4

अध्याय–1 6

जीवन का मूल उद्देश्य क्या है? 6

अध्याय–2 10

अर्थशास्त्र की मुख्य नीति 10

अर्थशास्त्र की मुख्य नीति में परिवर्तन 12

क्या ईच्छाएं अनंत हैं? 16

चिंतन मनन करने की प्रक्रिया 19

क्या प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं? 21

जनसंख्या नियंत्रण 24

आर्थिक समानता 30

क्या लोग अच्छे या बुरे होते हैं? 34

निष्कर्ष 37

अध्याय–3 39

मूल सिद्धांत 39

क्या हमें व्यवस्था की आवश्यकता है? 42

सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू? 44

अध्याय–4 50

सुखों के प्रकार 50

व्यक्तिगत सुख 51

शारीरिक सुख 52

मानसिक सुख 52

भावनात्मक सुख 53

चेतनात्मक सुख 55

पारिवारिक सुख 55

सामाजिक सुख 56

समष्टिगत सुख 58

अध्याय–5 63

सत्य 63

प्रेम 63

न्याय 65

पुण्य 66

सही व्यवस्था की कसौटी 67

प्राकृतिक का अर्थ 69

सांस्कृतिक का अर्थ 69

अध्याय–6 71

न्यायशील अर्थव्यवस्था 71

अर्थ की परिभाषा 72

न्यायशील अर्थव्यवस्था के मुख्य बिन्दु 75

अध्याय–07 78

सरकार की आवश्यकता क्यों 78

1. शिक्षण–प्रशिक्षण 79

15वर्षीय पाठ्यक्रम एवं उसका उद्देश्य 80

भाषा का प्रारूप 88

गणित का प्रारूप 90

संज्ञान का प्रारूप 91

दर्शन का प्रारूप 91

मनुष्य के प्रकार 93

पांच वर्षीय प्रशिक्षण विधान 96

शोधानुसंधान विधान 97

अध्याय–08 100

कर्म के प्रकार 100

राश्ट्रीय आजीविका नीति 102

आजीविका के प्रकार 103

कृषि आजीविका 104

वाणिज्यिक आजीविका 105

प्रशासनिक आजीविका 105

सांसदिक आजीविका 106

मान या वेतन समान क्यों? 107

भौतिक और आध्यात्मिक समस्याओं का कारण कौन? 109

अध्याय–09 112

सरकार, शासन या नेत्रत्व के गठन की प्रक्रिया 112

पात्रता 115

चयन की प्रक्रिया 115

आजीविका आयोगों के गठन की प्रक्रिया 118

संस्थाओं में नेत्रत्व के गठन की प्रक्रिया 118

प्रशासन या लोकसेवकों के गठन की प्रक्रिया 119

वाणिज्किक्षेत्र में लोगों के गठन की प्रक्रिया 119

कृषिक्षेत्र में लोगों के गठन की प्रक्रिया 120

राष्ट्रीय सुखसुविधा नीति 122

राष्ट्रीय संरक्षण नीति 122

अध्याय–10 126

समुचित अर्थशास्त्र 126

अर्थशास्त्र का अर्थ 126

कर्म की परिभाषा 127

ज्ञान, कर्म और भोग क्या हैं? 128

क्या सच में बेरोजगारी होती है? 135

मुद्रा का सही स्वरूप 138

वस्तुओं और सेवाओं के मूत्य की गणना 144

मान की गणना 146

शासन के स्वरूप 148

अध्याय–11 153

लोकगत शासन के लाभ	153
व्यक्तिगत सुखों की प्राप्ति	155
शुद्ध एंव उच्च गुणवत्ता वाले भोजन की प्राप्ति	157
सभी प्रकार की गंदगी से मुक्ति	161
संबंधों में वास्तविक प्रेम होगा	163
छोटे बड़े सभी युद्धों की सदैव के लिए समाप्ति	165
हानिकारक उत्पादों से मुक्ति	166
आयु एवं स्वास्थ्य में वृद्धि	166
मानसिक सुखों की प्राप्ति	167
भविष्य के प्रति सुरक्षा का भाव	168
आत्मिक सुखों की प्राप्ति	168
प्रतिद्वंदिता की समाप्ति	170
सहयोगिता की स्थापना	172
सारे अपराध जड़ से समाप्त	172
सभी प्रकार की नकारात्मकता की समाप्ति	173
सभी प्रकार के प्रचारों से मुक्ति	174
सत्य, प्रेम, न्याय और पुण्य का उदय	174
पारिवारिक सुखों की प्राप्ति	175
सामाजिक सुखों की प्राप्ति	176
सामष्टिक सुखों की प्राप्ति	176
प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग सुनिश्चित	177

अध्याय–12 181

मनुष्यों का वर्गीकरण 181

शारीरिक स्तर 184

मानसिक स्तर 185

भावनात्मक स्तर 186

चेतनात्मक स्तर 187

मानवजीवन की विकास यात्रा 188

अध्याय–13 189

मानवजीवनविकास के चार आयाम 189

मानवजीवनविकास के लक्षण 190

मानवजीवनविकास के उपाय 191

मानवजीवनविकास के लाभ 192

शरीरिक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय 193

मानसिक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय 195

भावनात्मक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय 199

चेतनात्मक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय 203

अध्याय–14 207

प्रश्नोत्तरी 207

अध्याय – 15 258

शारांश 258

नई व्यवस्था के होने वाले लाभ-

साथियों ये एक ऐसी व्यवस्था है जिसके आ जाने पर मनुष्य के जीवन में किसी भी प्रकार की कोई समस्याएं उत्पन्न ही नहीं होंगी और सभी प्रकार की सुख सुविधाएं सदैव पैदा होती रहेंगी स्वभाविक रूप से। इस व्यवस्था में पॉलिटिकल मॉडल इस प्रकार का है जिसमें सारी पावर जनता में निहित रहेगी चौबीसों घंटे, नाकि किसी एक आदमी में या किसी एक ग्रुप में। तो इस प्रकार से सदैव सारी ताकत जनता में निहित होने के कारण कभी भी कोई तानाशाही नहीं हो सकेगी और सारी व्यवस्था जनता की, जनता के अनुसार, जनता के लिए चलती रहेगी। यह सही मायने में लोकतंत्र होगा। इस व्यवस्था में नया दर्शनशास्त्र है नया अर्थशास्त्र है नया राजनीतिक शास्त्र है नया समाजशास्त्र है और नई शिक्षा व्यवस्था है। इस व्यवस्था के आ जाने पर बहुत सारे लाभ सब लोगों को होंगे। जिनमें कुछ ये हैं |

1. सभी विद्यार्थियों को उनकी इच्छा की शिक्षा उनको फ्री मिलेगी अर्थात जो भी विद्यार्थी जिस भी प्रकार की शिक्षा लेना चाहेगा उसे वह मिल सकेगी।
2. शिक्षा पूरी होने के बाद उसकी योग्यता और इच्छा अनुसार एक किसी कार्य में ट्रेनिंग यानी की दक्षता उसको फ्री मिल सकेगी।
3. उस दक्षता और इच्छा अनुसार ट्रेनिंग पूरी होने के बाद उसका रोजगार निश्चित रहेगा अर्थात बेरोजगारी समाप्त।
4. सभी को जन्म के बाद से ही सारी सुख सुविधाएं जो भी संभव होंगी उस समय पर, वह सभी को समान रूप से उपलब्ध रहेंगी अर्थात जिसको जब भी, जो कुछ भी चाहिए होगा, वह उसको मिल जाएगा केवल मांग कर देने भर से। पूरी व्यवस्था फ्री की है |
5. इस व्यवस्था में सभी का ऑनलाइन प्रोफाइल होगा जिसमें उनके बारे में सब कुछ लिखा हुआ होगा जैसे कि उनका नाम, उनका एड्रेस, उनकी आयु, उनकी योग्यता, उनकी दक्षता, उनकी पसंद, उनकी नापसंद, उनका फोटो आदि आदि। सभी कुछ मांग करने के लिए भी ऑनलाइन सिस्टम ही होगा| कोई भी प्रकार की शिकायत के लिए भी ऑनलाइन व्यवस्था ही रहेगी| अर्थात कहीं पर भी किसी के भी चक्कर लगाने की कोई जरूरत नहीं होगी सब कुछ सुविधाजनक रूप से हो रहा होगा।
6. क्योंकि व्यवस्था में धन नहीं होगा | इसलिए ना तो मांग करने के लिए धन की आवश्यकता होगी और ना ही किसी को वेतन आदि रहेगा।
7. सभी लोग अपनी इच्छा अनुसार कार्यों को बदलते रह सकेंगे और स्थान परिवर्तन भी करते रह सकेंगे| जहां पर भी वह स्थान परिवर्तन करेंगे वहीं पर उनके रोजगार और रहने सहने आदि की व्यवस्था रहेगी इस कारण सड़क पर ट्रैफिक बहुत कम रहेगा।
8. सभी लोगों की मांगे व्यवस्था में पहुंच जाएंगी | उसके बाद उनका प्रोडक्शन होकर मांग के अनुसार डिलीवरी हो जाएगी।
9. इस नई व्यवस्था में चाहे बच्चे हो चाहे महिलाएं हो चाहे युवा हो चाहे वृद्ध हो चाहे अति वृद्ध हो सभी अपनी इच्छा का जीवन जी पाएंगे जिसके फलस्वरूप सभी सुखी रहेंगे।

10. सभी संसाधन व्यवस्था के पास रहेंगे अर्थात मानव संसाधन और प्राकृतिक संसाधन दोनों व्यवस्था के पास होंगे | आवश्यकता के अनुरूप, मांग के अनुरूप व्यवस्था दोनों संसाधनों का मिलान करके प्रोडक्शन करेगी और उसकी डिलीवरी कर देगी।
11. इस नई व्यवस्था में सभी कुछ समाज का ही होगा अर्थात कोई भी व्यक्तिगत मालकियत या प्राइवेट ओनरशिप नहीं होगी। अर्थात जो जिस भी वस्तु अथवा सर्विस का इस्तेमाल कर रहा होगा और जितनी देर कर रहा होगा, उसका अधिकारी रहेगा | उसके छोड़ने के बाद वह फिर से समाज के पास वह वस्तु या सर्विस लौट आएगी। लेकिन जिसको जो चाहिए जब चाहिए वह मिल रहा होगा, जिससे व्यक्ति सदैव सुखी ही बना रहेगा।
12. इस नई व्यवस्था में धन नहीं होने के कारण ना तो कोई बैंक होगा, ना कोई टैक्स होगा, ना कोई इनकम टैक्स होगा, ना कोई टैक्स डिपार्टमेंट होगा, धन के कारण होने वाले जितने भी अपराध है वह नहीं होंगे। और इसीलिए ना उतनी ज्यादा पुलिस इत्यादि की आवश्यकता होगी। बाद में इस पुलिस की भी जरूरत नहीं रहेगी। तो यह एक बहुत ही सरल व्यवस्था होगी।
13. इसके साथ ही एक विश्व सरकार बनेगी जिसके अंतर्गत फौज रहेगी और सारे हथियार रहेंगे| तो इस व्यवस्था के आने के बाद विश्वव्यापी जो झगड़े हैं सीमाओं के वह भी सुलट जाएंगे | और देश के आधार पर कोई सेना नहीं रहेगी। विश्व सरकार केवल कुछ आर्मी रखेगी कि यदि किन्हीं देश के बीच कोई समस्या होती है तो वह उसको सुलझाएंगे। और जब यह व्यवस्था पूरे विश्व में आ जाएगी तो इस आर्मी की भी जरूरत नहीं रहेगी।
14. व्यवस्था में धन नहीं होने के कारण कोई भ्रष्टाचार भी नहीं रहेगा | और भ्रष्टाचार करने का कोई कारण भी नहीं रहेगा | क्योंकि जब सबको उनकी इच्छा अनुसार सब मिल ही रहा होगा तो वह किस लिए भ्रष्टाचार करेंगे या भ्रष्टाचार करने की सोचेंगे।
15. इस व्यवस्था में धन नहीं होने के कारण भोजन सामग्री में भी कोई मिलावट नहीं करेगा | जिसके फलस्वरूप सभी लोगों को शुद्ध भोजन, जल और भी खाने पीने की जितनी भी वस्तुएं हैं सभी अपने शुद्ध रूप में प्राप्त होती रह सकेंगी | इसके फलस्वरूप सभी लोग अधिकतम स्वस्थ रहेंगे और सुखी जीवन जीते रह सकेंगे।
16. परिवार के अंदर भी सारे सदस्य व्यवस्था से सीधे जुड़े होंगे | जिसको जब भी जो कुछ भी चाहिए वह मांग कर सकेगा | और अपनी इच्छा अनुसार प्राप्ति कर सकेगा | इस कारण से परिवार का एक सदस्य किसी भी दूसरे सदस्य के ऊपर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं करेगा | ऐसा होने पर सभी के संबंध एक दूसरे के साथ मधुर रहेंगे, एक दूसरे में विश्वास रहेगा, झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।
17. ऐसी व्यवस्था हो जाने पर किसी को भी कल की चिंता नहीं रहेगी | कि कल को कहां से खाना आएगा, कहां से घर चलेगा, कहां से चिकित्सा व्यवस्था होगी या मैं बेरोजगार हो जाऊंगा। यह सारी चिंताएं समाप्त हो जाएंगी और कभी कोई समस्या नहीं उठेगी | कोई समस्या उठी भी तो उसका समाधान बहुत ही जल्दी हो जाएगा | जिससे वो समस्या जैसी अनुभव नहीं होगी |
18. और यह बात सभी डॉक्टर्स ने कही है, कि आदमी जब मानसिक रूप से ज्यादा परेशान रहता है तो उसकी शरीर में बहुत सारी बीमारियां पैदा होने लगती हैं, और लगातार पैदा होती रहती है। तो इस व्यवस्था के

आने के बाद किसी भी प्रकार का तनाव या परेशानी आदमी के जीवन में नहीं रहेगी इस कारण बीमार होना बहुत कम हो जाएगा और जो भी हल्की फुल्की कोई बीमारी होगी तो उसका इलाज तुरंत ही हो जाएगा। आदमी की स्वाभाविक आयु भी अधिक हो जाएगी |

19. संविधान में कोई भी संशोधन के लिए जनता की सहमति जरूरी होगी बिना जनता की सहमति के कोई भी समाधान कोई भी संविधान संशोधन नहीं हो सकेगा जिस कारण से कभी कोई ऐसा नियम नहीं बनेगा जो कि जनता को दुख पहुंचाता हो और यही इस व्यवस्था का उद्देश्य है कि संविधान सदैव ऐसा बना रहे जिससे के सभी लोग सदैव सुखी ही रहे।
20. तो इस प्रकार इस व्यवस्था में सत्ता की ताकत सदैव ही जनता में बनी रहेगी ना कि 5 साल में एक बार। यह पूर्ण लोकतंत्र होगा, जनता के द्वारा बनाया जाएगा, जनता के द्वारा चलाया जाएगा और जनता के लिए चलाया जाएगा।
21. इस व्यवस्था में कई सारी चीजें नहीं होंगी जैसे बैंक नहीं होंगे, कोई टैक्स प्रणाली नहीं होगी, बाजार विशेष नहीं होगा और किसी चीज के लिए कोई लाइन नहीं लगानी पड़ेगी, बिल नहीं भरने होंगे, क्योंकि सर्वाधिक कार्य ऑनलाइन हो जाएंगे अर्थात जीवन बहुत सुकून से भरा होगा।
22. इस व्यवस्था में सर्वाधिक टेक्नोलॉजी का उपयोग होगा। उदाहरण के लिए जैसे खेती में काम आने वाले ट्रैक्टर आदि में भी कैबिन बना होगा, जिस में एयर कंडीशनर लगा होगा, जिसमें धूल भी नहीं आएगी | उसी प्रकार ट्रक के अंदर भी एयर कंडीशनर होगा अर्थात कठिन कार्य भी सर्वाधिक आसानी से होंगे अधिकतम सुख के साथ होंगे ।
23. नगर सभी सुख-सुविधाओं सहित बनाए जाएंगे जिनमें स्कूल, हॉस्पिटल, जिम, गार्डन, जूस सेंटर, रेस्टोरेंट, क्लब्स और भी जितनी भी सुख सुविधाएं हो सकती हैं वह सब रहेंगी | जिसके कारण सभी उम्र के लोग पूरी तरह से जीवन का आनंद ले सकेंगे।
24. इस नई व्यवस्था में सभी अपने धर्मों के अनुसार जीवन जी सकेंगे | केवल इस बात का उन्हें ध्यान रखना होगा कि उनकी किसी धार्मिक गतिविधि से किसी दूसरे को कोई वास्तविक समस्या ना हो।
25. इस नई व्यवस्था में कोई भी समस्या का समाधान बहुमत के आधार से लिया जाएगा। अर्थात ये शुद्धतम लोकतंत्र होगा।

निष्कर्ष- अब हम सब लोग यह समझ गए होंगे, कि इस नई व्यवस्था के आने के बाद जीवन में किसी भी प्रकार के दुख पैदा नहीं होंगे और सभी प्रकार के अधिकतम सुख ही पैदा होते रहेंगे और सभी को मिलते भी रहेंगे। और अधिक विस्तार से जानने के लिए हमारा यूट्यूब चैनल universal life management को जाकर देखें।
मोबाइल 9013383424 पर संपर्क करें। धन्यवाद।

व्यवस्था में सरकार के उद्देश्य एवं जनमत संग्रह अभियान

दिनांक : .....

सरकार :– देश के सभी सार्वजनिक कार्यों को करने के लिए ही सरकार नाम की संस्था का गठन करने की आवश्यकता होती है। अतः सरकार को नीचे लिखे सभी सार्वजनिक कार्यों को राष्टकोष से सम्पन्न करना चाहिए।

1– **शिक्षा** :– देश के सभी नागरिकों को योग्यता, क्षमता, गुणवत्ता, कौशल के रूप में वरीयता के विकास हेतु सामान्य एवं जीविकोपार्जन सम्बन्धी सर्वोपयोगी समुचित शिक्षा प्रशिक्षण प्राप्ति की व्यवस्था।

2– **रोजगार** :– देश के सभी 25 वर्ष से 50 वर्ष तक के योग्य नागरिकों को उनकी वरीयता और ईच्छा के अनुरूप कोई एक आजीविका की व्यवस्था। इनके अलावा बाकि सभी को भी समान गुणवत्ता वाला जीवन जीने के लिए व्यवस्था।

3– **सुखसुविधा** :– देश के सभी नागरिकों के ग्रामों को प्रति ग्राम आधार पर, समस्त सार्वजनिक सुखसुविधाओं, जैसे– आवास, सड़क, बिजली, पानी, डाक, दूरभाष, दूरदर्शन, रेडियो, परिवहन, पार्क, स्टेडियम, पुस्तकालय आदि की समुचित सुखसुविधा की व्यवस्था।

4– **संरक्षण** :– देश के सभी नागरिकों की सुरक्षा हेतु प्रति संवर्ग आधार पर, समष्टि के चारों संवर्गो, जैसे– जड़–पदार्थ, वृक्ष–वनस्पति, पशु–पक्षी एवं मनुस्य वर्ग को स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, सहायता एवं सहयोग, सुरक्षा एवं न्यायालय आदि सार्वजनिक सेवाओं के रूप में समुचित संरक्षण प्राप्ति की व्यवस्था।

आपका मतदान

क्या आप उपरोक्त बातों से सहमत हैं। हॉ नहीं

नाम : .....आयु : ..... लिंगः .....कार्य : .....पता : .....

.....

.....मो.न. : .....ईमेल पताः .....

.....हस्ताक्षर : .....यदि आप सहमत हैं तो आप इस कार्य में किस प्रकार सहयोग कर सकते हैं।

1 : बाहरी समर्थन 2 : आर्थिक सहायता 3 : संस्थागत कर्म 4 : नेत्रत्व कर्म

जनमत संग्रह कराने वाले का नाम, कोड एवं हस्ताक्षर : .....

इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य

मैंने प्रकृति का, लोगों का, जीवजंतुओं का, बनस्पतियों का और जड़ चेतन आदि का एवं स्वयं का बहुत ही गहराई से बाहय एवं आंतरिक रूप से अध्ययन किया है। और अध्ययन करने के बाद जो भी अनुभव हुए है, उन अनुभवों से जो समझ निकल कर आई उसका प्रयोग करते हुए मैंने एक व्यवस्था का निर्माण किया है। इस व्यवस्था के हो जाने पर सभी जीवों को उनके सभी प्रकार के अभीष्ट सुख उन तक पंहुच सकेंगे। एवं इसके दौरान किसी भी प्रकार के दुख का उदय भी नहीं होगा। इस व्यवस्था के द्वारा सभी प्रकार के ज्ञानों, कर्मों और भोगों का वितरण इस प्रकार से व्यवस्थित किया गया है कि किसी को कोई भी प्रकार का दुख पहुंचाये बिना सभी को उनके इच्छित ज्ञान, कर्म एवं भोग निश्चितरूप से पहुंच सकें। और इनके द्वारा सभी पूर्णरूप से हमेशा सुखी जीवन जीते रह सकें।

यदि ये पुस्तक आपकों ऐसी जान पड़े जैसाकि मैंने कहा है कि इससे सबका सुख होगा तो मेरी आपसे अपेक्षा है कि आप और लोगों को भी इस पुस्तक के बारे में जरूर बतायें। आपका ये सहयोग हमें जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने में सहायक होगा। ये एक सामाजिक कार्य है जोकि एक के करने से नहीं होता। सभी का प्रत्येक प्रकार का सहयोग अपेक्षित रहता है। जब सब लोगों को इस व्यवस्था के बारे में पता चलेगा और यदि वे सभी इस निर्णय पर पहुंचेंगे कि इस व्यवस्था के आने से हम सभी का जीवन सभी प्रकार के सुखों से भर जायेगा। तो इस व्यवस्था को लाने के लिए हम सभी को प्रयास करना होगा। तभी वह हो सकेगा जोकि सभी के जीवन का परमलक्ष्य है। अर्थात् सभी का प्रत्येक प्रकार का सुख उनको प्राप्त हो सकेगा। पुस्तक को चुनने के लिए आपका दिल की गहराईयों से आभार व्यक्त करता हूं। आशा है कि ये पुस्तक पढ़ने के बाद आप अपनी सारी समस्याओं का समाधान जान चुके होंगे और सभी प्रकार के सुख कैसे प्राप्त हों ये भी जान चुके होंगे। उसके बाद केवल इसे करना रह जायेगा। वर्तमान व्यवस्था के रहते भी जो इसे जितना अपने जीवन में ला पायेगा उतना तो उसी दिन से सुखी हो जायेगा। एवं पूर्णतः सुखी तो तभी होगा जब इस पुस्तक में लिखित व्यवस्था आयेगी। इस व्यवस्था के आने के बाद फिर किसी को अलग से

कोई प्रयास नहीं करना पढ़ेगा। फिर सब व्यवस्था के द्वारा स्वतः ही होता जायेगा। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद आपकी मानसिक क्षमता का भी विकास होगा। आपको ऐसी बहुत सारी बातों का भी पता चलेगा जिनका कि आपको अबतक पता नहीं था। आपकी बोद्धिक क्षमता का भी विकास होगा जिसके द्वारा आपकी निर्णय करने की शक्ति बढ़ जायेगी। आपको ये भी पता चलेगा कि हम सभी के जीवन का क्या उद्देश्य है एवं उसको किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। शायद ये पहली पुस्तक होगी इस प्रकार की आपके पास जोकि सीधे आपके हमारे जीवन से सीधी जुड़ी बाते करती होगी। जोकि पूरे जीवन के बारे में इतनी आसानी से आपको सारे रहस्यों से पर्दा हटायेगी और बहुत लम्बे समय से चले आ रहे इस मिथ को तोड़ेगी कि सभी के जीवन को पूर्णरूप से सुखी नहीं किया जा सकता। अभी तक सभी महानपुरूषों के द्वारा हम लोग यहीं सुनते और पढ़ते आ रहे हैं कि ये संसार दुखों का सागर है यहां कोई सुखी नहीं हो सकता। यदि यहां दुखों से बचना चाहते हो तो पूजा करो, पाठ करो, नमाज करो, दान दो, लोगों की सेवा करो, मंत्र जाप करो, ध्यान करो, समाधि लगाओ, मंदिर जाओ, चर्च जाओ, मस्जिद जाओ, भोगी मत बनो, जितना है उसमें ही संतोष करो, दीन दुखियों की सेवा करो, अपना अधिक से अधिक समय भगवान की सेवा में लगाओ आदि आदि इसी प्रकार के बहुत सारे वाक्य हैं यदि इनको ही पूरा लिखा जाये तो एक छोटी सी पुस्तक तो इसी की हो जायेगी। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद आपको ये सारे भ्रम टूट जायेंगे और आपमें एक आशा का संचार होगा और आप भी कह उठोगे कि अब बहुत हो चुका दुखी होना, ये संसार कोई दुखी होने के लिए नहीं बना है बल्कि ये पूर्णरूप से सुखी होने के लिए ही बना है और उसका तरीका भी इस पुस्तक में सहज ही सरल भाषा में आपको पूरी व्याख्या के साथ दिया गया है। थोड़ी सी भी समझ रखने वाला आदमी इसे आसानी से समझ सकेगा। फिर भी यदि कुछ प्रश्न उठे तो आप मुझसे सम्पर्क कर सकते हैं मैं अपना पूरा प्रयास करूंगा उत्तर देने का।

आपमें से ही एक प्रेमजीत सिरोही

अध्याय–1

जीवन का मूल उद्देश्य क्या है?

हमें सबसे पहले यह जानना होगा कि इस संसार में समस्त जीवधारियों का समग्ररूप से उद्देश्य क्या है। या इस समष्टि जीवन का क्या उददेश्य है? यदि हम ये जान पाते हैं तो ही आगे की सारी व्यवस्था आसानी से समझ सकते हैं और समझा भी सकते हैं। क्योंकि बिना उद्देश्य जाने कोई भी ये नहीं बता सकता कि आगे क्या किया जाये और कैसे किया जाये। जबतक हम 'क्यों किया जायें' इसका उत्तर नहीं जान लेते तबतक 'क्या किया जाये' और फिर 'कैसे किया जाये' ये नहीं जान सकते। तो पहले 'क्यों किया जाये' ये जानना होगा उसके बाद 'क्या किया जाये' ये जानेंगे और फिर 'कैसे किया जाये' ये जानने में आयेगा। और ये जांचने के लिए कि जो हमने चुना है करने के लिए क्या वो सही है या गलत, ये हमें पता चलेगा कि उससे हमारा उददेश्य पूरा हुआ कि नहीं। यदि उददेश्य पूरा हुआ तो सही है, नहीं तो उसे गलत कहा जायेगा। यानिकि उददेश्य ही कसौटी बना जाता है सही और गलत जानने के लिए। यदि आप भी अपने जीवन का कोई कार्य करना चाहते हैं तो आपको उस कार्य के उददेश्य के बारे में अवश्य ही पता होगा नहीं तो आप ये कैसे तय करोगे कि क्या करना है। और आपको ये भी पता ही होगा, कि वह कार्य आप क्यों करना चाहते हो। थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं कि आप भूल गये कि वो कार्य आपको क्यों करना था लेकिन क्या करना है ये याद रहा तो इससे आप कार्य तो कर लोगे परंतु उस कार्य का परिणाम सही आया कि नहीं ये नहीं जान पाओगे क्योंकि ये तो पता ही नहीं कि वो कार्य करना क्यों था। परिणाम सही है कि नहीं ये तो केवल तभी बताया जा सकता है, जबकि ये पता हो कि वो कार्य करना क्यों था। उदाहरण के लिए आप बुखार की दबाई लेने किसी डाक्टर के पास गये और उद्देश्य था स्वस्थ होना। किसी डाक्टर ने आपको बुखार सही होने की दबाई दी। दबाई लेकर आप घर गये और भूल गये कि ये दबाई किस लिए थी बस इतना याद रहा कि सुबह और सायं को पानी के साथ लेनी है

क्योंकि वो तो कागज पर लिखा था आपकी भाषा में, परंतु बिमारी का नाम उसने कुछ इस तरह से लिखा कि डाक्टर ही समझ सकता था कि क्या लिखा है। आपने सुबह सायं दबाई ली। चार दिन की दबाई थी तो चार दिन में समाप्त हो गई। लेकिन परिणाम में पता चला कि पहले से कुछ बहतर लग रहा था। परंतु ये परिणाम सही था कि गलत ये तो पता ही नहीं चल रहा था क्योंकि ये तो याद ही नहीं था कि दबाई ली क्यों जा रही थी। तो वो आदमी डाक्टर के पास दुबारा गया और पूछा कि डाक्टर साहब मैं भूल गया कि दबाई क्यों ली थी? तो डाक्टर ने पर्चा देखा और बताया कि बुखार की दबाई है। और उसका बुखार चैक किया तो पाया कि बुखार तो ज्यों का त्यों था बस कुछ सांस आना ठीक हुआ था। तो अब उस आदमी को पता चला कि जो दबाई उस आदमी को दी गयी थी उसने अपेक्षित कार्य नहीं किया। तो डाक्टर ने फिर से दबाई बदल कर दी और फिर से कुछ दिनों के बाद चैक कराने को कहा। इसी तरह से हम सभी अपने सारे कार्य किसी ना किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही करते हैं और यदि हमें हमारा उद्देश्य पूरा होता नहीं दिखाई पड़ता तो उस कार्य में बदलाव भी करते हैं। तो इससे हम समझ ही गये होंगे कि उद्देश्य कितना महत्वपूर्ण है जीवन में। तो कुल मिलाकर बात ये सामने आयी कि बिना उद्देश्य को जाने ये जाना ही नहीं जा सकता कि जो हम कर रहे हैं और उससे जो परिणाम आ रहे हैं वो सही है या गलत। तो आओ पहले जीवन का उद्देश्य ही जानने का प्रयास करते हैं। तभी हम सही से जान पायेंगे कि हम जो भी कर रहे हैं या हमसे जो भी कराया जा रहा है वो सही भी है या नहीं। उसके जो परिणाम आ रहे हैं क्या वो उद्देश्य के अनुसार आ रहे हैं या कुछ और ही आ रहे हैं। इस विषय को मैंने अपनी दूसरी पुस्तक 'जीवन दर्शन' में विस्तार से दिया है। यहां में संक्षेप में ही दे रहा हूं क्योंकि ये पुस्तक व्यवस्था को ही समझाने के लिए लिखी है। यदि आप अपना अवलोकन करें और यदि आप समस्त जीवधारियों का भी अवलोकन करें, तो उनकी सारी गतिविधियों का अध्ययन करने पर आप पाओगे कि समस्त जीवधारी केवल और केवल सदैव सुख ही चाहते हैं। कोई तो केवल अपने आपको सुखी देखना चाहता है। कोई तो अपने साथ अपने परिवार को भी सुखी देखना

चाहता है। कोई तो अपने परिवार के साथ अपने समाज को भी सुखी देखना चाहता है। और ऐसे भी लोग होते हैं जोकि अपना, अपने परिवार का, अपने समाज का एवं पूरी समष्टि को भी सुखी देखना चाहते हैं। यानि कि मूलरूप से देखें तो यही देखने को मिलेगा कि सुख और केवल सुख ही इस जीवन का या इस संसार का एकमात्र लक्ष्य है, उद्देश्य है। और सही भी है, ज्यादा तार्किक भी यही लगता है। यदि इस जीवन से सुख को निकाल दिया जाए तो यहां जन्म लेने का अर्थ ही क्या रह जायेगा? किसी का भी यहां क्या अर्थ बचेगा? इस संसार के होने का क्या अर्थ रह जायगा? तो आओ सबसे पहले इस सुख नामक तत्व को ही जाने कि ये है क्या और इसकी आवश्यकता क्या है? क्या सुख के बिना हम सभी के जीवन का कोई और अर्थ है? यदि हम अपने जीवन को गौर से देखें और अपनी सारी गतिविधियों को देखें या अपनी पुरानी गतिविधियों को याद करें तो पायेंगे कि हम कोई ना कोई प्रकार का सुख पाने के लिए ही अपनी सारी गतिविधियां कर रहे हैं। चाहे इसके लिए हमें सही तरीके या गलत तरीकें ही क्यों ना अपनाने पड़े। और यही बात यदि हम किसी और से भी पूछें तो वो भी यही उत्तर देगा कि हां मैं भी अपने जीवन में जो कुछ भी कर रहा हूं वो अपने या अपनों के या सबके सुख के लिए ही कर रहा हूं। किसी माता पिता से पूछों कि आप अपने बच्चे को क्यों पढ़ा रहे हैं, तो वो भी यही उत्तर देंगे कि पढ़ लिखकर समझदार बनें और अच्छे से धन कमायें, सुखपूर्वक जीये। अधिकतर माता पिता का ये अनुभव है की व्यवस्था में साधारणतया अनपढ़ या कम पढ़े लिखे आदमी अधिक सुखपूर्वक नहीं जी पाते क्योंकि वह अधिक धन नहीं कमा पाते, उन्हें समझ भी कम रहती है। अर्थात् जितना भी आप जानने का प्रयत्न करेंगे उतना ही आप पायेंगे कि हां सुख के अलावा और कोई जीवन का अंतिम उद्देश्य नहीं है। चाहे आदमी जो भी करे, जैसे भी करे, पर उसकी मूल इच्छा सुख की ही पाओगे। चाहे वो इस बात को जानता हो या ना जानता हो। मैं आपको एक झलक दिखलाना चाहता हूं इस नयी व्यवस्था की जोकि मैंने आगे लिखी है जिसके आने के बाद हम सभी के जीवन में कोई समस्याएं उत्पन्न ही नहीं होंगी, जोकि अभी हो रही हैं। जिससे आप समझ सकेंगे कि सभी के जीवन को सभी प्रकार के सुखों से भरना कितना

आसान है, ये कोई कठिन कार्य नहीं है, बस ज्ञान की बात है। अब तक ज्ञान नहीं था तो कर नहीं पा रहे थे और अभी मैं जब इस ज्ञान को आप सब तक पहुंचा दूंगा, तो ये हो जायेगा। अगले अध्याय में मैं एक आर्थिक नीति लिख रहा हूं जिससे आप आसानी से समझ जाओगे कि ये बहुत ही आसानी से हो जायेगा। इस नीति के बारे में विस्तार से आप इसी पुस्तक में आगे समझ सकेंगे कि ये और दूसरी नीतियां क्या होंगी और कैसे इस व्यवस्था को लाया जा सकता है और ये कैसे कार्य करेगी।

•••

अध्याय–2

अर्थशास्त्र की मुख्य नीति

एक नया अर्थशास्त्र जिसकी कई नीतियों में से एक मुख्य नीति मैं नीचे दे रहा हूं जिससे ये कठिन कार्य बड़ी ही आसानी से हो जायेगा। अधिक विस्तार से पुस्तक में आगे हम पढ़ेंगे। आजतक ये नीति ऐसी हैं कि जितनी मुद्रा या धन आपके पास है, आप उतनी ही मांग बाजार में कर सकते हैं। यानिकि हमारी मांग हमारे पास जो धन है, उस पर निर्भर करती है। इससे होता ये है कि बाजार में हम अपनी जरूरतों के आधार से पूरी मांग नहीं कर पाते। इससे होता ये है कि बाजार में मांग बहुत कम रहती है। अब जब मांग कम रहती है तो बाजार मांग के आधार से ही निर्माण करता है। यानिकि निर्माण भी कम ही होता है। अब जब बाजार में निर्माण कम होता है तो इसका अर्थ कम रोजगार पैदा होता है। अब जब रोजगार कम पैदा होता है तो समाज में बेरोजगारी पैदा हो जाती है। क्योंकि आय तो रोजगार से ही होती है आज के समाज में। जिनके पास रोजगार नहीं होता तो उनकी आय भी नहीं होगी। अर्थात बिना आय वाले लोग तो समाज की भीख पर ही जिंदा रहते हैं क्योंकि वो तो बाजार में मांग भी कर नहीं सकते। और जिनकी आय कम है वो भी पर्याप्त मात्रा में मांग नहीं कर सकते। केवल जिन थोड़े से लोगों के पास पर्याप्त ध न होता है वो ही केवल अपनी सम्पूर्ण मांग कर पाते हैं। इस आर्थिक नीति के कारण सदैव ही मांग की कमी बनी रहती है बाजार में क्योंकि आय कम रहती है क्योंकि रोजगार कम रहता है। अर्थात देश और दुनिया में एक बड़ा वर्ग सदैव ही गरीब रहता है। ये कहानी है आज के अर्थशास्त्र की नीतियों की। इसके कारण अधिकतर मनुष्य गरीबी का जीवन जीने के लिए बाध्य हैं। और जबतक ये आर्थिक नीति नहीं बदलती तबतक सबके सुखी होने की कोई संभावना नहीं है।

ये तो आप भी जानते हैं कि आदमी के पास जितना धन होता है वो सारे धन का प्रयोग तो आज की खरीदारी में करता भी नहीं है, कुछ तो भविष्य के लिए बचाकर भी रखता है क्योंकि अभी के सिस्टम में उसे अपना

भविष्य सुरक्षित नहीं लगता। अभी सरकारों ने इस दिशा में बहुत ही कम कार्य किया है, जिस कारण लोग अपने भविष्य को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पा रहे हैं पर चलो यदि वो धन को ना भी बचाये भविष्य के लिए तो भी अब लोगों के पास जितना धन होगा, वो केवल उतनी ही मांग कर सकते हैं बाजार में। वो कभी भी जीवन में अधिकतम मांग कर ही नहीं सकते जबतक कि उनके पास पर्याप्त धन ना आ जाय। और पीछे इतिहास को देखते हुए कह सकते हैं कि आजतक कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि सभी नागरिकों की खरीदने की शक्ति पर्याप्त रही हो। हम इस चित्र से ये बात आसानी से समझ भी सकते हैं। इस नीति को यदि आप ध्यान से देखें तो पायेंगे कि जबतक हमारी मांगे धन पर निर्भर रहेंगी तबतक हम पर्याप्त मांग नहीं कर सकेंगे। पर्याप्त निर्माण भी नहीं हो सकेगा वस्तु और सेवाओं का। पर्याप्त रोजगार भी नहीं पैदा हो सकेगा। पर्याप्त आय भी नहीं हो सकेगी। जब

पर्याप्त आय नहीं होगी तो फिर से पर्याप्त मांग नहीं हो सकेगी। और ये कुचक्र ऐसे ही गोल गोल घूमता रहेगा सदैव। ये चक्र अधिकतर मनुष्यों को गरीब ही रखेगा। और रख रहा है। फिर से समझं, क्योंकि धन आता है रोजगार से, रोजगार आता है निर्माण से, निर्माण होता है वस्तु और सेवाओं की पर्याप्त मांग से, मांग आती है पर्याप्त धन से। अब आप समझ गये होंगे

कि सबके पास पर्याप्त धन होगा ही नहीं क्योंकि सबके पास तो रोजगार है नहीं। और सबके पास राजगार इसलिए नहीं है क्योंकि बाजार में पर्याप्त मांग ही नहीं है। भाई यदि बाजार में मांग ही न्यूनतम होगी तो बाजार न्यूनतम प्रोडक्शन ही करेगा और उससे न्यूनतम रोजगार ही पैदा होगा और फिर उससे न्यूनतम आय ही उत्पन्न होगी। और ये कुचक्र ऐसे ही चलता रहेगा। जब तक ये नीति रहेगी, ये कुचक्र ऐसे ही अधिकतर लोगों को गरीब बनाकर रखेगा। इस नीति के कारण सभी लोग कभी भी समृद्ध नहीं हो पायेंगे। आप समझ गये होंगे कि जबतक ये नीति रहेगी हम सबकी गरीबी बनी ही रहेगी। कुछ लोग जोकि इन प्रोडक्टस और सेवाओं का निर्माण करते हैं केवल वो ही बहुत अधिक अमीर होते हैं। और ये लोग कुल जनसंख्या का केवल 1 प्रतिशत होते हैं। इस नीति के रहते अधिकतम लोगों की गरीबी कोई दूर नहीं कर सकेगा। इस नयी नीति को देखें जो कि मैंने इस उपर वाली नीति में छोटा सा परिवर्तन करके बनाई है।

अर्थशास्त्र की मुख्य नीति में परिवर्तन

मैंने इस नीति में एक परिवर्तन किया है। मांग करने के लिए जो धन की अनिवार्यता है उसको मैंने हटा दिया। अर्थात अब इस नीति के अनुसार सब अपनी अपनी मांगे पर्याप्त रूप से करते रह सकेंगे। मांग करने के लिए अब धन की आवश्यकता नहीं रहेगी। देखें इससे क्या होगा, हमारे समाज मं सभी वस्तुओं की मांग 100 प्रतिशत हो जायेगी। अब इस 100 प्रतिशत मांग को पूरा करने के लिए सरकार को 100 प्रतिशत निर्माण करना होगा। 100 प्रतिशत निर्माण के कारण 100 प्रतिशत रोजगार उत्पन्न हो जायेगा। जिसके कारण 100 प्रतिशत रोजगार भी देना होगा। क्योंकि 100 प्रतिशत मांग को पूरा करने के लिए 100 प्रतिशत मिलों, मशीनों, बिजली, सड़क, पानी, मालवाहक वाहन और बहुत सारी वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता होगी और इन सब आवश्यकताओं के लिए बहुत सारे लोगों की आवश्यकता होगी यानिकि सीधे तौर पर कहूं तो 100 प्रतिशत रोजगार होंगे सरकार के पास

सदैव ही। तो इसका अर्थ सभी लोगों के पास रोजगार होगा। दूसरे शब्दों में सभी समृद्ध हो जायेंगे। आगे चित्र से भी समझ सकते हैं।

देख रहे हैं ना कि अब इस नीति से क्या हो सकता है। बस मैंने आपके खरीदने की शक्ति को धन की अनिवार्यता से मुक्त कर दिया। नीति में एक छोटा सा परिवर्तन कितना आश्चर्यजनक परिणाम ला सकता है ये हम उपर दिये हुए चित्र से भली भांति समझ सकते हैं। लोगों को सच्ची स्वतंत्रता तभी अनुभव होगी जबकि वो समानता से सारी समृद्धि को भोगने के लिए स्वतंत्र होंगे। लोग जो सीखना चाहें वो सीख सकें, जो करना चाहे वो कर सकें और जो भोगना चाहें वो भोग सकें तभी सही मायने में कहा जायेगा कि अब हम स्वतंत्र हैं। जो भी चाह रहे हैं वो कर पा रहे हैं। जैसा जीवन जीना चाहते हैं वैसा जीवन जीने को मिल रहा है। आगे मैंने मुद्रा की परिभाषा भी बदली है। मुद्रा के बारे में आप आगे पढ़ेंगे। आपका बैंकअकाउंट सरकार के पास होगा। सरकार आवश्यकता के अनुसार सबकी मांग करने की सीमा तय करती रहेगी। जिसके आधार से सभी अपनी ईच्छानुसार जो भोगना चाहते हैं वो उस वस्तु या सेवा को प्राप्त करते रह सकंगे। हां बस इसके लिए एक शर्त होगी। और शर्त ये होगी कि आपकी ईच्छानुसार सरकार आपको जो रोजगार दे रही होगी उसको आपको करना होगा, यदि आप 25 वर्ष से 50

वर्ष की आयु के हैं तो। यदि आप ये सहयोग नहीं कर रहे होंगे तो आपको इस नीति का लाभ नहीं मिलेगा। लेकिन अगर आप सहयोग कर रहे हैं तो बस फिर कभी भी कुछ भी आप सरकार से ले सकते हैं और उसका उपभोग करते रह सकते हैं। एक बार संतुलन की अवस्था आ जाएगी तो सम्भवतः ये सीमा रखने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। रोजगार की गारंटी सरकार की तरफ से होगी ही। यदि सरकार आपको रोजगार नहीं दे पा रही है तो इस अवस्था में आपको इस नीति का लाभ मिलता रहेगा। कुछ भी प्राप्त करने का अधिकार आपको होगा। रोजगार गारंटी के कारण यदि सरकार किसी को रोजगार नहीं दे पाती है तो भी सरकार उसको पूरा अधिकार देगी सभी कुछ प्राप्त करने का। इस नीति के द्वारा सभी की मांगे एवं सभी को रोजगार एक साथ हो जायेगा। जो ऐसी वस्तुएं होंगी जिनकी कि संसार में कमी होगी तो सरकार उन वस्तुओं को व्यक्तिगत स्तर से नहीं देगी परंतु सामाजिक स्तर से आपको प्राप्त करायेगी। तो इससे क्या होगा कि जो संसाधन इस संसार में कम पाये जाते हैं वो भी सभी को पर्याप्त रूप से प्राप्त हो सकेंगे। और प्राकृतिक ससाधनों का दुरपयोग भी रूकेगा इस नीति से। आओ देखें कि ये कैसे हो सकता है। सरकार बनने के बाद सबसे पहले सरकार सारी आवश्यक सरकारी नियुक्यिां करेगी और साथ ही सॉफटवेअर इंजिनियर्स का एक बड़ा पेनल नियुक्त करेगी जोकि जल्दी से इंटर्नेट पर वेबसाइट के रूप में एक ऐसे आनलाइन सॉफ्टवेअर का निर्माण करेगा जिसमें पूरे देश के सभी नागरिक अपना अकाउंट बना सकेंगे और जिसके अन्दर अपनी सभी मांगो को भर सकेंगे। और अपने बारे में सारी जानकारी भर सकेंगे कि वे क्या योग्यता रखते हैं, क्या क्या कार्य करना उन्हें आता है, इसके अलावा वे क्या करना चाहते हैं, यदि उनकी योग्यता है परंतु वे सीख नहीं पाये तो क्या वे सीखना चाहते हैं आदि आदि। लोग सबकुछ सीख सकेंगे। सरकार उसकी व्यवस्था करेगी। जिन्हें इंटरनेट चलाना नहीं आता है उनके लिए उनके आस पास कम्पयूटर आपरेटर्स को नियुक्त करेगी जिनके माध्यम से लोग अपनी मांगे और अपना प्रोफाईल बना सकेंगे। जैसेकि उन्हें एक माह में कितना गेंहू, मक्का, चीनी, दूध, घी, कपड़ा, तेल, मसाले, सब्जियां, सभी प्रकार के फल, तिल, सेंट्स, मिठाइयां आदि ऐसी मांगे जोकि दिन,

सप्ताह या माह के आधार से होती हैं। इसके अलावा मोटर साइकिल, मोटरकार, मोबाइल, टी. वी., वाशिंग मशीन, सभी प्रकार के फर्नीचर, रहने के लिए एक घर आदि अपनी अपनी इच्छानुसार इन सभी मांगों को आनलाइन भर सकेंगे। अब तक उन्होंने क्या क्या किया है, और भविष्य में वे किस रोजगार को अपनाना चाहते हैं। उसमें उन्हें कितनी दक्षता हांसिल है। या वे उसमें दक्षता हांसिल करना चाहते हैं। कहने का अर्थ है कि ये साफ्टवेअर बनने के बाद सारा डाटा सरकार के पास होगा केवल कुछ दिनों के अन्दर ही। यानिकि सरकार को सभी लोगों की मांगों की जानकारी एक बटन दबाते ही उपलब्ध होगी, और भविष्य में हमेंशा सरकार के पास सभी की सारी जानकारी आती रहेगी सारी मांगों की और सारे रोजगारों की यानि कितना मानव संसाधन उनके पास है और कितनी मांगें है, कितने प्राकृतिक संसाधन हैं आदि आदि सब। सरकार को पता होगा कि कुल मिलाकर सभी चीजें कितनी कितनी मात्रा में उन्हें चाहिए। कितने लोग हैं सरकार के पास रोजगार करने के लिए किस किस विभाग में और कौन क्या कार्य कर रहा है और कौन खाली बैठा है, कौन कौन से संसाधन कितनी मात्रा में है, और जो संसाधन कम मात्रा में है तो उन संसाधनों के विकल्प की जानकारी भी सरकार को रहेगी। ये सब सरकार को पता होगा। उसी साफ्टवेअर में साथ ही साथ कौन आदमी किस कार्य में कुशल है और उन कार्यों में से वह कौनसा कार्य करना चाहता है, क्या उसकी शिक्षा का स्तर है, ये भी पता चलेगा। यदि वह किसी कारण से नहीं सीख पाया है जोकि वह सीखना चाहता था और रोजगार के रूप में उसे चुनना चाहता था, तो सरकार उसके सीखने की व्यवस्था करेगी। तब तक वह जो कार्य आता है उसे करता रह सकता है। इसप्रकार सरकार के पास पूरा डाटा होगा कि इस देश में कितनी जनसंख्या है और किस किस आयु वर्ग की, कौन कितना किस विषय में शिक्षित एवं प्रशिक्षित है। आगे आपको उस आनलाइन सॉफटवेअर का यूजर इंटरफेस जोकि देखने में कुछ इस तरह का होगा। अगले पेज पर देखें। इस तरह से सरकार को कुल मांग का पता चलता रहेगा एवं उसकी आपूर्ति करने के लिए कितने लोगों की, कितनी मशीनों की, कितने मालवाहकों की, कितनी मिलों की आदि किस किस क्षेत्र में आवश्यकता है जिसके द्वारा समय

पर सभी की आपूर्ति की जा सके, इसकी गणना सरकार आसानी से करती रह सकेगी। सरकार इस सारी आपूर्ति को पूरा करने के लिए सभी लोगों को उनकी वरीयता एवं इच्छानुसार नियुक्त कर देगी जोकि अधिक से अधिक 5 वर्ष में उन सभी लोगों की मांगों को पूरा कर सकेगी, जिनके पास अभी किसी भी प्रकार का अभाव है। उसके बाद लगातार लोग अपनी अपनी मांग करते रहेंगे और उसी प्रकार सभी की मांगे पूरी होती रहेंगी। केवल पहले 5 वर्ष में ही अधिक भार होगा क्योंकि वर्तमान समय में आधे से अधिक जनसंख्या के पास कुछ नहीं है तो शुरू में मांगे अधिक होंगी और कार्य भी अधिक होगा। लेकिन धीरे धीरे सभी मांगे सामान्य हो जायेंगी और तबतक हमारे पास इन्फरास्टरक्चर भी हो जायेगा। तो लगभग 5 वर्षों के बाद एक साम्यावस्था आ जायेगी जहां पर सभी मांगों की आपूर्ति आसानी से होती रह सकेगी, और कार्य भी कम हो जायेगा। ज्यादातर वस्तुओं के लिए बाजार में दुकानों की आवश्यकता भी नहीं होगी। क्योंकि लोगों की मांगों के अनुसार सारा सामान उनके दिये हुए पते पर कूरियर व्यवस्था के द्वारा पहुंचा दिया जाता रहेगा। केवल उन वस्तुओं अथवा सेवाओं के लिए बाजार में दुकानों की आवश्यकता होगी जोकि सीधे घर नहीं पहुंचाये जा सकते। जैसेकि भोजनालय, जिम आदि। इससे सड़क पर आवाजाही भी कम होगी। और पार्किंग व्यवस्था भी खराब नहीं होगी।

क्या ईच्छाएं अनंत हैं?

लोगों के साथ वार्तालाप में मैंने पाया कि लगभग सभी लोगों का ऐसा मानना हैं कि मनुष्य की इच्छाएं अनंत हैं और प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। बहुत पुराने समय से ये मान्यताएं चली आ रही हैं। तो आओ पहले इन दोनों निष्कर्षों को ही जांचते हैं कि ये सत्य हैं या कि किन्हीं परिस्थितियों विशेष में लिये गये निष्कर्ष ही हैं? और इन पर फिर से चिंतन मनन करने की आवश्यकता है। मैंने जब इन दोनों निष्कर्षों के बारे में खोज की तो मुझे ये विशेष परिस्थितियों में लिये गये निष्कर्ष ही निकल कर आये और सत्य इनके विपरीत ही निकल कर आया। यानिकि मनुष्य की इच्छायें अनंत नहीं हैं और अधिकतम प्राकृतिक संसाधन भी सीमित नहीं हैं। मुझे केवल ये ही निकल कर आया कि समस्या केवल सही व्यवस्था के ना होने की है। यदि सही

व्यवस्था नहीं है तो अनंत संसाधन भी कम पड़ेंगे एवं थोड़ी सी इच्छाएं भी अनंत जैसी अनुभव होने लगेंगी। और यदि व्यवस्था सही है तो सीमित संसाधन भी पर्याप्त हो जायेगा और अधिक इच्छाएं भी सामान्य बात लगेगी। सही व्यवस्था में ही हमारे पास जो भी प्राकृतिक या मानव संसाधन हैं उनका

यथोचित उपयोग हो सकता है। गलत व्यवस्था में हर बात का अभाव ही रहता है और सही व्यवस्था में सबकुछ पर्याप्त हो जाता है। अब आओं देखें

क्या ईच्छाएं अनंत हैं?

1. सभी सुविधाओं से युक्त एक घर चाहिए होता है।
2. अधिक से अधिक 30 प्रकार के स्वादिष्ट एवं स्वास्थयवर्धक भोजन, जूस, फल, सुखे मेवे आदि।
3. अधिक से अधिक 30 प्रकार के कपड़े, जूते आदि चाहिए होते हैं।
4. कुछ प्रकार की तकनीकि चाहिए जैसे मोबाइल, लैपटाप, बाईक, कार आदि चाहिए।
5. ईच्छानुसार शिक्षा और प्रशिक्षण चाहिए होता है।
6. ईच्छानुसार रोजगार चाहिए होता है।
7. कभी कभी पिकनिक आदि चाहिए होती है।
8. सड़क, बिजली, पानी, पार्क, स्टेडियम, क्लब, पुस्तकालय, यातायात, सुरक्षा आदि।

ये निष्कर्ष मुझे कैसे निकल कर आये, उन पर चिंतन मनन करते हैं। तो पहले अनंत इच्छाओं के बारे में बात करते हैं। जब मैंने अपने अंदर झांका और ये जानने की कोशिश की कि क्या मेरी इच्छाएं अनंत हैं तो मैंने पाया कि मैं करीब 100 के आसपास ही इच्छाओं को याद कर पाया और लिख पाया। ये भी कई दिनों में बहुत याद करके ही मैं लिख पाया था। नहीं तो 40 के उपर ही जाने में बहुत समय लगने लगा था। तकरीबन 25 इच्छाएं तो जल्दी से मैंने लिख दी थी पर उसके उपर जैसे मैं जा रहा था तो मुझे याद ही नहीं आ रहीं थी। परंतु कई दिनों के प्रयास से मैं 100 के करीब पहुंच सका था। फिर मैंने सोचा कि हो सकता है कि मेरी ईच्छाएं कम हो गई हों क्योंकि मैंने बहुत साधनाएं की हैं। तो मैंने दूसरे विभिन्न प्रकार के

लोगों से उनकी इच्छाओं की तालिका बनाने को कहा तो मुझे आश्चर्य हुआ कि वो तो 100 के पास भी नहीं पहुंच सके। और उनमें अधिकतर तो 40 के पास तक ही पहुच सके थे। और एक और बात बता दूं आपका कि वो सारे भी यही मानते थे कि हमारी ईच्छाएं अनंत होती हैं। पर जब मैं उनको कुछ समय बाद मिला तो सभी का कहना था कि मित्र ये तो कमाल हो गया। हमारी तो ईच्छाएं बहुत ही सीमित हैं। और ये कमाल की बात है कि हम अपनी ये थोड़ी सी इच्छाएं भी पूरी नहीं कर पाते हैं। आप सही कह रहे हो ये तो व्यवस्था की ही समस्या लगती है। वास्तव में होता क्या है कि हम अपने अनुभवों से बहुत प्रभावित होते हैं। जिस बात का भी जितना गहरा अनुभव होता है उससे उतना ही अधिक प्रभावित होते हैं। और हम हमारे अधिकतर निष्कर्ष हमारे अनुभवों से ही निकालते हैं। जबकि हमें निष्कर्ष निकालते समय मन और बुद्धि को भी शामिल करना चाहिए। और कोई भी निष्कर्ष निकालने से पहले, दूसरे मनुष्यों से भी पर्याप्त चिंतन मनन करना चाहिए। ये जो चिंतन मनन की प्रक्रिया है, इसमें हमें अपने अनुभव और जो भी हम अवलोकन करते हैं वो सब शामिल होना चाहिए। केवल अनुभव एकांकी होता है और उस पर आधारित निष्कर्ष गलत भी हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर आप देख सकते हैं कि हम सभी को ये अनुभव होता है कि सूर्य पूर्व दिशा से उदय होता है और पश्चिम दिशा में अस्त हो जाता है। यानिकि ऐसा लगता है कि हमारी धरती तो स्थिर है और सूर्य हमारी धरती के चक्कर लगा रहा है। परंतु अब आप सभी जानते हैं कि सत्य इसके विपरीत है कि हमारी धरती के लिए सूर्य स्थिर है और धरती ही सूर्य के चक्कर लगा रही है। इसी प्रकार हम सब जानते हैं कि अपने जीवन में भी हम कितने सारे निष्कर्ष निकालते हैं अनुभवों के आधार पर जोकि बाद में उनमें कई गलत निकलते हैं। इसलिए केवल अनुभव के आधार से लिया गया कोई निष्कर्ष सही ही निकलेगा ये कोई निश्चित नहीं हैं। इसलिए चिंतन मनन में हमें अधिकतम तथ्यों, सूचनाओं, अनुभवों आदि को लेना चाहिए। इससे क्या होगा कि आपके किए हुए निष्कर्ष के सही होने की सम्भावना अधिक हो जायेगी। और आपका जीवन अधिकतम सुखी हो सकेगा।

चिंतन मनन करने की प्रक्रिया

वास्तव में क्या है कि हमें ये चिंतन मनन की प्रक्रिया को समझना चाहिए तभी इसके महत्व को और इसके उपयोग को हम अपने सम्पूर्ण जीवन में समझ सकते हैं। अभी तो मैं जब लोगों को आपस में चिंतन मनन करते हुए देखता हूं तो पाता हूं कि अभी अधिकतर लोगों को ये पता ही नहीं है कि हमें चिंतन मनन किस प्रकार करना चाहिए, क्यो करना चाहिए। इसीलिए बहुत सारे झगडें तो केवल चिंतन मनन करते समय ही हम लोगों में हो जाते हैं। अब तो लगभग सारे लोग ये मानने लग गये हैं कि चिंतन मनन की प्रक्रिया व्यर्थ है इससे झगड़े ही होते हैं। पर फिर भी पूरी तरह से रह भी नहीं पाते चिंतन मनन के बिना। क्योंकि इसके बिना काम भी नहीं चलता, यदि चिंतन मनन का सहारा ना लें तो जोभी हल्के फुल्के निर्णय ले पाते हैं वो भी नहीं ले पायेंगे। और उससे जीवन थोड़ा सरल हो जाता है, नहीं तो और नरक भोगना पड़े। आपने समाचार चैनलों पर देखा होगा कि वहां अधिकतर झगड़ा ही होता रहता है चिंतन मनन करते समय और वे किसी निष्कर्ष पर पहूंचते दिखाई नहीं पड़ते। खैर वहां तो समय भी कम होता है। आओ समझते हैं कि गलती कहां हो रही है। मेरी समझ में चिंतन मनन का पहले उददेश्य तय करना चाहिए और उसके नियम तय करने चाहिए। और चिंतन मनन के तहत हमेशा इस बात का ख्याल रहना चाहिए कि कहीं हम कोई नियम तो नहीं तोड़ रहे हैं या उसके उददेश्य से दूर तो नहीं निकल रहे हैं। और कई बाते तो अभी पता ही नहीं है कि जैसे इस मानव जीवन का उददेश्य क्या है। अब जब हमें मानव जीवन का उददेश्य ही ना मालूम हो और या अलग अलग मालूम हो कि कोई बोले कि जीवन का उददेश्य है मोक्ष पाना और मोक्ष की भी कई परिभाषाएं, कोई कहते हैं कि निर्वाण है, कोई कहता है कि परमात्मा में मिल जाना है, कोई कहता है कि भक्ति करना है, कोई कहता है कि पूजा नमाज आदि ही करना, कोई कहता है कि सब बकवास है कोई उददेश्य नहीं है जीवन का। ये संसार एक दुर्घटना है आदि आदि। अब जिस समाज में इतने सारे भिन्न प्रकार के जीवन के उददेश्य हों वहां किसी एक मापदंड पर कैसे लोग चिंतन मनन कर सकते हैं? पहले तो जीवन का क्या उददेश्य है इसी बात को तय करना चाहिए। अखिर हम सब

मानव हैं, हमारा सबका जीवन का उददेश्य अलग अलग कैसे हो सकता है। हम लोगों में विभिन्नता हो सकती है पर सभी के अन्तिम उददेश्य अलग अलग कैसे हो सकते है? इस विषय को मैंने अपने दूसरी पुस्तक 'जीवन दर्शन' में विस्तार से दिया है। यहां तो मैं संक्षेप में ही दे रहा हूं। यहां मैंने सभी के जीवन का अन्तिमरूप से उददेश्य रखा है कि हम सभी अपना जीवन 'सुखमयरूप' से जीना चाहते हैं।

इसमें किसी को कोई दूसरा मत हो जोकि होगा ही, तो मैं उनसे इस विषय पर चिंतन मनन करना अवश्य चाहुंगा। और जोभी लोग इस विषय पर मुझसे चिंतन मनन करना चाहते हो उनका सदैव स्वागत रहेगा। और ये उददेश्य ही कसौटी बनता है किसी भी चिंतन मनन को जांचने का। उददेश्य से ही दिशा और दशा का निर्धारण होता है। उददेश्य से ही हम जांच सकते हैं

चिंतन मनन की प्रक्रिया

कि हम सही कर रहे हैं कि नहीं, हमारी दिशा सही है कि नही। या कितना सही और कितना गलत हो गया। ये सब उददेश्य से ही तय कर सकते हैं। इसके अलावा और कोई कसौटी सम्भव नहीं है। अब यदि उददेश्य का ही सही ज्ञान नहीं हुआ तो फिर कसौटी भी सही नहीं होगी और सही निश्कर्ष

भी नहीं आयेगा। तो इसी प्रकार आप सभी अपनी इच्छाओं को लिखकर देख सकते हैं और जान सकते हैं कि हमारी इच्छाएं अनंत नहीं हैं बल्कि सीमित है और समयानुसार एक वर्तुल में घूमती रहती हैं। ये तो मैंने एक तरीका आपको बताया ये जानने का। बाकि और भी आप कई तरह से ये जान सकते हैं। वो सारे तरीके मैंने अपनी दूसरी पुस्तक जीवन दर्शन में विस्तारपूर्वक दिये हैं।

क्या प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं?

इस पृथ्वी पर 100 वर्ष पहले भी लोग यही कहते थे कि संसाधन सीमित हैं। जबकि उस समय विश्व की जनसंख्या कोई 1 अरब 50 करोड़ थी। और उस समय जीवन का स्तर भी कितना निम्न था। कोई तकनीकि जैसा भी नहीं था कि लोग प्राकृतिक संसाधनों का अधिक दोहन कर रहे थे। अब जबकि विश्व की जनसंख्या 8 अरब के आसपास पहुंच गई है और लोगों का जीवन स्तर पहले के जीवन स्तर की तुलना में कहीं अधिक समृद्ध है। लेकिन अभी भी लोग कहे जाते हैं कि संसाधन सीमित हैं, जबकि 5 गुना से अधिक जनसंख्या बढ़ चुकी है। बीच में हरित क्रांति और स्वेत क्रांति भी हुइ जिसके कारण जो अभाव दिखाई पड़ता था कम जनसंख्या में भी वो अब जनसंख्या अधिक होने पर भी अभाव नहीं दिखाई पड़ रहा। अब प्रत्येक वर्ष कई देश अपने यहां गेंहू आदि को समुद्र में डाल देते हैं कि कहीं बाजार में गेंहू का मुल्य कम ना हो जाये और किसानों को नुकसान ना हो जाये। अब तो कई वस्तुएं अतिरेक में पैदा हो रही हैं और कई वस्तुएं तो नई पैदा हो रही हैं जोकि पहले होती ही नहीं थी। अभी भी ऐसे कई प्राकृतिक संसाधन हो सकते हैं जिनका अभीतक कोई प्रयोग हुआ ही नहीं हो। और जब विज्ञान का विकास हो तो कई संसाधनों को सीधे ही बनाया जा सके। कल ऐसा भी हो सकता है कि किसी वृक्ष के जींस में कुछ बदलाव करके एक ऐसा वृक्ष बनाया जा सके कि जिसकी लकड़ी लोहे जैसी कठोर हो और उससे हम वो सारे कार्य कर सके जोकि लोहे से करते हैं। तो ये तो महज विज्ञान के विकास की बात है। और भी एक दृष्टिकोण से देख सकते हैं कि इस संसार में प्रत्येक वस्तु निरंतर अपने से अगली वस्तु में बदल रही है। आप

तो जानते ही होंगे कि यहां इस संसार में प्रत्येक वस्तु एक चक्र में ही स्थित रहती है, उसके बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। उदाहरण के लिए जल को लेते हैं। इस उदाहरण को सभी लोग आसानी से समझ सकते हैं, क्योंकि ये सभी के अनुभव में रहता है। जल के चक्र को समझते हैं। ये तरल, गैस और ठोस के रूप में ही पाया जाता है। यानि जल, तरल से लगातार वाष्प बनता रहता है, वाष्प से बर्फ बनता रहता है और बर्फ से लगातार तरल बनता रहता है। सीधे तौर पर देखें तो पानी जोकि पहाड़ों से नदीयों के रूप में समुद्र की और लगातार बहता रहता है। समुद्र से गर्मी होने के कारण लगातार वाष्प बनता रहता है और वाष्प कम तापमान के कारण लगातार बर्फ बनता रहता है। अब आप देखिये कि आप चाहे पानी को प्रयोग करें या ना करें ये लगातार समुद्र की ओर बहता ही रहता है। यदि आप प्रयोग भी कर लेंगे तो बिना समुद्र में जाये ही बीच में वो वाष्प बन जायेगा, क्योंकि आप उसको उपयोग करके बीच में ही उपयोग में ले रहे हैं और जो वाष्प बनने की प्रक्रिया समुद्र में जाकर उसमें होती वो यहीं बीच में ही हो जायेगी। बस अन्तर ये पड़ेगा कि यहां आपके प्रयोग के उपरांत वो वाष्प बनेगा और वहां वो बिना उपयोग के ही वाष्प बन जायेगा। दोनों ही दशा में पानी का वाष्प बनना तय ही है उसे आप रोक नहीं सकते। आपके प्रयोग करने अथवा ना करने से उसमें कोई विषेष अन्तर आने वाला नहीं है। बस थोड़ा सा अन्तर पड़ेगा और वो है स्थान का। यदि आप उसे बीच में उपयोग में ले लेते हैं तो वो यहीं पर वाष्प बन जायेगा और यदि आप प्रयोग नहीं करते हैं तो वो समुद्र में जाकर वाष्प बनेगा। तो केवल स्थान का परिवर्तन आयेगा। और यदि आपने बीच में ही प्रयोग कर लिया तो बस समुद्र का थोड़ा सा जल स्तर कम होगा क्योंकि आप उसे बीच में से वाष्प बनाये दे रहे हैं। और पृथ्वी पर इतना है कि आपके प्रयोग करने पर कोई इतना प्रभाव नहीं होगा समुद्र के जलस्तर पर। इसी प्रकार आप दूसरे खनिज या धातुओं के बारे में समझ सकते हैं कि यदि आप उन्हें प्रयोग नहीं करते तो भी वो अपने से आगे वाली वस्तु में परिवर्तित हो ही रहे हैं और यदि प्रयोग करते है तो भी वो अपने से आगे आने वाली वस्तु में परिवर्तित हो ही रहे होंगे। तो आप प्रयोग करो या ना करो सभी वस्तुएं अपने

अपने चक्रों में निरंतर परिवर्तित हो ही रही हैं। दूसरा जो लोग ईश्वर को मानने या जानने वाले लोग हैं वो तो ऐसे भी समझ सकते हैं कि क्या इस इतने विशाल संसार में ईश्वर ने कोई वस्तु कम बनाई हो सकती है! अभी हमारे पास जो विज्ञान है क्या वो निश्चितरूप से बोल सकता है कि उसने संसार के सारे संसाधनों के बारे में अन्तिमरूप से सब जान लिया कि कौन सा संसाधन कितना और कहां कहां है? तो ये आप और मैं दोनों जानते हैं कि विज्ञान का जबाब ना ही होगा। वो ये ही बोलेगा कि नहीं, सारी जानकारी अभी नहीं है उसके पास। क्योंकि विज्ञान हमेंशा आज के आधार से ही बोलता है कि भाई आज तक जो हमारे पास जानकारी है उसके आधार से ऐसा लगता है और वो अपना निष्कर्ष दे देते हैं, जोकि सही ही है। विज्ञान को ऐसे ही कार्य करना चाहिए। हमारी व्यवस्था में भी विज्ञान यदि बोलेगा कि ये संसाधन कम है तो व्यवस्था भी उनकी इस बात को गम्भीरता से लेगी और उतने संसाधन को ही कैसे सबके लिए प्रयोग में ला सकती है इस पर विचार करेगी और कार्य करेगी। या उसका कोई विकल्प है तो उसका उपयोग करेगी। उसके चक्र को दूषित नहीं करेगी, जितना भी सम्भव हो सकेगा। और एक दूसरे ढंग से देखने की कोशिश करते हैं। थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं कि चलो ठीक है कि संसाधन सीमित हैं और मान लेते है कि आगे आने वाले 1000 वर्ष तक चलेंगे। तो भाईयो ये बताओं कि हमें कम से कम 1000 वर्ष तो सही से जी लेना चाहिए। जब संसाधन समाप्त हो जायेंगे तो हम सब भी समाप्त हो जायेंगे। इसमें समस्या क्या है? दुखी होकर 10000 वर्ष जीने से अच्छा है कि 1000 वर्ष सुखपूर्वक जी लें। कुछ लोग कहते हैं कि 1000 वर्ष के बाद वाले लोग कैसे जीयेंगे बिना संसाधनों के। अब आप सोचो कि अभी तो संसाधन हैं, और जनसंख्या का अधिकांश भाग बिना संसाधनों का प्रयोग करते हुए, दुखी होते हुए, इस आशा में जीये कि आज से 1000 वर्ष बाद हमारी पीढ़िया जी सकें। कमाल की बात है! जो अभी मौजूद लोग हैं, उनके बारे में तो सोच नहीं रहे, और सोच रहे हैं उनके बारें में जो अभी 1000 वर्ष बाद पैदा होंगे! अरे भाई जो हैं उनके बारे में पहले सोचना चाहिए याकि उनके बारे में जोकि हैं ही नहीं! और यदि हम 1000 वर्ष तक अच्छे से सुखपूर्वक जी सकते हैं तो क्यों ना जीये? 1000 वर्ष

के बाद क्या होगा, कुछ मालुम है क्या? लेकिन आज का विज्ञान बता रहा है कि आने वाले कई हजार वर्ष तक तो हमारे पास पर्याप्त संसाधन हैं।

जनसंख्या नियंत्रण

अच्छी व्यवस्था लाकर जनसंख्या भी तो कम की जा सकती है ना। और अच्छी व्यवस्था आने पर जनसंख्या नियंत्रण भी आसान हो जायेगा। फिर केवल उतनी जनसंख्या बनाये रखी जा सकती है ताकि संसाधन कभी

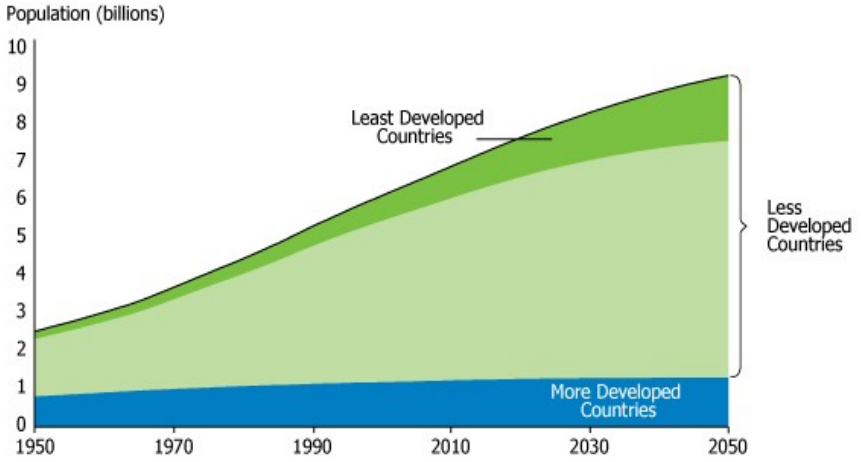

Source: United Nations Population Division, World Population Prospects: The 2010 Revision, medium variant (2011).

भी कम ना पड़े। वैसे भी मनावैज्ञानिक आधार से देखें तो दुखी आदमी ही अधिक जनसंख्या बढ़ाते है। अधिकतर आपने देखा होगा कि अमीर लोग वैसे भी अधिक संतान नहीं करते। तो यदि सबका जीवन स्तर उंचा कर दिया जाय, तो जनसंख्या अपने आप नियंत्रण में होने लगेगी। फिर और दूसरे उपायों से भी इसे अतिशीध्र नियंत्रण में किया जा सकता है। इसमें भला क्या विरोध हो सकता है किसी का? विकसित देशों में तो जनसंख्या उतनी तेजी से नहीं बढ़ रही जितनी तेजी से गरीब देशों में बढ़ रही है। यदि आप इंटरनेट पर जनसंख्या वृद्धि देखें 1950 से 2010 के बीच तो आपको पता चलेगा कि अमेरिका जैसे देश में जनसंख्या दो गुनी से भी कम हुई है परंतु भारत में चीन में 2.5 गुना हुइ है। और ये तो जब है जबकि अमेरिका के पास संसाधन अधिक है चीन और भारत से।

जनसंख्या अधिक होने के सबसे बड़े कारण तो अशिक्षा और भविष्य के प्रति असुरक्षा का अनुभव है। और कुछ धर्म में भी जनसंख्या अधिक करने के कारण मौजूद हैं जिसे अशिक्षा के अंतर्गत ही आप कह सकते हैं। निम्न ग्राफ को देखें।

पहले पेज के ग्राफ में हम देख सकते हैं कि विकसित देशों की जनसंख्यां वृद्धि बहुत कम हुई है जबकि दूसरे देशों की जनसंख्या वृद्धि बहुत अधिक हुई है। कई और परिस्थितियां भी कारण हैं जैसे लोगों को अनुभव है कि जिनके पास अधिक संतानें नहीं है तो समाज में उसके पास ताकत कम रह जाती है और वो अपने आपको बुढ़ापे में दीन हीन अनुभव करते हैं, या उसकी चिता को अग्नि कौन देगा, उसका वंश कैसे चलेगा, बुढ़ापे की लाठी कौन बनेगा, कई बार बेटे के चाह में लड़किया होती चली जाती हैं जबकि उनकी चाह नहीं है उन्हें। और भी कई कारण मिल सकते हैं जोकि जनसंख्या बृद्धि में कम या अधिक सहायक हों। इन कारणों को आप भविष्य के प्रति असुरक्षा के कारण के अंतर्गत रख सकते हैं। पर अच्छी व्यवस्था में अच्छी शिक्षा और भविष्य के प्रति सुरक्षा की भावना पैदा होने से स्वभाविकरूप से भी जनसंख्या वृद्धि में बड़ी गिरावट आ जायेगी। यदि और भी अधिक तेजी से गिरावट लानी हो तो भी संभव है कुछ समय के लिए कानून आदि बनाकर। और भी देखें कि मान लेते हैं कि चलो जिस व्यवस्था कि मैं बात कर रहा हूं उसमें प्राकृतिक संसाधन अधिक प्रयोग होंगे। वैसे नयी व्यवस्था में प्राकृतिक संसाधन नियंत्रण विभाग होगा जोकि बतायेगा कि बिना किसी समस्या के कितना संसाधन प्रयोग कर सकते हैं। पर चलो मान लेते हैं कि कोई नियंत्रण नहीं करेगा। तो मैं आप सभी से ये पूछना चाहता हूं कि आज भी कौनसा नियंत्रण है? क्या आज भी बिना नियंत्रण के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन नहीं हो रहा है? और साथ में उन्हें संतुलन में लाने के लिए कोई कार्य भी नहीं हो रहा। नयी व्यवस्था में तो ऐसी सारी वस्तुएं सामाजिक स्तर से लोगों को प्राप्त करायी जायेंगी जिनका संसाधन कम होगा। उदाहरण के लिए मान लेते हैं कि मोटर साइकिल और कार का उदाहरण लें। मान लेते हैं कि जनसंख्या के आधार से जितना लोहा और एलुमिनियम चाहिए सबको मोटर साइकिल और कार देने के लिए वो हमारे पास नहीं है। तो नयी

व्यवस्था में उसके लिए ये प्रावधान है कि फिर सरकार सबको ये दोनों वस्तुएं व्यक्तिगत आधार से ना देकर सामाजिक आधार से देगी। यहां सामाजिक आधार का अर्थ ये है कि मान लो किसी एक कालोनी या गॉव में 50 हजार लोग रहते हैं जोकि इन दोनों वाहनों का प्रयोग कर सकते हैं तो नयी व्यवस्था में क्या होगा कि कुछ सार्वजनिक स्थान बना देंगे और वहां मान लिया कि कुल मिलाकर 10 हजार वाहन मोटर साईकिल और 10 हजार कारें रख देंगे। और इस विभाग को कम्पयूटर से आनलाइन जोड़ देंगे। जिसको भी जब चाहिए वो तुरंत आनलाईन बुकिंग करके ले जा सकता है और अपना काम करके फिर से वहां जमा कर सकता है। ऐसे ही सबको ये सुविधा प्राप्त होती रह सकती है। इसप्रकार कम वस्तु को अधिक प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार और भी बहुत सारी वस्तुओं में किया जा सकता है। दूसरा कोई जरूरी भी नहीं है कि पूरी गाड़ी को लोहे से ही बनाया जाय। उसमें जहां भी सम्भव हो सके लकड़ी का प्रयोग किया जा सकता है और दूसरी भी जगह जैसे मकान आदि में दरवाजे, खिडकियां आदि में लोहा के स्थान पर लकड़ी प्रयोग में लायी जा सकती है। अलमारियां लकड़ी की बनाई जा सकती है आदि आदि। तो बात सटीक व्यवस्था की है नाकि कम संसाधनों के रोने धोने की। कोई भी समस्या सही व्यवस्था से ही ठीक हो सकती है। इसलिए सारा चक्कर मेनेजमैंट का है, व्यवस्था का है। और एक दृष्टिकौण लें, अभी तो पूंजीवाद में कौन सा नियंत्रण है? जो कार्य लकड़ी से हो सकते हैं वो भी लोहे और दूसरी धातुओं से किये जा रहे हैं। उर्जा के दूसरे संसाधनों का प्रयोग किया जा सकता है पर उसके लिए कोयला और पैटरोल डीजल का प्रयोग किया जा रहा है जोकि प्रदूषण का भी कारण बन रहा है। जंगलों में आग लग रही है उसके लिए कोई योजना नहीं है। तो आप देखेंगे कि यदि सही व्यवस्था नहीं की जाती है तो भी आप इस समस्या का कोई उपाय नहीं कर सकते। पूंजीवाद में हमेंशा ही सरकार और व्यक्ति के बीच खींचतान रहती ही है। इसे समाप्त नहीं किया जा सकता। और पूंजीवाद में ही नहीं यदि आप कोई भी ऐसी व्यवस्था लेकर चलेंगे जिसमें कि निर्णय करने के एक से अधिक केन्द्र हैं तो वहां खींचतान स्वभाविक ही है। उसे समाप्त नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि

किसी संस्था में निर्णय लेने के लिए कई स्वतंत्र केन्द्र बना दिये जायें तो क्या ऐसी संस्था सही से कार्य करती रह सकती है? सबका उत्तर होगा कि नहीं कर सकती। क्योंकि एक केन्द्र कुछ निर्णय करेगा और दूसरा केन्द्र कुछ और निर्णय करेगा। दूसरा जिन्हें नीचे कार्य करना होता है वो समझ नहीं सकेंगे कि किसके निर्णय को क्रियान्वयन किया जाये? इससे हम समझ सकते हैं कि व्यवस्था तो एक केन्द्र वाली ही चाहिए। और भी देखें कि क्या प्राकृतिक संसाधनों पर केवल कुछ लोगों का ही अधिकार होना चाहिए? वो प्रयोग करें तो कोई समस्या नहीं, कोई प्राकृतिक संसाधन कम नहीं, परंतु जब ये बात आती है कि भाई सबको प्रयोग करने दो तो लोग शोर मचाने लगते हैं कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं, कम प्रयोग करो, पानी की बूंद बूंद बचाओ। और देखा जाता है कि अमीर लोग कोई पानी की बूंद नहीं बचाते। ये केवल गरीबों को ही हिदायत दी जाती है। और ये शोर मचाने वाले जितने भी वैज्ञानिक, सरकार में उंचे पदों पर कार्य करने वाले, उद्योगपति और कुछ सामाजिक संगठन ही हैं जोकि खुद तो सारी सुखसुविधाओं का भोग कर रहे हैं और जब सबको देने की बात होती है तो ये शोर मचाने लगते हैं ,कि कम हैं। अरे भाई या तो सबके लिए हो और या तो किसी के लिए ना हो। कम से कम न्याय की बात तो करो। और वैसे सभी देश तो अधिक से अधिक संसाधनों का प्रयोग करने में लगे ही है कौन किसके कहने पर रूक रहा है। जितने भी विकसित देश हैं वो कौन रूक रहा है। वो तो दूसरे देशों का संसाधन भी भोगे ले रहे हैं। और केवल प्राकृतिक संसाधन ही नहीं, मानव संसाधन भी वो भोग ले रहे हैं। तो ये तो सही बात नहीं हो रही ना? जो लोग पर्यावरण प्रदूषण की मीटिंग कर रहे हैं, क्या वो सारे संसाधनों का प्रयोग नहीं कर रहे? निसंदेह कर रहे हैं। तो फिर क्या केवल गरीबों की जिम्मेवारी है कि संसाधन समाप्त ना हो? अमीरों की कोई जिम्मेवारी नहीं है क्या? और युद्ध समग्री में क्या प्रकृतिक संसाधन प्रयोग नहीं होते? जिनको कि बचाया जा सकता है। युद्ध सामग्री तो प्राकृतिक और मानव संसाधनों का 100 प्रतिशत दुरपयोग ही है जिससे कोई सुख सुविधा नहीं मिलती। तो सही व्यवस्था करके कम से कम युद्ध की सामग्री बनने पर तो रोक लगा सकते हैं ना? और इसके स्थान पर लोगों की सुखसुविधा पर ये

संसाधान प्रयोग में लाये जा सकते हैं। तो मुख्य समस्या व्यवस्था की है, नाकि प्राकृतिक संसाधनों के सीमित होने की। और भी देखें कि लगभग 1960 के पहले जब हरितक्रांति और स्वेतक्रांति नहीं हुई थी, नहरें नहीं बनाई गयी थी, बिजली नाम के लिए ही थी भारत में, उस समय ऐसा लगता था कि जिस हिसाब से भारत में जनसंख्या बढ़ रही थी, लेकिन प्रोडक्शन बढ़ने की कोई उम्मीद नहीं लग रही थी। और सोचा जा रहा था कि अब भारत में हालात बहुत बुरे होने वाले हैं। और वो सोच भी सही ही रहे थे। अगर ये दोनों हरित क्रांति और स्वेतक्रांति आदि ना हुई होती तो आज भारत बहुत ही खराब दौर से गुजर रहा होता। परंतु देख रहे हैं कि इस समय भारत विश्व में उभरती हुइ अर्थव्यवस्था है। तो समस्या सटीक व्यवस्था ना होने की है नाकि सीमित संसाधनों की। और ऐसा थोड़े ही है कि केवल प्राकृतिक संसाधन सीमित होने की ही समस्या है। और भी दूसरी बहुत सारी समस्याएं हैं जोकि इससे भी बहुत विकराल रूप धारण किये हैं। अब आप देखिये कि एक आदमी दूसरे आदमी से असुरक्षित महसूस करता है, एक परिवार दूसरे परिवार से असुरक्षित अनुभव करता है, एक समाज दूसरे समाज से असुरक्षित महसूस करता है, इसी प्रकार एक राज्य दूसरे राज्य से असुरक्षित महसूस करता है, एक दश दूसरे देश से असुरक्षित महसूस करता है। और इस असुरक्षा के कारण ही सभी कितनी युद्ध की सामग्री बनाकर बैठे हैं। प्रत्येक वर्ष भारत कितनी बड़ी मात्रा में संसाधन केवल अपनी सेना और पुलिस पर एवं युद्ध की सामग्री पर खर्च करती है जोकि केवल मजबूरी में करना पड़ता है। क्या अच्छा ना हो कि पूरी दुनियां में एक ऐसी व्यवस्था आ जाये जिससे सभी में असुरक्षा की भावना पैदा ही ना हो और ये जो संसाधन सुरक्षा करने पर खर्च होते हैं य लोगों के जीवन स्तर को उंचा करने में प्रयोग हां। परंतु इसके लिए एक कार्य तो कम से कम करना पड़ेगा और वो है कि पहले एक ऐसी व्यवस्था कोई लिखे तो। जिससे कि विश्व सरकार बनने की संभावना पैदा हो। तो ये कार्य तो मैंने कर दिया है। अब तो बस एक और कार्य बचा है और वो है कि इसको सब लोगों तक पहुंचा दिया जाये। जिससे कि सभी लोग आपस में बैठकर ये चिंतन मनन कर लें कि ऐसे ही एक दूसरे से लड़ते रहना चाहते हैं या सभी सुख से एक दूसरे के साथ रहना चाहते हैं। और

यदि सुख से रहना चाहते हैं तो इस व्यवस्था को अपना लें। और नहीं तो जल्दी से फिर युद्ध की घोषणा करें और सब एक दूसरे को मार डालें। फिर ना कोई होगा और ना ही कोई समस्या होगी। तो जो भी निर्णय लें वो ले सकें।

ये आतंकवाद बहुत बड़ी समस्या बनी हुई है जिसके मूल में यदि देखोगे तो आपको सुख सुविधाओं का असमान वितरण ही कारण मिलेगा और उनकी मात्रा पर्याप्त भी नहीं है। सुख सुविधाएं पर्याप्त ना होने के कारण सभी अधिक से अधिक सुख सुविधाओं को भविष्य के लिए आज ही इकटठा कर लेना चाहते हैं। इससे क्या होता है कि एक तो वैसे ही जनसंख्या के हिसाब से सुख सुविधाएं पर्याप्त नहीं हैं उपर से भविष्य के लिए इकटठा करने के कारण और भी कम पड़ जाती हैं। जिससे अधिकतम लोगों का वर्तमान, भूत और भविष्य दुखदायी हो जाता है और सुख सुविधाओं की खींचतान, चोरी आदि ऐसे अपराध वाले रास्तों पर लोग चलने लगते हैं, जिससे दूसरी सारी समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं। जिन्हें हम कहते हैं कि ये लोग बुरे हो गये हैं। और लम्बे समय ऐसे लोगों को देखकर लगता है कि जैसे कुछ लोग अच्छे और कुछ लोग बुरे होते ही हैं। और फिर लोगों को सुधारने के आयोजन होने लगते हैं, बिना ये जाने कि भाई कारण का निवारण किया जाता है परिणाम का निवारण नहीं होता। लोगों का बुरे होना परिणाम है कारण नहीं। एक बार सभी को बैठकर गहन चिंतन मनन करने की जरूरत है। एक दूसरे के आरोप प्रतियारोप लगाने से कुछ समाधान नहीं निकलेगा बल्कि ये भविष्य में

युद्ध की शक्ल ही ले लेगा। आप किसी भी प्रकार से देख लो बिना सही व्यवस्था के कोई समस्या नहीं सुलझने वाली। सही व्यवस्था ही एकमात्र उपाय है सारी समस्याओं का। इस दुनियां में केवल एक ही मूल समस्या है और वो है सही व्यवस्था का ना होना।

आर्थिक समानता

इस बात को भी समझने की आवश्यकता है कि जबतक समाज में आर्थिक समानता नहीं लायेंगे तबतक बाकि और दूसरी समानताओं का कोई महत्व नहीं होगा और वो धरातल पर पूर्णरूप से आ भी नहीं सकेंगी। उदाहरण के लिए भारत में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता है, ऐसा संविधान में लिखा है और सारे नेता लोग हर रोज कितनी बार बोलते भी रहते हैं कि देखों हमारे यहां विचारो को अभिव्यक्त करने की आजादी है। साधारण रूप से देखने में लगेगा कि स्वतंत्रता तो है ना, परंतु

सभी के लिए समान जीवन स्तर होगा पर क्यों, समझें।

- इस व्यवस्था में सभी रोजगार का महत्व बराबर ही होगा। सभी से हमें सुख ही मिलता है।
- यदि कुछ का जीवन स्तर अधिक कर दिया जाये तो इससे उन लोगों में असंतोष होगा जिनका कि जीवन स्तर न्यून होगा।
- और आर्थिक आधार पर समाज में विभिन्न वर्ग पैदा होने लगेंगे। और फिर वहीं सारी समस्याएं पैदा होने लगेंगी जोकि अभी हो रही हैं- अहिंसा, द्वेष, घृणा, लूट, झूठ, युद्ध आदि।
- और फिर लोग आपस में येन केन प्रकारेण जीवन स्तर की बराबरी करने की दोड़ करने लगेंगे। जिसको सरकार कितना भी बल लगाकर रोक नहीं सकती। फिर भ्रष्टाचार, चोरी, हफ्ता वसूली, परस्पर वैमनस्य आदि विभिन्न अपराध पैदा होने लगेंगे।
- तो यदि आप समाज में असमान जीवन स्तर रखते हैं तो इस प्रकार की समस्याएं पैदा होने लगती हैं क्योंकि असमानता एक बड़ा कारण है किसी भी समाज में अधिकतम समस्याओं के पैदा होने में।

जब उसका वास्तविक रूप देखेंगे कि क्या सच में सभी बराबरी से स्वतंत्र हैं अपनी बात को कहने में। तो आप पायेंगे कि नहीं। यहां जिस के पास अधिक संसाधन है वो ही अधिक स्वतंत्र दिखाई पड़ता है। और जिसके पास कुछ नहीं है, वो ना तो कुछ कह सकता और यदि कुछ कहने की कोशिश करता है तो सबसे पहले सरकार ही उसको जेल में बंद कर देती है। और उससे भी पहले दूसरे जिनके पास संसाधन हैं वो उसको बोलने ही नहीं देते। पुलिस प्रशासन भी अधिकतर धनवानों की ही सुनेगा। ये सब स्वभाविक ही हैं। इसमें आप बिना आर्थिक समानता लाये कुछ भी नहीं कर सकते। ये ऐसा ही रहेगा चाहे आप कितने भी कड़े कानून बना लो। अरे भाई कानून पालन कराने वाले लोग ही तो होंगे ना। अब जिसके पास धन अधिक है और धन से ही सारी सुखसुविधाएं आती हैं तो कोई पुलिस वाला क्यों नहीं

धनवान से धन लेकर खुद धनवान बनना चाहेगा? और उन सारी सुखसुविधाओं को भोगना क्यों नहीं चाहेगा? आप बताओं क्या कोई भी समझदार आदमी निर्धन होकर जीवन जीना चाहेगा। चाहे आप उसको कितना भी समझाते रहो कि तुम्हारी निर्धनता का कारण तुम्हारे पूर्व जन्मों के कर्म हैं, सरकार नहीं आदि आदि। आप देख सकते हैं कि बिना आर्थिक समानता किये दूसरी समानताओं का भी कोई बहुत महत्व नहीं होता। आर्थिक समानता की स्थिति में ही बाकि समानताओं का अर्थ होता है, मूल्य होता है। नहीं तो यदि आप बाकि सारी समानताएं सभी को देते हैं और आर्थिक समानता नहीं देते तो आप जीवन में पाओगे कि बाकि समानताएं प्राप्त होती ही नहीं। यदि आर्थिक समानता है तो ही बाकि समानताएं भी प्राप्त होती हैं। तो आर्थिक समानता ही पहली और मुख्य समानता होती है। पहले इसकी ही बात करनी चाहिए। धनवान आदमी अपनी स्वतंत्रता से कोई भी रोजगार कर सकता है पर क्या गरीब आदमी को ये स्वतंत्रता है कि वो कोई भी रोजगार कर सके? आप कहोगे कि संविधान में तो लिखा है। पर भाई क्या धरातल पर वो धनवान आदमी की तरह स्वतंत्र है कोई भी रोजगार करने को? आप कहोगे कि नहीं। तो आप समझ सकते हैं कि बिना आर्थिक समानता के बाकि किसी समानता को धरातल पर अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, चाहे जितनी जोर से संविधान में लिखो, चाहे रोज सुबह सायं समानता की आरतियां गाओ, संगोष्टियां करो, कवितायें सुनाओं, हड़ताले करो, चाहे कुछ भी करो, उससे समाधान नहीं होगा। बस आर्थिक समानता दे दो फिर और समानताएं भी अभिव्यक्त होने लगेंगी। आर्थिक समानता का परिणाम हैं बाकि समानताएं। आर्थिक समानता ही शर्त है बाकि समानताओं को उत्पन्न करने में। आर्थिक समानता जननी है बाकि समानताओं की। आर्थिक स्वतंत्रता ही और दूसरी स्वतंत्रताओं को जन्म देती है, और उन्हें बनाये रखती है। आर्थिक स्वतंत्रता गई तो समझो कि बाकि स्वतंत्रताएं भी नष्ट हो जाती हैं। आओं अब उसी नीति पर चर्चा को आगे बढ़ाते हैं जिससे कि आर्थिक समानता आ सकती है। उदाहरण के लिए आज के आधार से मान लीजिए कि जीवन से सम्बंधित सारी सुख सुविधाएं एक व्यक्ति के लिए 20 लाख रूपयों में आ जाती हैं। तो प्रत्येक व्यक्ति की 20 लाख तक की सीमा सरकार द्वारा निर्धारित कर

दी जायेगी। इसके अनुसार लोग मांग करते रहेंगे और सरकार निर्माण करेगी और लोगों तक पहुंचायेगी। इससे सभी लोगों के जीवन का स्तर समान ही होगा। साथियों सभी तरह के सुखों को भोगने के लिए इस बात का इंतजार करने की क्या जरूरत है कि पहले धन कमा लें और बाद में भोगें? साथियों उपर दिये गये सिस्टम को यदि हम स्वीकार कर लेते हैं तो बिना इंतजार किये ही सारे ईच्छित भोगों को हम सभी बड़े ही आराम से जीवन के पहले ही दिन से भोगते रह सकते हैं, भले ही हमारे पास धन हो या ना हो। अर्थात आपके पास धन है या नहीं इससे आपके सुख में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। आपका सुख निरंतर बना रहेगा यानिकि आप सुख की अवस्था में बने रहेंगे। सारी सुख सुविधाएं सभी लोग प्राप्त करते रह सकेंगे सदैव के लिए। नम्बर के हिसाब से सभी को उनकी मांग के अनुसार उनका भोग उनके दिये पते पर पहुंचता रहेगा।

ऐसा होने के बाद फिर ना किसी को भविष्य की चिंता होगी, क्योंकि उसका वर्तमान और भूतकाल सुखमय ही बनेगा। तो सभी का वर्तमान सुखमय होगा तो उसका भूतकाल यानिकि उसकी सारी यादें सुखमय होंगी और जब उसकी यादें सुखमय होंगी तो भविष्य में भी सुख की कल्पना ही करेगा। क्योंकि खराब भूतकाल के कारण ही आदमी को भविष्य के प्रति चिंता होने लगती है जिसके कारण आदमी परेशानी में जीने लगता है और वर्तमान में यदि कुछ सुख भी हैं उसके पास, तो उन्हें भी सही से भोग नहीं पाता भविष्य की चिंता के कारण। अब आदमी या तो भविष्य की चिंता करेगा या तो वर्तमान का सुख भोगेगा क्योंकि जीना तो वर्तमान में ही होता है ना? और भविष्य की चिंता भी वर्तमान में ही हो रही है। भविष्य के प्रति चिंतित आदमी वर्तमान को भी ठीक से जी नहीं पाता। तो ये व्यवस्था आने पर सभी लोगों की भविष्य के प्रति सभी चिंताये उत्पन्न ही नहीं होंगी, जिसके कारण वो वर्तमान में सुखपूर्वक जीवन जीता रह सकेगा। फिर किसी को वर्तमान में सुखपूर्वक जीने के लिए कोई ध्यान समाधि आदि करने की आवश्यकता नहीं होगी। भविष्य की चिंता में लगे रहने से आदमी उलटे सीधे उपाय सोचते रहते हैं कि ऐसे धन कमाये कि वैसे कमायें, उसके लिए आदमी कानून तोड़ने पर भी मजबूर हो जाता है और अपराधी बन जाता है, और फिर एक अंतहीन

प्रक्रिया चल पड़ती है दुखी होने की और इसमें कभी कभी तो आदमी आत्महत्या तक कर लेता है। या तथाकथित अध्यात्म के रास्ते चलने की कौशिश करने लगता है। और त्याग, तपस्या, कठिनाई, स्वर्ग की कल्पना, ये साधना और वो साधना, इस धर्म और वो धर्म आदि के रास्ते पर जीने की कौशिश करने लगता है। जिसमें और हताशा ही हाथ लगती है। अब जब समस्या बाहर संसार में है और समाधान अंदर कर रहा है तो इसमें तो सफलता मिल नहीं सकती है ना। आज का नासमझ अध्यात्म कह रहा है कि बाहर का तो हम कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि कुछ समझ नहीं आ रहा है कि क्या करे। परंतु अंदर कुछ करके आशा जैसी तो लगती है कि शायद इस जीवन में नहीं तो अगले किसी जीवन में समाधान मिल जायेगा। इस लोक में नहीं तो कम से कम स्वर्ग, बैकुण्ठ, जन्नत आदि की आशा तो बनती ही है। इस नयी व्यवस्था के आने पर फिर ना किसी को आत्महत्या करनी पड़ेगी, कि उसके रहते या उसके बिना उसके परिवार का भरण पोषण कैसे होगा। ना कहीं किसी को चोरी करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा, ना ही किसी के बच्चों का अपहरण करने के बारे में किसी को सोचना पड़ेगा, और जिनके बच्चे अपहरण होते हैं उनका डर भी दूर हो जायेगा। चोरी का डर भी दूर हो जायेगा। सुख सुविधाओं आदि के लिए ही लोग एक दूसरे के साथ लड़ाई दंगा करते हैं। उसकी भी कोई जरूरत किसी को नहीं रह जायेगी। तो लड़ाई दंगे का भी डर हमारे जीवन से हमेशा के लिए चला जायेगा। सबको सुख शांति बनी रहेगी। किसी को झूठ नहीं बोलना पड़ेगा। आपको फिर सुख शांति के लिए कोई पूजा पाठ नहीं करनी पड़ेगा, कोई ध्यान नहीं लगाना पड़ेगा, कोई दरवाजे पर नींबू और मिर्च नही लटकाना पड़ेगा, कोई नमाज नहीं करनी पड़ेगी, कोई मंदिर मस्जिद चर्च गुरूद्वारे जाकर मन्नतें नहीं मांगनी पड़ेंगी, फिर समाज में कहीं भी आप भिकारी नहीं पायेंगे। फिर किसी को दान देने और लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी, सब अपने पैरों पर खड़ होंगे, समाज के सभी लोग, वो चाहे बच्चे हों या बड़े हों या बुजुर्ग हों या स्त्री हों या पुरूष हों, सभी स्वाबलम्बी होंगे, समान जीवन स्तर वाले होंगे। कोई किसी का कर्जदार नहीं होगा। किसी को भी किसी के आर्थिक सहारे की जरूरत नहीं होगी। फिर लोगों के जीवन में स्वभाविकरूप

से सत्य होगा, प्रेम होगा, न्याय होगा, पुन्य होगा। लड़ाई दंगे की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। फिर सब सच ही बोल रहे होंगे क्योंकि झूठ बोलने का कोई अर्थ ही ना रह जायेगा। फिर सब आपस में प्रेम ही कर रहे होंगे क्योंकि किसी से द्वेष करने का कोई कारण ही नहीं होगा। फिर किसी को ये नहीं बोलना पड़ेगा कि सदा सत्य बोलो, सबको प्रेम करो, दया करो आदि आदि। फिर सभी अपने आप ही सारी नैतिकता का जीवन जी रहे होंगे क्योंकि जिन कारणों से लोग अनैतिक होते है वो तो पैदा ही नहीं हो रहे होंगे। मूलतः सभी लोग अच्छे ही होते हैं वो केवल मजबूरी में या फंसे में या पारम्परिक रूप से ही गलत काम करते हैं। अगर आप थोड़ा ध्यान से समझने का प्रयास करेंगे तो आप पायेंगे कि इस दुनिया में सारा आतंकवाद और सभी प्रकार के जो गलत तरीके हैं एक दूसरे को दुख देने के वो इसी कारण से हैं कि लोगों के पास पर्याप्त साधन नहीं हैं सुखी होने के लिए। उन्हीं साधनों को एक दूसरे से छीनने के लिए ही लोगों को दुख देने वाले विभिन्न तरीके भी अपनाने पड़ते हैं। अब दुखी आदमी से आप और आशा भी क्या कर सकते हैं। अब जो खुद दुखी है वो क्या फूल बरसायेगा दूसरों पर? नहीं ना। अब जिसके पास दुख होगा तो वो दुख ही बांटेगा ना समाज में। सुख बांटने के लिए पहले सुख होना तो जरूरी है ना पास में। सरकार जब आपकी सारी व्यवस्था आसानी से कर देगी जैसाकि मैंने उपर लिखा है तो किसी के पास भी कोई कारण नहीं बचेगा किसी को कोई भी दुख पहुंचाने का। ये बात आप सभी आसानी से समझ सकते हैं।

क्या लोग अच्छे या बुरे होते हैं?

यदि हम अपने अंदर झांक कर देखें कि कब हमने दूसरे लोगों को दुख पहुंचाया है या दुख पहुंचाने का सोचा है, तो हम पायेंगे कि जब भी सीधे रास्ते से हमें सुख नहीं मिला तो गलत रास्ते हमने अपनाये होंगे। कहावत भी आपने सुनी होगी कि जब सीधी उंगली से घी नही निकलता तो उंगली को टेड़ा करना पड़ता है। इसका मतलब पहले तो लोग सीधी उंगली से ही घी निकालने की कोशिश करते हैं। मौजूदा संविधान के अनुसार ही जीने की कोशिश करते हैं, परंतु यदि वे उसमें कामयाब नहीं होते तो फिर

संविधान के विपरीत साधन अपनाते हैं, जिन्हें विभिन्न अपराधों के नाम से जाना जाता है समाज में। आप किसी भी देश में और किसी भी काल में देख लें मनुष्य ऐसे ही जीता है। पहले तो आदमी अपनी भरपूर कोशिश करता है संविधान के हिसाब से जीने की। यदि संविधान में कोई कठिन रास्ता भी मिलता है तो भी आदमी पहले उससे ही कोशिश करता है। उसमें बहुत प्रतियोगिता करनी पड़ती है। पर आदमी वो भी कोशिश करता है, पर जब सम्भव नहीं हो पाता तब वो अपराध का सहारा लेने की ओर अग्रसर हो जाता है। इसके बिना कोई उपाय भी नहीं है आज की व्यवस्था में, क्योंकि सुख चाहिए 1000 लोगों को और वहां सुख है केवल 10 लोगों के लिए। रोजगार चाहिए था 1000 लागों को और वहां रोजगार है केवल 10 लोगों के लिए। 10 को तो सरकार ने रोजगार दिया और बाकि 990 को छोड़ दिया उनके अपने हाल पर, ये भी ना देखा कि किसके घर पर रोटी खाने को है कि नहीं, किसके घर में बच्चा बीमार तो नहीं है। किसी के माता पिता लाचार तो नहीं हैं। अब हैरान परेशान लोग फिर भी जैसे तैसे कोशिश करते हैं गरीबी में रहने की। पर गरीबी में, मुफलिसी में कौन कितने दिन सच्चा बना रह सकता है, प्रेम करता रह सकता है, ईमानदार बना रह सकता है? शायद कुछ मुटठी भर लोग ही खराब हालत में भी अनाचार ना करें। अधिकतर तो गलत रास्ते अपना ही लेंगे। अब उन्हें इसमें हम लोग दोष दें, ये तो कोई न्याय नहीं हुआ उनके साथ। अब समाज कुछ लोगों से तो मिलकर नहीं बनता ना, समाज तो सभी से मिलकर बनता है जिसमें बलवान भी होते हैं, कमजोर भी होते है, बच्चे भी होते हैं, स्त्रियां भी होती है, कहने का अर्थ कि कई प्रकार के लोग होते हैं। तो सही व्यवस्था ही एकमात्र विकल्प बचता है। खराब व्यवस्था में सभी लोगों से नैतिक बने रहने की आशा करना तो सही नहीं होगा। इतिहास इस अनुभव का गवाह भी है। नैतिकता को तो एक प्रकार से सही व्यवस्था का परिणाम समझना चाहिए। या सही व्यवस्था के लिए कसौटी समझना चाहिए। यदि सारी नैतिकता स्वभाविकरूप से लोगों में आ रही है, तो समझना चाहिए कि सही व्यवस्था है, नहीं तो समझना चाहिए कि कहीं ना कहीं व्यवस्था में त्रुटि है। और पहले उसे सही करना चाहिए। जैसे ही व्यवस्था सही होगी तो परिणाम स्वरूप नैतिकता अपने आप आने

लगेगी क्योंकि नैतिकता या अनैतिकता किसी भी व्यवस्था का परिणाम ही होते हैं। उसे जोर जबरदस्ती लाना नहीं पड़ता जीवन में। वो सुखी सुखी अपने आप आ जाती है। मौजूदा व्यवस्था में तो पक्का ही है कि 990 लोगों को सुख नहीं मिलेगा।

और 10 लोगों में अपना नम्बर आ ही जायेगा ये भी नामुमकिन ही लगता है सबको, और यदि आ भी जाता तो जो 990 लोग बचे, उनसे हमें हमेशा ही डर लगा रहेगा कि वो कभी भी चुराने या छीनने आ सकते है टोली बना कर। तो साथियो जो हमें मिलता भी है इस तरह से उसका भी जाने का डर ही लगा रहता है। जिन 10 लोगों को भी कुछ सुखसुविधाएं मिलती हैं अथाह मेहनत के बाद या गलत रास्तों के द्वारा भी, या उतनी प्रतिद्वंदिता करके भी, उन्हें भी वे सफल कहे जाने वाले लोग सही से भोग नहीं पाते क्योंकि हमेशा डर ही लगा रहता है कि पता नहीं कब तक ये सुखसुविधाएं हमारे पास रह पायेंगी। कब कौन इसे हमसे छीनने में कामयाब हो जायेगा पता नहीं। क्योंकि बहुत सारे लोग छीनने के प्रयास में लगे रहते हैं पता नही कौन कब सफल हो जाये? सगे संबंधियों पर भी सदैव शक बना ही रहता है कि कब धोखा दे दे। इस कारण उनके संबंध भी भ्रम की स्थिति में ही रहते हैं। तो जो सुखसुविधा भी उनके पास होती हैं उसे भी डरते डरते ही वे लोग भोगते हैं। और फिर ये कहावत लोग कहने लगते हैं कि सुख अपने साथ दुख भी लाता है। जबकि ये सत्य नहीं है। केवल गलत व्यवस्था के कारण ऐसा हुआ जा रहा है। अब इस तरह से तो कोई भी सुखी नहीं हो सकता ना। और एक बात और, कुछ लोग ठीक से जीयें और दूसरे लोग तड़पते रहें ये भी तो सही नहीं लगता ना किसी को भी, आखिर हैं तो हम सब मनुष्य ही ना। तो साथियों जन्म से कोई भी मनुष्य गलत नहीं होता परिस्थितियां मनुष्य को मजबूर कर देती हैं गलत होने के लिए। हालांकि ये भी बात सही है कि विपरीत परिस्थितियों के बाबजूद भी कुछ लोग गलत नहीं हो पाते। वो सहन कर जाते है सारे दुखों को। पर ऐसे तो कुछ ही लोग होते हैं। लेकिन इतना तो पक्का ही है कि उन्हें भी बहुत दुख उठाने पड़ते हैं जोकि वो भी नहीं चाहते और ना उनके परिवार वाले ही चाहते हैं। ऐसे नैतिकवान लोगों के घरों में जाकर देखों कि उनके परिवार कितने दुख

में जीते हैं और वो इन नैतिकवान लोगों को कोसते रहते हैं। और वैसे भी कुछ लोगों से ये दुनिया चलती भी नहीं। नहीं तो भगवान कुछ ही लोगों को पैदा करके रूक जाता। यहां तो सभी को लेकर ही सोचना होगा। अधिकतर तो सामान्य लोग ही होते हैं जोकि परिस्थितियों के आधार से ही सही और गलत रास्तों पर हो जाते हैं।

निष्कर्ष

इस सबसे यही निर्णय निकलता है साथियां कि यदि हम सबके पास आसान रास्ते होते सारे सुख पाने के तो हममें से किसी ने भी कभी भी गलत रास्तों को नहीं चुना होता। तब किसी को कुछ भी खोने का डर भी ना होता और सारी सुखसुविधाएं भी हम सभी के पास होती। हम सभी एक दूसरे के साथ पूर्णरूप से सुखी जीवन जी रहे होते। साथियों अब आपके इस साथी ने ऐसी नीतियां, ऐसी व्यवस्था खोज निकाली है जिससे कि अब सारी सुखसुविधाएं सभी के लिए एक साथ समानरूप से उपलब्ध हो जायेंगी। अब बस एक ही जरूरत रह गई है और वो है कि जल्दी से जल्दी इन नीतियों को सभी लोगों तक पहुंचाये और फिर सब मिलकर इन्हें सरकार के स्तर पर क्रियान्वित कर लें। अब चूंकि लोकतंत्र है तो लोकतंत्र में जब जिस बात को सभी लोग चाहते हैं, वो हो जाती ह। उसे कोई नहीं रोकता। इस नीति पर या आगे भी जो मैं नीतियां लिख रहा हूं यदि उनपर किसी को कोई प्रश्न उठता हो कि ये कैसे हो सकता है, कि ये तो असम्भव है, कि इसमें तो ये कमी है आदि तो कृप्या ऐसे लोगों से मेरी प्रार्थना है कि वो पहले मुझे समझाये कि क्या कमी है और यदि कमी निकलती है तो उसे सही करके फिर से समाज को दिया जायगा इस व्यवस्था को। आपका ये बहुत बड़ा योगदान होगा, समाज को सुखी बनाने में। केवल कमी निकालकर साइड ना हो जायें बल्कि मेरे साथ में आकर उसका समाधान खोजने की चेष्टा करें। जो कमी निकाल सकता है तो वो समाधान भी निकाल सकता है। इस सिस्टम को जो भी देश स्वीकार कर लेगा, वह देश 5 वर्ष के अंदर ही सभी प्रकार के सुखों से भरपूर हो जायेगा। उस देश के सभी नागरिक सम्पूर्ण रूप से सभी सुखों को प्राप्त कर लेंगे और लगातार सभी सुखों को प्राप्त करते रहेंगे। सभी के पास शिक्षा होगी, सभी के पास रोजगार होगा, सभी के पास

सारी सुख सुविधाओं सहित एक बड़ा सा घर होगा, प्रत्येक प्रकार के सुरक्षा इंतजाम होंगे। इसी प्रकार सारा संसार भी इस सिस्टम को स्वीकार करके सभी प्रकार के सुखों को आसानी से प्राप्त कर सकेगा। अब सुख सुविधाओं के लिए धन की अनिवार्यता नहीं होगी। आपके पास धन नहीं भी है तो भी आप ये सिस्टम आने के बाद जल्दी ही सबकुछ प्राप्त कर पाओगे। मैंने जो भी नीतियां इस पुस्तक में दी हैं उनका क्या आधार है उसे समझने के लिए हमें इस संसार को जानना होगा कि ये क्यों है और क्या है। नीचे जो भी लिख रहा हूं वो केवल बातें समझाने के लिए है, इसको लेकर कोई अन्यथा ना समझे। इसको लेकर ऐसा ना समझें, कि ये मेरे धर्म के अनुसार है कि नहीं है ऐसी बातों में ना पड़े। ये केवल व्यवस्था को समझने के लिए है नाकि किसी और बात के लिए। आओ अब इस संसार को समझने का प्रयास करते हैं कि ये क्यों है और क्या है। इसे मैंने मूल सिद्धांत का नाम इसलिए दे रहा हूं क्योंकि मैंने इस व्यवस्था और इसमें सारी नीतियों का निर्माण करते समय इसको ही आधार बनाया है। आओ अब आगे इसे समझने का प्रयास करते हैं।

•••

अध्याय–3

मूल सिद्धांत

इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर जहां भी देखो वहां पर ये ही दिखाई पड़ेगा कि समस्त जीव प्रत्येक अवस्था में सुख ही चाहते हैं। चाहे प्रकृति में देखो या संस्कृति में देखो, दोनों में ही समस्त प्रकार के जीव सुख की ओर जाते ही दिखाई देंगे। सुख के लिए ही उनके लिए सारे प्रयास करते दिखाई देंगे। मूलरूप से सुख ही उनकी गति का एक मात्र कारण होगा। यही बात आपको वृक्ष–वनस्पति में भी दिखाई देगी लेकिन वो पूरी तरह से प्राकृतिक होते हैं क्योंकि वहां संवेदनशीलता बहुत ही न्यून मात्रा में होती है। अर्थात इस सृष्टि के होने का मूल कारण ही यही है कि यहां सभी अपने–अपने सुखों को हमेशा प्राप्त करते रह सकें। इसके अलावा और कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। प्रत्येक अवस्था में सुख ही सभी जीवों का परम लक्ष्य है ऐसा मैं देख और समझ पाया हूं। और शायद आप भी देख पा रहे होंगे। यही मूल कारण दिखाई पड़ता है मुझे इस अस्तित्व का। तो एक तथ्य या सत्य तो ये हुआ। हमें व्यवस्था का निर्माण करने में भी इसी तथ्य का, इसी सत्य का हमेशा ध्यान रखना होगा कि हमारे प्रत्येक कदम से प्रत्येक अवस्था में सभी के लिए सुख ही उत्पन्न होना चाहिए। स्मरण रहे कि यह व्यवस्था आने पर भी यदि कहीं पर भी दुख दिखाई पड़े तो सर्वप्रथम व्यवस्था में ही कहीं दोष है ऐसा जानना चाहिए। और पहले व्यवस्था का ही निरीक्षण करना चाहिए। उसके बाद ही कुछ और देखना चाहिए। एक बात तो ये हुई कि सभी को हमेशा सुख चाहिए। दूसरा, इस पृथ्वी पर एक मनुस्य जाति को ही लें तो वह अरबों की संख्या में हैं और एक मनुस्य दूसरे मनुस्य से किसी ना किसी मायने में भिन्नता लिए हुए है। और बाकि चराचर जगत को देखो तो सब जगह भिन्नता ही भिन्नता दिखाई देगी। स्वभाव में भिन्नता, स्पर्श में भिन्नता, रंग–रूप में भिन्नता, स्वाद में भिन्नता, गंध में भिन्नता। ये तो थी प्राकृतिक भिन्नता, इसके आगे फिर सांस्कृतिक भिन्नता भी जोकि हम लोग अपने से पैदा करते हैं। हमें दिख ही रहा है कि कितने बड़े पैमाने पर इस दुनिया में

विभिन्नताएं हैं। दूसरी बात हुई कि हम सभी अनेक है और विभिन्न है। दूसरा तथ्य या सत्य
ये विभिन्नता हुई।

तीसरा, इतनी विभिन्नताओं के रहते एक सत्य ये भी है कि हम सब एक ही तत्व के अनेक रूप हैं। वैज्ञानिक भी कहते हैं कि सब उर्जा का ही रूप है। हम सब उसी से बने हैं। हम सब एक ही माला के मोतियों की तरह एक दूसरे से संबंधित हैं। हम सब एक ही आकाश में रहते है, हम सब एक ही वायुमंडल से श्वांस लेते है। हम सब एक ही सूर्य से अग्नि प्राप्त करते है। हम सब एक ही समुद्र से जल प्राप्त करते हैं। हम सब एक ही पृथ्वी पर निवास करते हैं। हम सब एक ही प्राकृतिक व्यवस्था में रहते हैं। तो आप विभिन्न प्रकार से देख सकते हैं कि हम सब किस प्रकार एक दूसरे से संबंधित हैं। अगर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में से किसी को भी कुछ असंतुलन हो जाए तो हम सभी का विनाश निश्चित है। क्योंकि हमारे
शरीर भी इन्ही पॉच तत्वों से बने हैं और इन्हीं पॉचों तत्वों के आधार पर ये बने रहते हैं। इनमें से किसी एक तत्व का असंतुलन भी हमारा विनाश करने

के लिए पर्याप्त है। यदि वैज्ञानिकरूप से और दार्शनिकरूप से देखें तो हम पायेंगे कि कोई एक तत्व ही ये विस्तारित होकर सारा संसार हो गया है। यदि इस संसार की तुलना किसी विशाल वृक्ष से की जाये तो ऐसा कह सकते हैं कि किसी एक ही वृक्ष की हमसब विभिन्न शाखाएं, पत्ते, फूल और बीज हैं। जोकि एक दूसरे से कहीं ना जुड़ी हुई मालूम पड़ेंगी और यदि उसके मूल में जाकर देखें तो पता चलेगा कि वहां तो हमसब एक ही है। तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि मूल में हमसब एक ही हैं और उपर हमसब विभिन्न भी हैं। अब मूल में जब हमसब एक ही है तो मूल इच्छा तो हम सबकी एक ही होगी, दो तो नहीं हो सकती। और वो इच्छा सदैव सुखी बने रहने की ही है, ये बात पहले ही उपर निर्णीत हो चुकी है। इसप्रकार तीसरा तथ्य या सत्य ये हुआ कि मूल में हम सब एक ही हैं। कोई एक ही तत्व अनेकता को प्राप्त हुआ है। जैसे एक ही बीज वृक्ष हो गया है। ब्रहम ही ब्रहमांड हो गया है। सृष्टा ही सृष्टि हो गया है। चौथ, अनेक और विभिन्न होने के कारण हम सभी के सुख और उनके कारण भी अलग अलग हैं। यानिकि ये जरूरी नहीं कि किसी एक प्रकार की वस्तु से सभी को समानरूप से सुख होता हो। किन्हीं को तो उससे दुख भी हो सकता है। और एक वस्तु से भी किसी को कभी सुख और कभी दुख भी हो सकता है। इसे ऐसे समझें कि जब भी हमारी ईच्छानुसार हमारे जीवन की गति होती है और यदि वो प्रकृति से विपरीत नहीं होता तो हमें सुख होता है। नहीं तो ईच्छा के विपरीत और प्रकृति के विपरीत होने से हमें दुख होता है। तो यहां तथ्य ये निकल कर आया कि हमारे सुख इन दो बातो पर निर्भर करते हैं। ईच्छा के अनुसार और प्रकृति के अनुसार। तो उपर की चर्चा से कुछ आधारभूत बातें निकलकर आयीं हैं जिन्हें हम यहां एक साथ रख लें। पहला, मूल में हमसब एक हैं। दूसरा, उपर में हमसब अनेक है और विभिन्न हैं। तीसरा, हम सभी की मूल इच्छा एक ही है सदैव सुखी रहने की। और ईच्छानुसार और प्रकृति अनुसार जीवन। इसप्रकार से अब आप देख सकते हैं कि इन्हीं सब तथ्यों को आधार मानकर ही मैंने इस व्यवस्था का निर्माण किया है।

क्या हमें व्यवस्था की आवश्यकता है?

अब व्यवस्था को लाने से पहले ये भी निरीक्षण कर लेते है कि क्या सच में हमें व्यवस्था की आवश्यकता है। याकि बिना व्यवस्था के भी बात बन सकती है। क्योंकि मैंने कुछ लोग देखे हैं ऐसी बाते करते हुए, कि सभी दुखों का मूल कारण ये व्यवस्थाएं ही है। यदि इस संसार में कोई व्यवस्था ना हो तो सभी यहां सर्वाधिक सुखी रहेंगे। यानिकि हम सभी दो प्रकार से जीवन जी सकते हैं। एक तो अकेले अकेले कि भाई हमें किसी व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। सब अपना अपना देखो और जिसको जैसे जीना है जीयां। और दूसरा ये कि बिना व्यवस्था के सुखी जीवन संभव नहीं है। तो ये दो ही सम्भावनाएं हो सकती है। एक बिना व्यवस्था वाला जीवन और दूसरा

व्यवस्था वाला जीवन। दोनों को समझते हैं और फिर सही निष्कर्ष लेंगे। बिना व्यवस्था वाली संभावना का निरीक्षण पहले करते हैं। क्योंकि यदि व्यवस्था की आवश्यकता ही नहीं हुई तो उस दिशा में कदम बढ़ायेंगे। और यदि व्यवस्था की आवश्यकता हुई तो फिर एक सही व्यवस्था का निर्माण करके उसे अपने जीवन में लायेंगे। जब मेरी उन लोगों से चर्चा हुई जोकि कह रहे थे कि सभी दुखों की जड़ ये व्यवस्थाएं हैं। मैंने उनसे प्रश्न कि मान लो यदि ये सारी व्यवस्थाएं समाप्त कर दे तो जीवन कैसा होगा? वे बोले कि फिर सब अपने अनुसार जीवन जीयेंगे। इसके बाद मैंने पूछा कि यदि कोई पहलवान जैसा आदमी आकर किसी को लूटने लगे तब क्या होगा? क्योंकि अब वहां कोई व्यवस्था तो है नहीं कि भाई किसी को शिकायत कर दे वो आदमी जाकर। और ऐसे ही वो पहलवान आदमी प्रत्येक दिन किसी ना किसी कमजोर आदमी को लूट अपना जीवन यापन करने लगे। तो ऐसी परस्थिति में क्या वो कमजोर आदमी सुखी जीवन जी पायेगा? क्या उसे सदैव उस पहलवान का भय नहीं डरायेगा कि पता नहीं कब आ जाये और लूटकर ले जाये? तो वे लोग बोले कि हां ये खतरा तो रहेगा। फिर मैंने पूछा कि यदि ये आदमी ही 50 लोगों को बोले कि प्रत्येक सप्ताह उसके पास आपकी कमाई का 10 वां हिस्सा पहुंच जाना चाहिए तब वो 50 लोग क्या करेंगे? क्या उसे अपनी कमाई का 10 वां हिस्सा पहंचायेंगे, या कुछ

और करेंगे? इस पर वे बोले कि वे 50 लोग अपना एक समूह बना लेंगे जिससे कि से अकेला उनको ना लूट सके। मैंने पूछा कि जब वे समूह बनायेंगे तो उस समूह के कुछ नीति नियम भी बनायेंगे? वे बोले, हां वो तो बनाने पड़ेंगे, नहीं तो समूह स्थिर आपस में व्यवहार कैसे करेगा। अब उनसे मैंने कहा कि भाईयों ये समूह बनाना और नीति नियम बनाने को ही तो व्यवस्था कहते हैं। ये तो फिर व्यवस्था का प्रारम्भ हो जायेगा। आप तो कुछ ऐसे उपाय बताओं कि कोई समूह भी ना बने और कोई नीति नियम भी ना बने और ये पहलवान वाली समस्या भी हल हो जाये। बहुत सोच समझने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बिना दूसरे लोगों की सहायता लिए पहलवान से अकेले निबटना तो अपनी मृत्यु को बुलाना है। और यदि किसी का सहयोग लेते हैं तो फिर तो ये व्यवस्था का प्रारम्भ ही हो जायेगा। और भी दूसरे दृष्टिकौण से समझने का प्रयास करते हैं। हालांकि ऐसा सम्भव नहीं है पर चलो ऐसा भी मान लो कोई किसी को परेशान नहीं करेगा। तो कैसा जीवन होगा लोगों का? एक आदमी अकेला अपने बल पर कितना सुख प्राप्त कर सकता है? तो वे बोले कि खेती करेगा, और अपना जीवन जीयेगा। मैंने पूछा कि भाई वो अकेला है यानिकि वो कोई पशु का सहयोग भी नहीं ले सकता है। बीच में ही वे बोले कि पशु का सहयोग क्यों नहीं ले सकता? फिर हल कैसे चलायेगा स्वयं? वो तो बहुत कठिन हो जायेगा। तो मैंने कहा कि भाई जब पशु का सहयोग ले सकता है तो आदमी का सहयोग लेने से क्यों रोक रहे हो? चाहे पशु का सहयोग ले चाहे आदमी का एक ही बात तो है? कोई भी सहयोग ले, उसमें व्यवस्था तो आ ही जायेगी। उस आदमी को उस पशु की व्यवस्था भी तो करनी पड़ेगी ना? याकि बस अपना सहयोग लेगा और फिर उसे भगा देगा जंगल में कि जा और जब मुझे आवश्यकता हो तो फिर से आ जाना? वे बोले कि भाई अकेले तो कृषि करना बहुत कठिन हो जायेगा। फिर मैंने पूछा कि भाई चलो कठिन ही होगा ना, पर चलो मान लेते हैं कि चलो कठिनाई से जीवन जी लेंगे। फिर उस जीवन में परिवार तो होगा नहीं, तो पारिवारिक सुख कैसे प्राप्त करेंगे? अधिक अधिक संभोग ही कर सकेंगे, क्योंकि यदि परिवार बसाया तो ये तो फिर से पारिवारिक व्यवस्था का प्रारम्भ हो जायेगा, और धीरे धीरे सामाजिक व्यवस्था भी आ

जायेगी। और सम्भोग के बाद स्त्री को कहोगे कि अब आप जाओं मेरा सुख मुझे मिल गया। अगले बार जब फिर चाहिएगा तो मैं आपको बताउंगा? दूसरा संभोग का सुख लेने के लिए हमें एक दूसरे का सहयोग लेना पड़ेगा जोकि व्यवस्था का एक प्रारम्भ ही है। इसका अर्थ ये हुआ कि यदि हमने किसी भी जीवित प्राणी से कोई भी सहयोग लिया या दिया तो ये व्यवस्था का प्रारम्भ ही तो है। इसके अलावा व्यवस्था है ही क्या? यही तो व्यवस्था है। इसी को तो व्यवस्था कहते हैं। और हम देख भी रहे हैं कि किसी का सहयोग लेने पर आसानी हो जा रही है, नहीं तो बहुत कठिन जीवन हो जायेगा। दूसरे शब्दों में जीवन दुख से भर जायेगा। कठिनाई अपने आप में एक प्रकार का दुख है। और हम देख भी रहे हैं कि आपसी सहयोग से मनुष्य ने कितनी सारी कठिनाईयों को सरल कर लिया है। और बहुत सारे सुख के साधन विकसित कर लिये हैं, जोकि अकेले में असंभव हैं। तो ऐसा नहीं है कि व्यवस्था से सुख नहीं उत्पन्न होता। हां ये कह सकते हैं कि गलत व्यवस्था से दुख उत्पन्न होते हैं, सही व्यवस्था से सुख उत्पन्न होते हैं और मिश्रित व्यवस्था से सुख और दुख दोनों उत्पन्न होते हैं। तो आवश्यकता केवल व्यवस्था को सही करने की है नाकि व्यवस्था को नष्ट करने की। और ये सम्भव भी नहीं है, क्योंकि व्यवस्था को नष्ट करने के लिए भी तो एक व्यवस्था चाहिए। आखिर व्यवस्था को कौन नष्ट करेगा और कैसे? इसी प्रश्न के उत्तर में व्यवस्था का उदय है। जो भी आदमी इस प्रश्न का उत्तर खोजने जायेगा, वो एक व्यवस्था को साथ लेकर ही आयेगा। तो निष्कर्ष ये ही निकला कि बिना व्यवस्था क जीवन की कल्पना करने से भी आदमी भय को ही प्राप्त हो जायेगा। इसप्रकार ये सम्भावना तो सही नहीं लग रही। एक तो ये सम्भव भी नहीं लगती और दूसरा सम्भव हो भी जाये किसी प्रकार तो वो दुख को बढ़ाने वाली ही होगी, सुख तो भूल ही जाओं।

सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू?

अब दूसरी सम्भावना पर चर्चा करते हैं कि क्या ऐसी व्यवस्था बनायी जा सकती है जिसमें दुख बिल्कुल ना हो और सुख सारे हों? इसका उत्तर जब मैंने बहुत सारे लोगों से पूछा तो अधिकतर ने कहा कि नहीं बनायी जा

सकती। सुख के साथ दुख आ ही जायेंगे, चाहे कुछ भी कर लो। हालांकि जब मैंने उनसे इसका स्पष्टीकरण मांगा कि भाई सुख के साथ दुख भी क्यों आयेगा तो वो इसका कोई स्पष्ट उत्तर दे नहीं पाये बस यहीं कहते रहे कि साधू संत कहते रहते हैं कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक को लाने का प्रयत्न करोगे तो दूसरा भी चला ही आयेगा। उसे रोका नहीं जा सकता। तब मैंने पूछा कि ये सुख लाने से दुख आ ही जाता है तो फिर तो यदि हम दुख लाने का प्रयत्न करें तो उसके साथ सुख भी आ ही जायेगा? इस प्रश्न के उत्तर में सभी मौन थे। किसी ने नहीं कहा कि हां ऐसा भी होना चाहिए यदि ये सच में एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तो। उनमें से एक बोला कि नहीं ऐसा नहीं है। तो मैंने पूछा कि फिर कैसा है? तो उसने कहा कि दुख को बुलाने से दुख ही आता है परंतु सुख को बुलाने से भी दुख साथ में आता है। तब मैंने पूछाकि फिर क्यों कह रहे हो कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं? वो बोले कि पता नहीं बस साधू संतो से सुनते आ रहे हैं, इसीलिए कह रहे हैं। आपकी बातो से तो ऐसा लग रहा है कि हमें अभी तक जो भी आध्यात्मिक रूप से बताया गया है वो गलत है। और आप जो कह रहे हैं वो समझ में भी आ रहा है। साधू संतो का तो समझ में कुछ आता नहीं है बस मान लेते हैं कि भाई वे अपना पूरा जीवन इसमें लगा कर जी रहे हैं तो सही ही बोल रहे होंगे। आपकी बातों से लगता है कि आध्यात्म की बाते जोकि हमें बतायी जा रही हैं उनमें बहुत कुछ गढ़बढ़ है। क्या आप कुछ स्पष्ट करेंगे? मैंने कहा प्रयास करता हूं। मेरी खोज के अनुसार ये कथन सत्य नहीं है। सुख दुख एक ही सिक्के के दो पहलु नहीं है बल्कि ये दो अलग अलग सिक्के हैं, ये दो अलग अलग घटनाएं हैं। समझें, ये सुख और दुख हमें किस प्रकार घटित होते हैं। मान लो कि किसी ने हमें कोई सम्मानजनक शब्द कहे और किसी ने हमें अपमान जनक शब्द कहे। ये दो घटनाएं हमारे साथ हुई। पहली घटना में हमें सुख प्राप्त हुआ और दूसरी घटना में हमें दुख प्राप्त हुआ। अब इसमें सुख और दुख दो अलग अलग घटनाओं से आ रहा है। एक का दूसरे से कोई संबंध नहीं है। एक और उदाहरण लेते हैं कि मान लो आपको रसगुल्ला बहुत पसंद है यानिकि आपको रसगुल्ला खाने में बहुत सुख मिलता है। लेकिन यदि

रसगुल्ला आपको भरे पेट खाने को दिया जाये तब क्या होगा? माने रसगुल्ला खाने में तो आपको सुख दे रहा है क्योंकि स्वादिष्ट लग रहा है परंतु पेट में जगह ना होने के कारण आपको पेट में दर्द अनुभव होने लगा है अर्थात पेट में दुख हो रहा है। यानिकि जीभ से सुख मिल रहा है और पेट से दुख मिल रहा है। ये दोनों घटनाएं लगभग साथ साथ हो रही हैं। लेकिन यदि हम इस घटना का सही से अवलोकन करें तो ये एक धटना नहीं है, बल्कि दो अलग अलग घटनाएं हैं। चूंकि रसगुल्ला स्वदिष्ट लग रहा हैं इसलिए तो सुख हो रहा है और चूंकि पेट में स्थान नहीं है, तो उसमें रसगुल्ला जाने से पेट को क्षमता से अधिक फूलना पड़ रहा है जिसके कारण उसमें दर्द हो रहा है। इसलिए तो दुख हो रहा है। तो अब हम समझ गये होंगे के ये सुख और दुख दो अलग अलग घटनाओं के कारण हो रहा है, क्योकि रसगुल्ला अपने आप में तो ना सुख है और ना दुख ही है। वो तो एक वस्तु है जोकि विभिन्न परिस्थतियों में सुख और दुख के रूप में हमें परिणाम देती है। एक उदाहरण और लेते हैं जैसे मानाकि आपको रसगुल्ला बहुत अधिक पसंद है और आपको 10 किलो रसगुल्ला खाने को दिया जाता है। आप रसगुल्ला खाना प्रारम्भ करते हैं जिससे आपको सुख मिल रहा होता है। कुछ देर के बाद आपकों अब और रसगुल्ला खाने की इच्छा नहीं रहती और अब आप नहीं खाना चाहते परंतु यदि अब आपको मजबूर किया जाये कि आपको बचा हुआ सारा रसगुल्ला खाना होगा क्योंकि ये तो आपको बहुत पसंद है। तो फिर क्या होगा, वहीं वस्तु आपको दुख देने लगेगी जोकि अभी तक आपको बहुत सुख दे रही थी बहुत संतुष्टि दे रही थी। अब इसमें लोग कहने लगते हैं कि देखो वहीं वस्तु आपको कभी सुख देती है और कभी दुख देती है इसलिए सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो समझने का प्रयास करते हैं कि क्या ऐसा है इस घटना में या कि कुछ और ही है। हुआ ये कि जबतक रसगुल्लों के खाने की ईच्छा रही तबतक सुख मिलता रहा और फिर एक समय ऐसा आया कि अब और रसगुल्ला खाने की ईच्छा नहीं हो रही। यदि बिना ईच्छा के अब और रसगुल्ला वो भी किसी दबाब में खाया गया तो उससे दुख पैदा हुआ। अब इस घटना से कुछ लोग कह रहे हैं कि देखो वही वस्तु कभी सुख तो कभी दुख देती है इसलिए सुख और दुख एक

ही सिक्के के दो पहलु है। जबकि ऐसा तो हो नहीं रहा। हो तो ये रहा है कि जबतक उसकी खाने की ईच्छा थी तकतक उसे सुख हो रहा था और जब वह बिना ईच्छा के किसी दबाब में या किसी मजबूरी में खाने लगा, तो उसे दुख हो रहा था। तो ये तो दो अलग अलग घटना हो गईं। एक में वो अपनी ईच्छा से खा रहा है और दूसरी में वो बिना ईच्छा के और दबाब में खा रहा है। तो सुख का कारण अलग है और दुख का कारण अलग है। ऐसा तो कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा कि सुख दुख का या दुख सुख का कारण है। सुख और दुख तो परिणाम हैं नाकि एक दूसरे के कारण। कुछ लोग तो ये भी कहते हैं कि बिना दुख के अनुभव के हम किसी सुख का अनुभव भी नहीं कर सकते। यानिकि दूसरे शब्दों में इस बात को ऐसे कह सकते हैं कि दुख ही आधार है किसी सुख को अनुभव करने का। उपर के वार्तालाप से आप समझ तो गये होंगे कि ये बात बहुत ही बचकानी है कि दुख के बिना हम सुख का अनुभव नहीं कर सकते। जबकि होता ये है कि हम अपनी ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से किसी भी वस्तु आदि का अनुभव करते हैं और यदि ये हमें रूचिकर लगता है तो हम इसे सुख कहते हैं और यदि ये हमें कष्टकर लगता है तो इसे हम दुख कहते हैं। उदाहरण के लिए माना कि एक व्यक्ति को रसगुल्ला पसंद है और दूसरे को रसगुल्ला पसंद नहीं है। अब जब दोनों को एक साथ रसगुल्ला खाने को दिया जाता है तो एक को तो ये सुख देता है और दूसरे को ये दुख देता है। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि दुख सुख का आधार नहीं है बल्कि रूचिकर लगना ही सुख का आधार है। जब हमें किसी भोग के सम्पर्क में आने पर रूचिकर अनुभव होता है तो इससे हमें सुख होता हैं नाकि इसलिए कि हमें दुखों का अनुभव है। दूसरा यदि ऐसा होता तो गरीब लोग सबसे अधिक सुखी पाये जाते क्योंकि गरीबों ने तो बहुत दुखों का अनुभव किया होता है अपने जीवन में। परंतु ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता और अमीरों को कम सुखी होना चाहिए क्योंकि उनके जीवन में तो गहरे दुख होते नहीं। सुखों का अनुभव करने के लिए दुख के अनुभव का होना कोई अनिवार्यता नहीं है। हम सीधे ही सुख या दुख दोनों अनुभव कर सकते हैं। उसके लिए केवल अनुभव करने की क्षमता होनी चाहिए हमारे पास जोकि जन्म से ही सबके पास होती है। ये

पांच ज्ञान इंद्रियां और अंतःकरण चतुष्टय ही हमारे पास मूल अंग है विभिन्न प्रकार के अनुभवों को करने के लिए। एक अनुभव किसी दूसरे अनुभव पर आधारित नहीं होता। हां मानसिक आधार पर जब तुलना करते हैं तो कई बार ऐसा होता है कि किसी दुख के बाद जब कोई सुख आता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत बड़ा सुख था, जबकि वही सुख यदि सामान्य स्थिति में आता तो उससे बड़े सुख की प्रतीती नहीं होती। तो ये तो ऐसे ही है जैसे कि बच्चों की कक्षा में ब्लेक बोर्ड प्रयोग करते हैं ताकि जब सफेद चोक से उसपर लिखें तो ठीक से दिखाई पड़े। यदि उसी चोक से सफेद बोर्ड लिखा जायेगा तो वो वहां लिखा तो होगा परंतु हमारी आंखों को ठीक से दिखाई नहीं पड़ेगा। तो विपरीतता के कारण कोई अनुभव कम या अधिक ठोस हो सकता है परंतु उसके बाद भी कोई आदमी नहीं चाहेगा कि इस कारण से हमारे जीवन में दुख बने रहें। हल्के से हल्के दुख को भी आदमी अपने जीवन में पसंद नहीं करता। इसी से समझ सकते हैं कि आदमी केवल और केवल सुख ही चाहता है। एक आदमी जब ये कह रहा था कि भाई सुखों को अनुभव करने के लिए जीवन में दुख होने भी आवश्यक हैं तो मैंने उनसे पूछा कि जब आपको सर्दी जुकाम होता है तो क्या आप उसका उपचार करते है? वो बोले हांजी तुरंत करता हूं। मैंने पूछा कि वो तो हल्का से दुख है, उसका उपचार क्यों करते हैं? यदि उस दुख को बने रहने देंगे तो आपके सुख बढ़ जायेंगे उसके कारण? तव वो बोला कि ये तो आप सही कह रहे है। इसका अर्थ ये हुआ कि ऐसा हमें प्रतीत होता है सुख बढ़ गया है जबकि हम सभी ये भी जान रहे होते हैं कि ये केवल प्रतीति मात्र है वास्तविकता नहीं। इसलिए हम सब अपने छोटे से दुखों को भी दूर करने का पूरा प्रयास करते हैं सदैव। और बहुत बार सफल भी होते हैं। कई बार क्षमता से अधिक होने पर असफल भी होते हैं। तो निष्कर्ष ये निकलता है कि सुख दुख दोनों अलग अलग घटनाएं है, इनका आपस में कोई संबंध नहीं है। अर्थात ये एक ही सिक्के के दो पहलू नहीं हैं। इतनी चर्चा के बाद भी यदि कोई इस बात पर ही अडिग रहे कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं तो फिर हमें उस आदमी का जीवन चैक करना चाहिए कि क्या वो आदमी अपने जीवन में इसी ज्ञान के आधार से जी रहा है कि नहीं। अर्थात उस आदमी को अपने जीवन में

किसी भी प्रकार के सुख की ईच्छा नहीं होनी चाहिए। नाही इस प्रकार का कोई कार्य करता हुआ दिखना चाहिए जिससे कोई भी सुख आने की कोई संभावना हो। अब आप ही बताओं, एक ऐसा जिसे सुख की ईच्छा नहीं है और दुख वो चाहता नहीं है तो वो यहां जीवित क्यों बना हुआ है? क्या उसे आत्महत्या नहीं कर लेनी चाहिए। क्योंकि सुख या दुख के आलावा यहां इस संसार में बने रहने का औचित्य ही क्या है? उपर सारी चर्चा का ये निष्कर्ष निकलता है कि बिना व्यवस्था के मनुष्य सुखपूर्वक जीवन नहीं जी सकता। हमें एक सही व्यवस्था की सदैव ही आवश्यकता होती है। हम सब आपसी सहयोग से ही अधिकतम सुखी हो सकते हैं। जहां भी सहयोग नहीं होगा तो उतना दुखी हमें होना होगा। इसका तात्पर्य ये हुआ कि हमें एक ऐसी व्यवस्था चाहिए जोकि ऐसा धरातल बनाती हो जिसमें सभी लोगों का सभी प्रकार का सहयोग ही सम्भव होता हो। कोई प्रतिद्वंदिता की संभावना ना हो। केवल प्रतियोगिता ही सम्भव हो। और आपको जानकर खुशी होगी कि मैं जिस व्यवस्था की बात कर रहा हूं, उसमें ऐसा ही है। उसमें केवल सहयोग की या प्रतियोगिता की ही संभावना है। प्रतिद्वंदिता की दूर तक ना तो आवश्यकता है और ना ही कोई संभावना है। आओ समझें कि ऐसा कैसे संभव हुआ। उपर मैंने जो भी संपादित किया है उससे हम लोग जिन विभिन्न निष्कर्षों पर पहुंचे हैं, उन सबको सिद्धांत कह सकते हैं। जिन्हें हम यहां एक साथ रख लें। पहला, मूल में हमसब एक हैं। दूसरा, उपर में हमसब अनेक है और विभिन्न हैं। तीसरा, हम सभी की मूल इच्छा एक ही है सदैव सुखी रहने की। चौथा सुख निर्भर करता है ईच्छानुसार और प्रकृति अनुसार जीवन जीने पर। और पांचवां निष्कर्ष ये निकला कि ये सब एक सही व्यवस्था से ही संभव हो सकता है। इन्हीं सब तथ्यों को आधार मानकर ही मैंने इस व्यवस्था का निर्माण किया है।

•••

अध्याय–4

सुखों के प्रकार

व्यवस्था के अंतर्गत हमें ये भी समझना होगा कि ये सुख हैं क्या और कितने प्रकार के होते हैं। और इन्हें कैसे लिया जाता है हमारे द्वारा। जिससे भी हमें अच्छा अनुभव होता है और यदि वो प्रकृति के किसी नियम को भी नहीं भंग करता तो उसे सुख कहेंगे। समझने की दृष्टि से हम अपने सुखों को चार प्रकार में विभजित कर सकते हैं।

1. ज्ञान का सुख
2. कर्म का सुख
3. भोग का सुख
4. विश्राम का सुख

ज्ञान के सुख से यहां अभिप्राय है कि हम सारी उम्र जो भी जानना, पढ़ना, सीखना चाहते हैं। कर्म के सुख से अभिप्राय है कि हम जो भी रोजगार के रूप में करना चाहें अपनी वरीयता के अंतर्गत। इसके अलावा कुछ और कर्म जोकि हम अपनी ईच्छा से पारिवारिक स्तर का या व्यक्तिगत स्तर का करना चाहते हैं जोकि प्रकृति में कोई दोष उत्पन्न ना करता हो।

भोग का सुख से अभिप्राय है कि मौजूद जितने भी भोग्य पदार्थ और सुख सुविधायें हों उनमें से अपनी ईच्छानुसार जब जो भोगना चाहते हैं। विभिन्न प्रकार के खेलों को खेलना चाहते हैं या किसी को खेलते देखना चाहते हैं। नृत्य, संगीत आदि करना चाहते हैं या किसी को करते देखना चाहते हैं। और विश्राम का सुख से अभिप्राय है कि श्रम के बाद हम आराम करना चाहते हैं। या सपनों का सुख लेना चाहते हैं। तो ये भी विश्राम में ही संभव होता है। मुख्यरूप से ये ही चार प्रकार के सुख होते हैं जिन्हें हम और भी अधिक सरलता से समझने के लिए फिर से उन्हें एक दूसरे दृष्टिकौण से विभाजित कर सकते हैं।

1. व्यक्तिगत सुख

2. पारिवारिक सुख
3. सामाजिक सुख
4. समष्टिगत सुख

व्यक्तिगत सुख

यहां व्यक्तिगत सुख से अर्थ एक जीवधारी का अपना व्यक्तिगत सुख। जैसे उसको क्या अच्छा लगता है, क्या खाना पीना चाहता है, कैसी जगह में रहना चाहता है, किन खेलों को देखना व किन खेलों को खेलना चाहता है, अपनी दिनचर्या कैसी रखना चाहता है, कैसे कपड़े पहनना चाहता है, किस प्रकार के सम्बंधों को वो पसंद करता है, क्या जानना चाहता है, ये जो उसकी इच्छाएं है जोकि केवल उससे ही संबंध रखती हैं किसी और से नहीं वे सब व्यक्तिगत सुख के अंतर्गत आयेंगी। अब चूंकि मनुष्य इस पृथ्वी का सबसे अधिक बुद्धिमान जीव है तो हमें उससे ही शुरू करना चाहिए। क्योंकि यदि मनुष्य सही प्रकार से जीने लगता है तो बाकि को व्यवस्थित करना आसान है। और बाकि को मनुष्य ही व्यवस्थित कर सकेगा और कोई नहीं आयेगा इनको व्यवस्थित करने। तो अब एक मनुष्य के सुख के लिए हम समझें कि उसका सुख किसमें है। मनुष्य के व्यक्तिगत सुख को समझने के लिए इन्हें भी एक दूसरी दृष्टि से चार प्रकार में विभाजित कर सकते हैं ताकि समझने में और सुगमता हो जाय। बाकी जीवधारियों का भी ऐसे ही समझ लेना चाहिए। हालांकि बाकि जीवधारियों का शारीरिक सुख ही प्रमुख होता है बाकि तीनों सुख गौंड़ रहते हैं।

1. शारीरिक सुख
2. मानसिक सुख
3. भावनात्मक सुख
4. चेतनात्मक सुख

शारीरिक सुख

हम सबका शरीर आहार–विहार के कारण ही सुख की स्थिति में रहता है, अर्थात् शरीर स्वस्थ रहता है। हम सबका शरीर एक जैसे ही प्राकृतिक तत्वों से बना है। और इन्हीं प्राकृतिक तत्वों को मौसम के अनुसार आहार के रूप में लेने से यह शरीर जीवित बना रहता है। और सही ढंग से सोना, लेटना, बैठना, चलना, दोड़ना, वजन उठाना, व्यायाम करना, स्नान करना, मौसम के हिसाब से वस्त्रों का चयन आदि विहार के कारण ही स्वस्थ रहता है। तो आहार ऐसा होना चाहिए कि एक तो भोजन स्वादिष्ट होना चाहिए, दूसरा, उसको खाने से शरीर को कोई रोग या किसी प्रकार का दुख नहीं होना चाहिए, बासी भोजन नहीं होना चाहिए आदि। यदि इन बातों का ख्याल रखा जाए तो हम सभी शारीरिक सुख को प्राप्त करते रहेंगे। इसी प्रकार विहार के बारे में भी निर्णय ले सकते हैं। यदि हमारा व्यायाम, लेटना, बैठना आदि आरामदायक है, सुन्दर है आदि, इससे हमें शारीरिक सुख प्राप्त होता रहेगा।

मानसिक सुख

मन का अपना एक सुख है जैसेकि ज्ञान करना, कल्पना करना आदि। इस कल्पना करने के कारण ही हमे मनुष्य की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य का मानसिक विकास होते ही मानसिक सुखों की ईच्छा होने लगती है। सभी विषयों का सुख ही मानसिक सुख कहलाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पांच प्रकार के ये मन के विषय हैं। सभी विषयों का ज्ञान इसे होने लगता है। इन पांचों विषयों का सहारा लेकर ये विभिन्न प्रकार की कल्पनाएं करने लगता है। अब वो पांच विषय केवल शरीर से सम्बंधित नहीं रह जाते, अब वे कल्पना के पंख लगाकर अपनी विकसित अवस्थानुसार अंतराकाश में उड़ान भरने लगते हैं। और बाहर के आकाश में वैसा ही करने की चेष्टा करने लगते हैं। बाहर के आकाश में अंतराकाश के ज्ञान के आधार पर मनुष्य निर्माण करने लगता है। क्योंकि प्राकृतिक व्यवस्था इसे कम पड़ने लगती है। फिर यह अच्छे से अच्छा रूचिकारक शब्द सुनना चाहता है, रूचिकारक संगीत सुनना चाहता है। रूचिकारक स्पर्श चाहता है, रूचिकर वस्त्रादि

पहनना चाहता है। ये चारों ओर रूचिकर सुन्दरता ही देखना चाहता है, रूचिकर नृत्य देखना चाहता है। ये रूचिकारक रसों का पान करना चाहता है, रूचिकर भोजनादि करना चाहता है। ये रूचिकारक गन्धों को सूंघना चाहता है। इसप्रकार ये पांचों प्रकार के विषयभोगों को अपनी रूचियों के आधार पर इनका सुख प्राप्त करना चाहता है। और जरूरत पड़ने पर ये उन्हें बना भी लेता है, क्योंकि प्रकृति में ये विषय सीधे प्राप्त नहीं होते। अपने ज्ञान के आधार से भिन्न–भिन्न प्रकार की कल्पना करके ये विभिन्न प्रकार के विषयों को प्राकृतिक तत्वों के मेल से बना लेता है। विभिन्न प्रकार के खेलों को ये रच लेता है तथा उन्हे खेलकर अथवा किसी को खेलते हुए देखकर भी सुख को प्राप्त कर लेता है। तो मानसिक सुख इन पांचों विषयों पर आधारित होते हैं। सही मानसिक सुख तभी कहलायेगा जब ये भी उपरोक्त की तरह ही आपके शरीर व मन के लिए हर प्रकार से लाभ करने वाला हो, रूचिकर हो आदि।

भावनात्मक सुख

ये सम्बन्धों पर आधारित सुख होता है। विभिन्न संबंधों से हमें विभिन्न प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। जैसे माता से अलग सुख मिलता है, पिता से अलग सुख मिलता है, भाई से अलग सुख मिलता है, बहिन से अलग सुख मिलता है, दादा से अलग सुख मिलता हैं आदि। हमारे जिससे जो सम्बन्ध है यदि हम उनसे उसी प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं तो उस संबंध में आपस में एक विश्वास पैदा होता है। जोकि हमारे अंदर उस प्रकार के प्रेम को पैदा करता है। और इस प्रेम का अपना एक अलग सुख है। जैसे ही हमारे जीवन में प्रेम पैदा होने लगता है तो इसके फलस्वरूप हमारे जीवन में सुखों की मात्रा और बढ़ जाती है। हमारे सम्बन्धों का दायरा जितना ज्यादा होता चला जाता है, हमारा सुख उतना ही ज्यादा होता चला जाता है। व्यक्तिगत सम्बन्ध, पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध, सामष्टिक सम्बन्ध ये सम्बन्ध ही जगत में पाये जाते हैं। जो व्यक्ति जिन भी सम्बन्धों में जिस भी गहराई तक जाता है, उसे उसी स्तर का भावनात्मक सुख प्राप्त होता है, अनुभव होता है। सम्बन्ध का सुख तभी तक रहता है जबकि वह लोगों में अपनी

रूचियों के अनुरूप हो, और दोनों पक्षों को सुखकारी हो, उन पर कोई सम्बन्ध थोपे हुए नहीं होने चाहिए या किसी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मजबूरी में बने नहीं होने चाहिए, ऐसे सम्बंध दासता को पैदा करते हैं, बंधन को पैदा करते है, मोक्ष को पेदा नहीं करते। ये लोगों को ही तय करने देना चाहिए कि वे किससे और किसप्रकार का और कितना और कबतक सम्बन्ध रखना चाहते हैं। किसी पर किसी प्रकार की भी बाध्यता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे नहीं होनी चाहिए। इतनी समझ लोगों को शिक्षा के अंतर्गत भी देनी होगी कि यदि किसी सम्बन्ध से कोई एक पक्ष किसी भी समय निकलना चाहता है तो दूसरे पक्ष को ये सहर्ष ही स्वीकार करना लेना चाहिए नहीं तो इससे वो दूसरे को दुखी करेगा और फिर खुद भी सुखी नहीं हो सकेगा। इसी तरह से सम्बन्धों की सर्वस्वीकारता होनी चाहिए। इसी में सभी का भावनात्मक सुख सदैव बना रह सकता है। सही व्यवस्था में ये सब बड़ी ही सरलता से प्राप्त हो जाता है। क्योंकि उस सही व्यवस्था में नये संबंध भी सरलता से प्राप्त हो जाते हैं। एक संबंध समाप्त होगा तो उस तरह के अनेक संबंध आपके सामने विकल्प के रूप में सदैव होंगे जिनमें से आप आसानी से चुनाव कर सकते हैं और दूसरे से निवेदन कर सकते हैं संबंध को प्रारम्भ करने के लिए। किसी एक संबंध को समाप्त करने में तभी कठिनता होती है जबकि हमारे पास उसके विकल्प नहीं होते। और वैसे भी इस परिवर्तनशील संसार में जिसमें कि आपकी रूचियां भी लगातार बदल रही होती है, इसलिए सभी कुछ परिवर्तशील रखा जाये तो ही अधिक सुखकारी होगा। हमारी ज्ञान इंद्रियां भी यदि किसी विषय के साथ लम्बे समय लगातार जुड़ी रहें तो वो उसको संवेदन करने में उसी प्रकार सफल नहीं होती हैं जैसेकि प्रारम्भ में हो रहीं थी। उदाहरण के लिए यदि आप कोई सुगंध लगातार प्रयोग करें तो धीरे धीरे समय के साथ आपकी नासिका उस सुगंध का अनुभव करना कम करती जाती है और फिर बंद ही कर देती है। यदि आप निरंतर सुगंधों को बदल नहीं रहे हैं। इसका अर्थ यही होगा कि आप अपने सुख के विषयों को कम करते जा रहे हैं और एक दिन यही विषय जोकि आपको अपार सुख दे रहे थे, वो धीरे धीरे दुख देना प्रारम्भ कर देंगे और आपके जीवन को नरक से भी बदतर बना देंगे। तो हर स्तर पर विषयों को निरंतर परिवर्तनशील

रखना चाहिए। और खासतौर पर संबंधों में तो बहुत संवेदनशील रहना चाहिए कि कहीं आप या दूसरा तो आपसे उदासीन नहीं हो रहा है। उदासीन होने पर भी यदी हम कोई संबंध बनाये रखते हैं या दूसरे को मजबूर करते हैं किसी भी उपाय के द्वारा तो हमें समझ लेना चाहिए कि हम दुख को ही निमंत्रण दे रहे हैं।

चेतनात्मक सुख

कुछ खोज लेना या जो खोजा जा चुका है उसे समझ लेना ये चेतना के सुख होते हैं। मोटे तौर से कहें तो अध्ययन और अध्यापन, अन्वेषण करना, अंतमुखी होकर स्वयं के बारे में अनवेषण करना या बाहर प्रकृति के बारे में अनवेषण करना, निरीक्षण परीक्षण करना, किसी का अवलोकन करना आदि। यदि हमं ये सब रूचि अनुसार प्राप्त करने के अवसर मिलते रहते हैं तो इनसे हमें चेतनात्मक सुखों की प्राप्ति होती रहती है। इनसे हमें आत्मिक सुख प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त संवाद से आप समझ गये होंगे कि व्यक्तिगत सुख प्राकृतिक तथ्यों एवं सांस्कृतिक तथ्यों दोनों के मेल पर आधारित है। इसीलिए व्यक्तिगत सुख सत्य पर आधारित हुआ। क्योंकि सत्य ये ही है कि कोई एक तत्व ही प्रकृति को स्वीकार करके इस अनेकता को प्राप्त हो गया है, वो भी सब प्रकार से सुखी होने की इच्छा के साथ। तो प्रकृति ही इस अनेकता का कारण हुई। और चूकि हमारा शरीर पूरी तरह से प्रकृति से बना है और प्रकृति से ही जीवित बना रहता है, इसलिए हमारे व्यक्तिगत सुखों का आधार प्रकृति हुई अर्थात् सत्य हुआ। तो सत्य के आधार पर ही हमें व्यवस्था में व्यक्तिगत सुखों की एवं व्यक्तित्व निर्माण की व्यवस्था करनी होगी।

पारिवारिक सुख

व्यक्गित सुख के बाद हम पारिवारिक सुख को भी समझने का प्रयास करते हैं। ऐसे सुख जो व्यक्तिगतरूप से नहीं लिए जा सकते, जिनके लिए दूसरों का साहचर्य लम्बे समय तक आवश्यक होता है, उनको प्राप्त करने के लिए पारिवारिक संस्था का गठन आवश्यक होता है। प्राकृतिकरूप से देंखे तो लगभग सभी जीवधारी अपने अपने समूहों में रहते हैं। इसी प्राकृतिक

स्वभाव को देखते हुए सांस्कृतिकरूप से भी इसकी व्यवस्था की जाती है। इस व्यवस्था के अंतर्गत छोटे समूह को परिवार का नाम दिया गया है। परिवार का अर्थ है– वो दो या दो से अधिक लोग जो एक दूसरे पर हर तरह से अपने आपको वार सकें, न्योछाबर कर सकें, अर्थात् मेरा सबकुछ तेरा है, ऐसे भाव जिनके हों किन्ही के प्रति, जब ऐसा लोग आपस में मिलकर किसी एक स्थान में रहते हैं, ऐसे लोगों का समूह ही परिवार के नाम से जाना जाता है। अर्थात् जिनके बीच प्रेम हो और वो साथ–साथ भी रहना चाहते हों। बच्चों को परिवार का हिस्सा तबतक ऐसे ही मान लिया जाता है जकतक की वो वयस्क नहीं हो जाते, वो भी यदि कोई परिवार बच्चों को रखना चाहे या बच्चे थोड़ा सा बड़े होने पर अपने माता पिता या किसी के साथ रहना चाहे तो, नहीं तो व्यवस्था ऐसी परिस्थतियों में उन बच्चों की जिम्मेवारी अपने उपर ले लेगी। इसप्रकार प्रेमपूर्वक एक दूसरे के साथ रहने पर जिन सुखों की प्राप्ति होती है, उन्हें पारिवारिक सुख की संज्ञा देते हैं। सारे पारिवारिक निर्णय प्रेम के आधार पर ही लिए जाने चाहिए, सत्य के आधार पर नहीं। क्योंकि परिवार में सारा व्यवहार प्रेम पर ही आधारित रहता है। यहां प्रेम का अर्थ एक दूसरे के प्रति आकर्षण एवं उसके फलस्वरूप एक दूसरे के साथ रहने की इच्छा ही लेना चाहिए। यदि कभी भी बच्चे अपने माता पिता के साथ नहीं रहना चाहें तो सरकार उनके लिए अलग से रहने की सम्पूर्ण व्यवस्था रखेगी। वैसे भी बच्चों का सारा खर्चा सरकार ही दे रही होगी 25 वर्ष की आयु तक। किसी के साथ लम्बे समय रहने में जो भी सुख मिलते हैं उन्हें पारिवारिक सुख कहते हैं जोकि व्यक्गितरूप से सम्भव नहीं होते।

सामाजिक सुख

ऐसे सुख जो व्यक्तिगतरूप से, या पारिवारिकरूप से नहीं लिए जा सकते, जिनको प्राप्त करने के लिए एक बड़े समूह की आवश्यकता होती है। अर्थात समाज की जरूरत होती है। उनको प्राप्त करने के लिए एक सामाजिक संस्था का गठन आवयक होता है। कई परिवारों को मिलाकर एक समाज बनता है। समाज का अर्थ है– सम् + अज, सम् का अर्थ है समान और अज

का अर्थ है समूह अर्थात वो परिवार जो आपस में एक समान मत रखते हों। यानिकि जब कई परिवार मिलकर एक समाज का निर्माण करते हैं तो वहां एक व्यवहार संहिता भी बनाई जाती है। जिससे वो सारे परिवार सहमत होते है। तो अब हम इसे ठीक से परिभाषित कर सकते हैं। किसी एक व्यवहार संहिता को मानने वाले कई परिवार मिलकर एक समाज का निर्माण करते हैं। जहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता होती है, पारिवारिक स्वतंत्रता होती है, लेकिन इसप्रकार से कि उससे किसी की सामाजिक स्वतंत्रता बाधित ना हो। इसप्रकार एक उस ग्राम को हम एक समाज कह सकते हैं जोकि एक दूसरे के साथ रहने को स्वीकार करते हों। बहुत सारे ऐसे कार्य होते हैं जिनका निर्माण हम व्यक्तिगत या पारिवारिक स्तर से नहीं कर सकते। जैसेकि सड़क बिजली, पानी, ज्ञानविज्ञान, तकतीकि निर्माण, अच्छे निवास का निर्माण, बहुत सारे खाद्य पदार्थ का निर्माण आदि। जब तक इनका निर्माण नहीं होगा तो हम इनका भोग कर सुखी नहीं हो सकते। ऐसे सुखों को ही समाजिक सुख की श्रेणी में रखा जाता है। अर्थात सरकार के द्वारा जो सुख हमें प्रदान किये जाते हैं वो सभी सुख, सामाजिक सुख की श्रेणी में आते हैं। ऐसे बहुत सारे सुख जोकि समान्यतः देखने में तो व्यक्तिगत या पारिवारिक सुख लगते हैं परंतु उनका निर्माण बिना सरकार के संभव नहीं होता। इसप्रकार हमारे व्यक्तिगत और पारिवारिक सुखों में भी वृद्धि होती है यदि ये समाजिक सुख हमारे जीवन में होते हैं तो।

समाज का आधार न्याय रखना होगा नाकि सत्य या प्रेम। न्याय क्या है? यहां प्राकृतिकरूप से जोभि उपलब्ध है उस सब पर सबका एकसमान अधिकार है। जितना एक व्यक्ति या परिवार का उतना ही दूसरे व्यक्यिों या परिवारों का भी। बस इसी बात को या इसी मान्यता को या इसी आधारभूत नियम को न्याय कहते हैं। समाज में सबको एकसमान अधिकार होने चाहिए सभी सुखों के पाने के लिए। और ये केवल ऐसा नहीं होना चाहिए कि संविधान में तो लिखा है कि एक समान अधिकार होंगे पर धरातल पर एक समान अधिकार दिखाई ना दें। यदि ऐसा है तो फिर इसे न्याय नहीं कहेंगे। समाज की व्यवस्था करते समय न्याय को ही आधार मानकर सारे नीति नियम निर्णय होने चाहिए।

समष्टिगत सुख

समष्टिगत सुख का अर्थ है– पूरी समष्टि में एक स्वस्थ लयबद्धता रहे। समष्टि के सारे जीवन चक्र संतुलित रहें। जोकि तभी सम्भव है जबकि पूरी सृष्टि को इस प्रकार से प्रयोग किया जाए कि उसकी सन्तुलित अवस्था बनी रहे। और ये तभी सम्भव है जबकि विश्व स्तर की व्यवस्था में निर्णय करने का एक ही अधिकारिक केंद्र हो जिसके पास उसे क्रियान्वित करने की क्षमता भी हो। जो भी निर्णय लिए जाये समष्टि के हित में वो सही हों और उन्हें क्रियान्वित भी किया जा सके। दूसरे शब्दों में हमें एक विश्व सरकार की आवश्यकता है। जिस प्रकार देश में सरकार होती है, उसी प्रकार विश्व में भी एक सरकार होनी चाहिए। समष्टि के अंतर्गत मनुष्य, पशु–पक्षी, वृक्ष–वनस्पति और जड़–पदार्थ आते हैं। इन सभी का संतुलित अवस्था में रहना बहुत आवश्यक है। किसी भी एक वर्ग का असंतुलन बाकी वर्गों को असंतुलित करने के लिए पर्याप्त होता है। क्योंकि यहां सबकुछ आपस में इसप्रकार जुड़ा हुआ है कि यदि एक में कुछ होता है तो बाकी में भी उसके अनुरूप अन्तर पड़ता है। क्योंकि एक ही तो अनेक हुआ है। कहीं पर कुछ भी हो उसका असर सारे में पड़ता है। और इसका प्रारम्भ मनुष्य से ही किया जा सकता है। पहले मनुष्य का संतुलन बने और फिर बाकि तीनों का। क्योंकि इन सबमें सबसे अधिक चेतन मनुष्य ही है। तो पहले मनुष्य स्वयं को संतुलित करेगा और फिर बाकि को। इसके लिए ज्ञान–विज्ञान का होना भी आवश्यक है, क्योंकि उसके अभाव में हम कुछ भी व्यवस्थित नहीं कर सकते। ज्ञान और विज्ञान से ही हमें समझ में आता है कि क्या करने से समष्टि में क्या अंतर पड़ेगा। और जो अंतर पड़ेगा वो सबके हित में होगा या नहीं। इसलिए सही व्यवस्था में ज्ञान–विज्ञान का निरन्तर शोध सही दिशा में होते रहना चाहिए। ज्ञान–विज्ञान पर आधारित व्यवस्था ही हमें सुखी बनायें रख सकती है। और मनुष्य ही वो एकमात्र प्राणी है इस धरा पर जोकि अपने विकसित ज्ञान–विज्ञान के आधार पर इस सृष्टि को स्वर्ग बना सकता है या बिना ज्ञान–विज्ञान के नरक भी बना सकता है। इस पूरी सृष्टि की व्यवस्था मनुष्य पर ही निर्भर करती है। ये चाहे तो सबकुछ को सही करके स्वर्ग का निर्माण कर सकता है या सबकुछ बिगाड़ करके नरक का निर्माण

कर सकता है। या कुछ सही और कुछ गलत करके थोड़ा स्वर्ग और थोड़ा नरक का निर्माण कर सकता है। सबकुछ इसकी इच्छा, इसके ज्ञान और इसके कर्म पर ही निर्भर करता है। ये चाहे तो पशु–पक्षियों की तरह प्राकृतिकरूप से जंगलों में रह सकता है या ये चाहे तो सांस्कृतिकरूप से सही व्यवस्था बनाकर सारे सुखों का उपभोग कर सकता है जोकि इस सृष्टि के होने का मूल प्रयोजन भी है। निर्णय मनुष्य के हाथ में ही है। समष्टि को संतुलित रखने के लिए बहुत सारे ऐसे कार्य करने होते हैं जिनसे हमें सीधे–सीधे प्रत्यक्षरूप से कुछ प्राप्त नहीं होता पर इससे सृष्टि का संतुलन बना रहता है। इसप्रकार के कार्यों को ही पुण्य कहते हैं। प्रकृति को सुंदर, संतुलित आदि बनाने में जो हमारे द्वारा कार्य किया जाता है वो सब पुण्य कहलाता है। तो समष्टि की संतुलित अवस्था के लिए पुण्य को आधार माना जाय। और ज्ञान विज्ञान भी एक सुख का ही विषय है। तो चार प्रकार के सुखों के लिए चार ही आधार हमें मिले। जैसे कि

1.व्यक्तिगत सुखों का आधार सत्य है। अर्थात् जो कोई व्यक्ति सत्य पर आधारित जीवन जीयेगा वो व्यक्तिगत सुखों से भरपूर रहेगा, और उसके कारण दूसरे लोगों को भी उससे व्यक्तिगत सुखों की प्रेरणा मिलेगी। उसे जीवन में कभी भी कोई व्यक्तिगत दुख का सामना नहीं करना पड़ेगा। और ना ही किसी और को उसके कारण कोई व्यक्तिगत दुख होगा। और सही व्यवस्था में ये स्वभावतः होगा। परंतु यदि व्यक्तिगत कोई भी प्रकार का दुख आता है तो पहले तो व्यवस्था में सत्य की अवस्था को जांचना चाहिए और उसके बाद यदि वो सही है तो उस व्यक्ति को देखना चाहिए कि उससे कोई चूक हो गयी है सत्य के बारे में, कहीं वो सत्य से इधर उधर तो नहीं हो गया है किसी अज्ञानतावश। उसे समझ कर और उस पर अपने जीवन को आधारित करके वो उस दुख से सदैव के लिए मुक्त हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी को कोई व्यंजन बहुत पसंद है और वो उसका निरंतर प्रयोग कर रहा है और देख रहा है कि कुछ दिन तो उसको बड़ा स्वदिष्ट लगा पर अब उसके स्वाद में कमी आती जा रही है। परंतु वो उसको निरंतर अपने भोजन का अंग बनाये हुए है और उससे दुख पाता जा रहा है। तो अब ये उसका व्यक्तिगत दुख है। इसके लिए उसे सत्य के बारे में

ज्ञान को जांचना चाहिए। कहीं ना कहीं उसने सत्य का उलंघन किया है। अब यहां मैं आपको बता दूं जैसे कि उस आदमी को नहीं पता कि ये संसार परिवर्तनशील है और हमारी ज्ञान इंद्रियां भी परिवर्तनशील हैं, यदि हम अपने विषयों को निरंतर परिवर्ततित नहीं करते तो हमारी इंद्रियां धीरे धीरे उस विषय के प्रति असंवेदशील होने लगती हैं। अब ये सत्य है। तो हमें इस सत्य का ज्ञान रखते हुए अपने रूचि के विषयों को भी बदलते रहना चाहिए। ऐसा करने से हमारे व्यक्तिगत सुखों का स्तर सदैव अधिकतम ही बना रहेगा। इसी प्रकार सभी व्यक्तिगत सुखों में समझ लेना चाहिए।

2.पारिवारिक सुखों का आधार प्रेम है। प्रेम का अर्थ है कि किसी के साथ लम्बे सहचर्य से हमें कई प्रकार के सुख मिलते हैं। अर्थात् दो या आधिक व्यक्ति जोकि एक दूसरे के साथ रहना चाहते हैं पारिवारिक सुखो को प्राप्त करने के लिए। अब जब भी परिवार के सदस्यों में कोई समस्या उत्पन्न होगी तो उसका समाधान करने के लिए सत्य के साथ साथ प्रेम की स्थिति का निरिक्षण भी करना चाहिए। क्योंकि किसी परिवार में तभी कोई समस्या उत्पन्न हो सकती है जबकि या तो किसी सत्य का उलंघन हुआ हो या उनके बीच प्रेम कम हो गया हो। तो सत्य का समाधान तो शिक्षा से हो ही जाता है। लेकिन यदि प्रेम कम हो गया है तो अब उनके अलग होने अलावा कोई उपाय नहीं है समाधान का। इसलिए यदि प्रेम है तो ही उन्हें परिवार का सदस्या रहना चाहिए अन्यथा उसे वहां से प्रस्थान कर जाना चाहिए। और नये परिवार की खोज करनी चाहिए। सही व्यवस्था में ये स्वभावतः होगा। क्योंकि सारी शिक्षा वहां होगी, सही व्यवस्था होगी, तो अब केवल प्रेम की स्थिति के आधार पर ही निर्णय हागा। और निर्णय भी ये कि वो वहां रहे या प्रस्थान करे, बस। हमें इस प्रेम की स्थिति को ही जांचना होगा कि हममें आपस में प्रेम की क्या स्थिति है। अर्थात आपस में एक साथ रहने की इच्छा हो रही है या कि वो पूरी हो चुकी है। यदि शेष है तो और साथ रहें और यदि किसी की भी पूरी हो चुकी हो तो फिर अलग हो जाना चाहिए। परिवार का आधार इसलिए प्रेम ही होगा। जबतक प्रेम है तबतक ही परिवार होता है। प्रेम समाप्त तो फिर साथ रहने का कोई अर्थ नहीं। यदि किसी कारण से रहना होगा तो वो दुखदायी ही होगा।

3.सामाजिक सुखों का आधार न्याय है। न्याय का अर्थ है कि इस संसार में जो कुछ भी प्राकृतिक संसाधन हैं वो सभी के लिए समानरूप से है अर्थात समाज का है अर्थात सरकार के आधीन होंगे ताकि सरकार समाज को न्यायपूर्वक ये सारे संसाधन वितरित कर सके। न्याय कहो या समता कहो एक ही बात है। समता ही न्याय होती है। समानता को ही न्याय कहते हैं। असमान समाज में अपराधों को कोई नहीं रोक सकता। और समान समाज में अपराध का कोई अर्थ नहीं होता है। इसलिए यदि सामाजिक सुखों को पाना चाहते हो तो समानता को या न्याय को समझो। इससे सभी सभी के सुख अधिकतम हो जाते हैं। जो कोई समाज न्याय पर आधारित जीवन जीयेगा तो उसके नागरिक सामाजिक सुखों से भरपूर रहेंगे। और इन सामाजिक सुखों के रहते ही वास्तव में पारिवारिक सुख और व्यक्तिगत सुख हो पाते हैं। जिस समाज में समानता ही ना हो तो वहां पारिवारिक सुख और व्यक्तिगत सुख भी सही मायने में हो नहीं पाते। और जो सुख आते भी हैं वो अपने साथ दुखों को लेकर भी आते हैं। और फिर यहीं लोग कहते रहते हैं कि देखों सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जबकि ये गलत व्यवस्था की उत्पन्न की हुई अवस्था है नाकि सही समानता वाली व्यवस्था की अवस्था। सही व्यवस्था में ये स्वभावतः होगा।

4. मष्टिगत सुखों का आधार पुण्य है। अर्थात् यदि सभी समाज समष्टि में पुण्य पर आधारित जीवन जीयेंगे तो वे समष्टिगत सुखों से भरपूर रहेंगे। समाजों को कभी भी किसी समष्टिगत दुख का सामना नहीं करना पड़ेगा। और ना ही किसी और समष्टि के अन्य वर्गों को उसके कारण कोई समष्टिगत

दुख होगा या असंतुलन होगा। और सही व्यवस्था में ये भी स्वभावतः होगा।

ये चारों सुख भी एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। यदि सामाजिक व्यवस्था सही होती है तो इसका पारिवारिक सुख पर और व्यक्तिगत सुख पर बहुत बड़ा प्रभाव होता है। इसलिए हमें सम्पूर्ण व्यवस्था पर ही कार्य करना चाहिए। आओ अब इन आधारों को एक एक करके भी समझने का प्रयत्न करते हैं।

•••

अध्याय–5

सत्य

सत्य ये है कि हम सब एक ही मूल तत्व का विस्तार हैं। अनेक दिखाई पड़ने पर भी हम सब एक बहुत बड़ी माला के मनके के जैसे हैं। साधारण आंखों से देखने पर ऐसा लगता है कि मैं अलग हूँ और दूसरे भी अलग–अलग हैं। लेकिन यदि ज्ञान की आंख से देखा जाये तो पता चलेगा कि ये आधा सत्य है। पूरा सत्य यह है कि हम अनेक होते हुए भी एक ही हैं। सांसारिक आंखों से हमें अनेकता दिखाई देती है और ज्ञान की आंख से एक दिखाई पड़ती है। हम सब उस वृक्ष की तरह हैं जो मूल में एक है और शाखाओं पर अनेक। हम सबका का उददेश्य भी एक ही है, वो है अपने इच्छित सुखों की निरंतर प्राप्ति। व्यक्तिगत सुख सबके भिन्न भिन्न होते हैं। सबकी पसंद नापसंद भी भिन्न भिन्न होती है। सबकी प्रवृत्तियां भिन्न होती हैं। एक ही वस्तु से किसी को सुख और किसी को दुख हो सकता है, एक ही वस्तु से किसी एक को भी भिन्न भिन्न समय में कभी सुख और कभी दुख हो सकता है। इस परिवर्तनशील संसार में सभी कुछ परिवर्तनशील रहता है, ये भी सत्य ही है। और प्रकृति के और भी जितने ज्ञान विज्ञान है और जो बाद में भी खोजे जायेंगे वो सब सत्य की कोटि में ही आयेंगे। इन सत्यों की कभी भी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। नहीं तो दुखद परिणाम ही होगा जीवन का, और फिर जन्म मरण से छुटकारा ही मांगते फिरेंगे, और वो भी मिलेगा नहीं क्योंकि ऐसा कुछ होता नहीं है। क्योंकि समष्टि से बाहर होने की कोई संभावना नहीं हैं।

प्रेम

सत्य के ज्ञान से ही प्रेम उत्पन्न होता है। प्रेम है एक दूसरे के बीच सम्बंध और संबंध होता है इस बात पर निर्भर कि वो आपस में एक दूसरे के लिए कितना उपयोगी हैं। जिस प्रकार की और जितनी उपयोगिता होगी, उसी प्रकार का और उतना ही संबंध उनके बीच होगा। इस संबंध को ही प्रेम या आकर्षण कहते हैं। जब हमें हमारे बीच एक दूसरे की उपयोगिता का

ज्ञान होता है और ये पता चलता है कि मेरे सुख दूसरे के योगदान बिना असंभव हैं तो उसे दूसरों में आकर्षण हो जाता है। इसी आकर्षण को प्रेम कहते हैं। जिस भी तल पर उसको ये ज्ञान होगा, उसी स्तर का प्रेम उसके अंदर उत्पन्न हो जायेगा। व्यक्तिगत तल पर तो हम अकेले होते हैं तो वहां तो कोई दूसरा होता नहीं संबंध बनाने के लिए। लेकिन पारिवारिक तल पर एक उदाहरण लेते हैं। जब पति को पत्नि से सुख मिलने लगते हैं तो उसे उससे प्रेम होने लगता है। उसे पता चलता है कि बिना पत्नि के मैं वो सुख प्राप्त कर ही नहीं सकता जोकि पत्नि से ही मिलता है। इसी प्रकार सामाजिक तल पर समझ सकते हैं। हालांकि सामाजिक तल पर प्रेम को अनुभव करना थोड़ा कठिन होता है क्योंकि ये समझने में कठिनाई होती है कि मेरे बहुत सारे सुखों में समाज का बहुत बड़ा योगदान होता है। लेकिन जिसको भी समझ आ जाता है तो उसे अनुभव भी होने लगता है। इसी लिए कहते हैं कि वास्तविक ज्ञान से प्रेम उत्पन्न होने लगता है। और जब प्रेम उत्पन्न होगा हमारे अंदर तो अनुभव भी तभी होगा, उससे पहले तो होगा नहीं। जैसे बाकि अनुभव भी तभी होते हैं जबकि उनसे संबंधित घटना हमारे अंदर घटित होती है। अर्थात दूसरों के बिना योगदान के हम थोड़े से सुखों को ही पा सकते हैं वो भी बहुत कठिनाई से। तो इस पारस्परिक निर्भरता के ज्ञान स उसके अंदर दूसरों के लिए प्रेम का जन्म हो जाता है। उसे पता चलता है कि दूसरे के बिना मैं सम्पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो सकता तब उसे दूसरों का महत्व समझ आ जाता है जिसके कारण उसे औरो से प्रेम हो जाता है। जैसे वृक्ष के मूल और शाखाओं के बीच जो सम्बंध है वो ही प्रेम है। पारिवारिक सुखों की प्राप्ति के लिए ये प्रेम ही आधार है। परिवार का अर्थ है– दो या दो से अधिक मनुस्य एक साथ लम्बे समय रहना चाहते हैं। पारिवारिक सुख का उदय लम्बे समय साथ रहने से ही होता है। इसी के लिए परिवार नाम की संस्था का निर्माण किया जाता है। साधारण रूप में समझना हो प्रेम को तो वो ये है कि जब हमें किसी का सानिध्य पाकर सुख प्राप्त होता हो और उसके साथ लगातार बने रहने की इच्छा होती हो ताकि उस सुख को निरंतर जबतक की उसे इच्छा हो वह पाता रह सके, तो इस आकर्षण को ही प्रेम कहते हैं। ये प्रेम की सामान्य परिभाषा है। और आगे

जाकर ये सामान्य प्रेम ही और गहरा होने लगता है। तब केवल अपना सुख ही घ्येय नहीं रह जाता बल्कि परिवार के दूसरे सदस्यों का सुख भी घ्येय बनने लगता है। ये ही पारिवारिक प्रेम कहलता है। इसके बाद और अधिक समझ होने पर प्रेम का स्तर सामाजिक होने लगता है और फिर सामष्टिक होने लगता है। व्यक्तिगत प्रेम, पारिवारिक प्रेम, सामाजिक प्रेम और सामष्टिक प्रेम। ये चार ही तल हैं प्रेम के। पहला स्वयं से ही प्रेम होता है। दूसरा परिवार से प्रेम होता है। तीसरा समाज से प्रेम होता है। और चौथा समष्टि से प्रेम होता है। जिस स्तर का ज्ञान होगा, उसी स्तर का प्रेम होगा और जिस स्तर का प्रेम होगा, उसी स्तर का कर्म होगा। जिस स्तर का कर्म होगा, उसी स्तर का परिणाम होगा। इससे ही किसी का व्यक्तित्व परिभाषित होगा।

न्याय

मनुस्य का अर्थ है कि जिसका मन सक्रिय अवस्था को प्राप्त है अर्थात जो चिंतन मनन करने में समर्थ हो जाता है। जो अर्थों को सही से समझ पाता है। मन के द्वारा अर्थों को समझकर हम इस न्याय तत्व को भी समझ सकते हैं। न्याय का अर्थ है– सभी को वो सब मिल जाये जिससे कि वो सुखी होता हो। सम्पूर्णरूप से सुखी होना ही जीवन का उददेश्य है। और जिस भी व्यवस्था से सभी को उनके अभीष्ट सुख मिल जाये, उसके उददेश्य पूर्ण हो जायें, तो उसे ही न्यायशील व्यवस्था कहेंगे। उसे ही कहेंगे कि समाज में न्याय स्थापित है। यहां जो भी प्राकृतिक संसाधन हैं उन सभी पर तो सबका समान अधिकार है। अब सबको ये समान अधिकार कैसे प्राप्त हो सकें उसके लिए अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण करना होता है जिसका आधार न्याय ही माना जाना चाहिए। जब किसी को ये बात समझ आ जाती है कि अपने दम पर वो संसार के सारे सुख प्राप्त नहीं कर सकता या परिवार के दम पर भी सारे सुख प्राप्त नहीं कर सकता तो उसे सभी लोगों के योगदान की आवश्यकता अनुभव होने लगती है और वो चाहने लगता है कि सभी साथ रहें, तो समझों कि वो अब सामाजिक हो गया है, अर्थात वो अब समाज के अर्थ को समझ गया है। ये सारा ज्ञान उसे शिक्षा के माध्यम

से दे देना चाहिए ताकि वो एक सभ्यता को समझने वाला आदमी बन सके, सभ्यता में आने से पहले अर्थात् 25 वर्ष के अंतर्गत ही।

यदि कोई नीति नियमों को जानता ही नहीं होगा तो भला उससे उन्हें पालन करने की आशा कैसे की जा सकती है? ये जो हम सरकार की बात कर रहे हैं। वैसे सरकार की आवश्यकता विषेष रूप से समाज के स्तर से ही शुरू होती है। इसीलिए सरकार का कार्य इसी न्याय को स्थापित करना और उसे संचालित करना होना चाहिए। तभी सभी कर्मों और अधिकारों का न्यायपूर्वक सही वितरण हो पाता है। यदि हम इस प्रकार की न्याय व्यवस्था को नहीं लाते हैं तो हमें दुखी होने के लिए तैयार रहना चाहिए। और न्याय की केवल बात करने से या किसी संविधान में लिख देने भर से वो धरातल पर नहीं उतर जाता। उसके लिए ऐसे विधान बनाने होते हैं जिनसे न्याय धरातल पर उतर पाये और सभी का जीवन सुखी हो पाये। जो मनुष्य जितने ज्ञान की रूचि रखता है उसे उतना ज्ञान मिल जाये, जितना कर्म करने की रूचि रखत है उतना कर्म मिल जाये, जितना भोग करने में रूचि रखता है उतना भोग मिल जाये, और जितने विश्राम की रूचि हो उतना विश्राम मिल जाये। बस यही न्याय है। और यदि ये सबको हो पाता है तो यही समता है। यदि प्राथमिक स्तर पर ही न्याय कर दिया जाये अर्थात सरकार का सबकुछ न्याय पर ही आधारित हो तो न्यायालयों आदि की आवश्यकता न्यून हो जाती है। जिस व्यवस्था में न्यायालयों की जितनी अधिक आवश्यकता होती है, तो समझ लेना चाहिए कि वो व्यवस्था उतनी ही अधिक अन्यायपूर्ण होगी। ये कसौटी है किसी भी व्यवस्था को जांचने के लिए। अगर सबको सभी कुछ प्राप्त हो, तो कोई क्यों किसी से छीना झपटी आदि करेगा? क्योंकि सारे अपराध कुल मिलाकर सुखों की प्राप्ति के लिए ही होते हैं। तो किसी न्यायालय की आवश्यकता ही कहां पड़ेगी? सभी आराम से सुख भरा जीवन शांति से जी रहे होंगे। बस न्याय का यही अर्थ है।

पुण्य

जब हम सभी अपना जीवन जीते हैं। तो हमारे द्वारा अनजाने बहुत सारे ऐसे कर्म होने की संभावना रहती है जिनसे कि इस सृष्टि के विभिन्न चक्रों का संतुलन विगड़ने लगता है। तो एक तो ये कम से कम बिगड़े ऐसे

उपाय पहले ही हों। दूसरा फिर भी यदि विगड़ जाता है तो उसके उपाय तुरंत प्राप्त ज्ञान के आधार से किये जाने चाहिए। ऐसे उपायों को ही पुण्य कर्म कहा जाता है। जोकि अधिकतम तो सरकारी स्तर से किये जाते हैं। कभी कभार सभी के स्तर से करने की आवश्यकता भी हो सकती है। हां प्राप्त ज्ञान के आधार से ऐसा प्रयास सभी की ओर से होना चाहिए कि प्रकृति का संतुलन बिगड़े ही ना। तो समष्टि का आधार पुण्य ही होना चाहिए।

सही व्यवस्था की कसौटी

सुखों के ये सारे फूल जोकि सत्य, प्रेम, न्याय और पुण्य है तभी सही से और पूर्णरूप से खिलते हैं जब एक परिपूर्ण व्यवस्था इस संसार में होती है। परिपूर्ण व्यवस्था के अभाव में ये नहीं खिलते। और खराब व्यवस्था में यदि कोई इन्हें बलपूर्वक खिलाने की कोशिश करता है तो समाज और दूषित होने लगता है, उसके कारण दुख और बढ़ जाते हैं। इसलिए जो लोग बलपूर्वक नैतिकता लाना चाहते हैं अपने जीवन में या दूसरों के जीवन में वो लोग अनजाने ही दुखों को और बढ़ावा देते हैं। और ऐसे लोगों के परिवार वाले तो उनके कारण बहुत दुख उठाते हैं। देखने से तो ऐसा लगता है कि देखों कितने महान लोग हैं ये परंतु उनकी वो बलपूर्वक लायी गयी महानता केवल और केवल दुखों को ही परिणाम में लेकर आती है। तो ध्यान रखना चाहिए कि ये फूल एक परिपूर्ण व्यवस्था का परिणाम होते हैं। जैसी व्यवस्था होगी वैसी ही हमारी अवस्था हो जायेगी। ये नैतिकता के सारे फूल एक अवस्था ही हैं सही व्यवस्था के। अबतक यदि ये नहीं खिले हैं तो वो इसलिए क्योंकि अभीतक वो परिपूर्ण व्यवस्था आयी ही नहीं है। इन फूलों को कसौटी समझना चाहिए। जिस व्यवस्था में ये फूल खिलेंगे वो ही व्यवस्था परिपूर्ण होगी। नहीं तो तब तक हमें व्यवस्था को सुधारते या बदलते जाना चाहिए। और ये सुध ारने की या बदलने की प्रक्रिया को तभी रोकना चाहिए जब ये चारों फूल पूर्णतः खिल चुके हों। सही शिक्षा से सत्य का ज्ञान होता है। सत्य के आधार पर कोई ज्ञानी मनुष्य सही व्यवस्था का निर्माण करता है फिर सबकी सहमति से उसे लेकर आता है। उस व्यवस्था से सही अवस्था का निर्माण होता है जिसके कारण हमारे जीवन के उददेश्य पूर्ण होते हैं और हम सुख, शांति, संतुष्टि और मोक्ष को प्राप्त करते जाते हैं। अर्थात समाज

में न्याय की स्थापना हो जाती है। उसके कारण हमारे बीच सही आचार–व्यवहार से प्रेम पैदा होता जाता है। न्याय की स्थापना से पुण्य भी पैदा हो जाता है। उसको पता चल जाता है कि यहां जो भी सुख है वो इस समष्टि की साम्यावस्था या संतुलन के कारण ही है, तो फिर व्यक्ति समष्टि के संतुलन का ध्यान रखने लगता है, जोकि पुण्य की प्रक्रिया से ही सम्भव है। बस यही पुण्य है। पुण्य यानि समष्टि में कोई भी असंतुलन होने पर वह उसको संतुलन में लाने के लिए जो उपाय करता है उसे पुण्य कहते हैं। जैसे अपने जीवन को ऐसा जीयें कि हम अस्वस्थ हो ही ना तो ऐसे जीवन को पुण्यमय कहते हैं या जब हमारा शरीर अस्वस्थ हो जाता है तब हम उसे स्वस्थ करने के लिए जो उपचार आदि करते हैं, उसे पुण्य की श्रेणी में रख सकते हैं। उदाहरण के लिए जैसे मानाकि गर्मी के कारण जंगल सूख गये घास सूख गई तो वहां के पशु–पक्षी दुखी होने लगे तो उनके इस दुख को दूर करने के लिए सरकार को वहां से एक नहर निकाल देनी चाहिए एवं जंगल की सिचाई करते रहना चाहिए। बस इसी को पुण्य कहते हैं। या विज्ञान की मदद से वहां बारिश कर देनी चाहिए। किसी भी प्रकार का प्रदूषण ना होने पाये और यदि किसी भूल से हो भी जाये तो उसे अतिशीध्र दूर करने के उपाय करने चाहिए और भविष्य में वो प्रदूषण फिर से ना हो उसकी व्यवस्था कर देनी चाहिए। यही पुण्य है। और एक दृष्टिकोण से इन चारों को समझें।

जो वह है वही यह है। जो ब्रहम् है वही ब्रहम्ाण्ड है। जो सृष्टा है वही सृष्टि है। जो प्रभु है वही विभु है। एक मूल से ही ये सारा संसार बना है। और सभी प्रकार के सुखों को पाने के लिए ही वह एक से अनेक हुआ है, प्रभु से विभु हुआ है, सृष्टा से सृष्टि हुआ है। यनिकि ब्रहम् से ब्रहमाण्ड हुआ है। ये ही मूल सत्य है। मूल ज्ञान से सारे विज्ञान तक सब सत्य की कोटि में ही आता है।

जो हृदय में विद्यमान सात्तिवक, सकारात्मक अथवा शुभ भावनाएं हैं, उन्हें सत्भाव कहते है। जिनसे केवल सुख होता है सभी को। प्रचलित भाषा में सत्भाव को ही प्रेम कहते हैं।

जो मानवमस्तिष्क में समत्वबोध है, उस समदर्शिता पर आधारित सम्यक निर्णयशक्ति ही सत्बुद्धि है जिससे केवल सुख होता है सभी को। प्रचलित भाषा में सतबुद्धि को ही न्याय कहते हैं।

जो सत्य, प्रेम, न्याय पर आधारित सहयोग परायणता है, इसे सत्कर्म कहते हैं। प्रचलित भाषा में सत्कर्म को ही पुण्य कहते हैं। इसके द्वारा पूरी समष्टि संतुलित रहती है और सभी को पारस्परिक रूप से सुख मिलता रहता है। आओ अब प्राकृतिक और सांस्कृतिक का क्या अर्थ है इसे भी समझने का प्रयास करते हैं।

प्राकृतिक का अर्थ

मनुष्य के जन्म तक की बनी हुई कृति अर्थात् प्राकृतिकरूप से जो भी ये संसार बना हुआ है। जिसका निर्माण मनुष्य ने नहीं किया। अर्थात मनुष्य के जन्म तक जो पहले से ही निर्मित है वह, उसे हम प्रकृतिक कहेंगे। उदाहरण के लिए जैसे गंगा नदी जोकि प्राकृतिक रूप से बनी है, इसे प्राकृतिक कहेंगे। और जैसे मनुष्य ने उसमें से गंगनहर निकाली हुई है तो इसे मनुष्यकृत या
यदि ये सही से बनायी है तो इसे सांस्कृतिक कहेंगे।

सांस्कृतिक का अर्थ

मनुस्य के द्वारा ज्ञान–विज्ञान पर आधारित सही से सोच–समझ कर बनायी गयी कृति अर्थात सभी के सुख के लिए बनाई गई भोगसामग्री जोकि प्रकृति में उसरूप से नहीं पायी जाती। उदाहरण के लिए जैसे प्राकृतिकरूप से अपने आप पैदा हुए गेंहू को ऐसे ही चबाकर खाने का सुख प्राप्त करना ये प्राकृतिक कहलायेगा। और सोच–समझकर ज्ञान–विज्ञान का सहारा लेकर सही प्रकार से गेंहू को पैदाकर भंडारण में रखकर समय आने पर उसको चक्की में पीसकर उसकी रोटियां बनाकर, या समोसा बनाकर, या परांठा बनाकर, या और कोई व्यंजन बनाकर उसका सुख लेना ये सांस्कृतिक कहलायेगा। आप जब पूरी प्रकृति का अध्ययन करेंगे तो आप पायेंगे कि प्रकृति में अधिकतर तत्व कच्चे माल के रूप में रहते हैं। उनका सीधा प्रयोग

करके हम ज्यादा सुखी नहीं हो सकते। हां बस कुछ खाने–पीने की वस्तुओं को छोड़ दे तो। बाकि सारी चीजे हमें मिट्टी में से निकालकर उन्हे अपनी सुविधानुसार बनाना पड़ता है। सही मायने में देखें तो पता चलेगा कि मनुष्य प्राकृतिकरूप से स्वर्ग तुल्य जीवन को प्राप्त नहीं कर सकता है। यदि फिर भी वो प्रयत्न करेगा तो पशु तुल्य ही जीवन जी सकेगा प्राकृतिकरूप से। जिसमें बहुत ही न्यून सुख है। और कोई विकसित मनुस्य वैसा रहना नहीं चाहेगा। यदि फिर भी जो मनुस्य प्राकृतिकरूप से रहना चाहते हैं तो जंगल में जाकर रह सकते हैं क्योंकि प्रकृति तो सदैव मोजूद है ही, उसके लिए तो अलग से कुछ करने की जरूरत नहीं है। लेकिन जो सांस्कृतिकरूप से जीवन जीना चाहते हैं उसके लिए तो सांस्कृतिक व्यवस्था होनी ही चाहिए। दोनों तरह की व्यवस्थायें हों ताकि जो जिसमें रहना चाहे अपनी ईच्छानुसार रह सकें और उसका सुख प्राप्त कर सके। प्राकृतिक व्यवस्था तो पहले से है ही। अब तो बस सांस्कृतिक व्यवस्था करनी होती है। जिसके लिए मैं प्रयासरत हूं। तो जो लोग भी सांस्कृतिक व्यवस्था में सम्पूर्णरूप से सुखी जीवन जीना चाहते हैं वो इस आवश्यक कार्य में मेरी जिस भी रूप से सहायता कर सकते हैं, कृपया करें क्योंकि ये एक सामाजिक कार्य है जोकि किसी एक के करने से कभी नहीं होता। ये सभी के समर्थन से होने वाला कार्य है। और जो मनुष्य प्राकृतिक रूप से जीना चाहते हैं वो उसमें अभी से जीते रह सकते हैं उसके लिए तो कुछ करने की आवश्यकता है नहीं और कभी होगी भी नहीं।

•••

अध्याय–6

न्यायशील अर्थव्यवस्था

अब थोड़ा न्यायशील अर्थव्यवस्था को भी समझ लें। क्योंकि किसी भी व्यवस्था का मूल होती है उसकी अर्थव्यवस्था। किसी भी राज्य के सारे कार्य अर्थ पर ही आधारित होते हैं। कोई कार्य बिना अर्थ के पूर्ण नहीं हो सकता। यदि अर्थव्यवस्था न्यायशील होगी तो राज्य के कार्य भी न्यायपूर्वक सम्पन्न हो पायेंगे, नहीं तो सही से सम्पन्न नहीं हो पायेंगे या तो सम्पन्न ही नहीं हो पायेंगे। अर्थात् किसी भी व्यक्ति या परिवार या समाज या समष्टि के कार्य उसी प्रकार से सम्पन्न होंगे जिस प्रकार की वहां अर्थव्यवस्था होगी। अर्थव्यवस्था पर ही निर्भर करता है कि जो संविधान में लिखा है वो धरातल पर उतर पायेगा कि नहीं। यदि हम सभी व्यवस्थाओं की प्रस्तावना को पढ़ें तो पायेंगे कि लगभग सभी संविधानों में ये लिखा होता है कि संविधान के अनुसार सारी जनता के अधिकार समान होंगे। लेकिन यदि धरातल पर हम देखें तो ऐसा नहीं दिखाई पड़ता। समाज विभिन्न आर्थिक वर्गों में विभाजित हो जाता है जिसमें एकदम निर्धन वर्ग से लेकर एकदम धनी वर्ग तक हम पायेंगे। अर्थात हल्के अंतर से नहीं बल्कि निर्धन वर्ग में और धनी वर्ग में बहुत ही बड़ा अंतर हम पायेंगे। हम देख सकते हैं कि मात्र 1 प्रतिशत से भी कम लोग 70 प्रतिशत धन पर काबिज रहते हैं। और फिर भी हम ऐसे गलत विधानों को संविधान ही कहे चले जाते हैं। जिसमें समान जैसा कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। ऐसा भी नहीं है कि कोई सरकार प्रयत्न नहीं करती। सभी सरकारें अपना पूरा प्रयास करती हैं कि वो सभी को संतुष्ट कर सकें। परंतु अपर्याप्त अर्थशास्त्र के कारण वो अधिकांश वर्ग को संतुष्ट नहीं कर पाती। इसी कारण सरकारें बदलती रहती हैं। इसी कारण सभी पार्टियां जनता को भावनाओं के आधार से जोड़ने का प्रयास करते हैं। लेकिन फिर भी असंतुष्टि को कोई भी पार्टी अधिक समय तक अपने से जोड़कर नहीं रख पाती। क्योंकि प्रत्येक आदमी एक अच्छा जीवन जीना चाहता है। उपर की चर्चा से हम समझ सकते हैं कि कार्यों को न्यायशील प्रकार से सम्पन्न करने के लिए एक न्यायशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकता होगी। न्यायशील

अर्थव्यवस्था के बिना आर्थिक समानता सम्भव नहीं है। और आर्थिक समानता के अभाव में बाकि स्वतंत्रताएं भी सम्भव नहीं हो पातीं। जिस कारण एक बड़ा वर्ग असंतुष्ट रहता है। जिसके कारण सभी प्रकार के अपराध होते रहते हैं। छोटे बड़े युद्ध चलते रहते हैं। गलाकाट प्रतिद्वंदिता निरंतर चलती रहती है। निरंतर मनुष्य के अंदर और बाहर अशांति बनी रहती है। एक आदमी दूसरे आदमी को निरंतर शक की नजरों से देखता रहता है। कुल मिला कर कहें तो निर्धन वर्ग बहुत दुखों में जीवन जीने को बाध्य रहता है। और धनी वर्ग भी कई प्रकार की समस्याओं से घिरा रहता है। इसलिए आओ एक न्यायशील अर्थव्यवस्था को लाने का प्रयास करते हैं जिसका निर्माण में कर चुका हूं। उसे आप सब भी इस पुस्तक में समझ ही जायेंगे। शेष कार्य केवल उसे लाने भर का ही रह जायेगा जोकि वो जनता पर निर्भर करता है। अब यदि उसे सुखी संपन्न बिना समस्या वाला जीवन जीना है तो इसे ले आये, नहीं तो जैसे जी रही है जीयें। निर्णय जनता के पास होगा। हां अब ये नहीं कह सकेंगे कि समाधान हमारे पास नहीं है, करें तो क्या करें। आओं इस न्यायशील अर्थव्यवस्था को समझते हैं।

अर्थ की परिभाषा

जिन भी वस्तुओं या सेवाओं आदि से हम सुखी अनुभव करते हैं, उन्हें हम अर्थ की श्रेणी में रखते हैं। और जिन भी वस्तुओं या सेवाओं आदि से हम दुखी अनुभव करते हैं वो हमारे लिए अनर्थ की श्रेणी में आते हैं। जिस ज्ञान से सुख मिलता है वो हमारे लिए अर्थ है, जिस कर्म को करने से सुख मिलता है वो हमारे लिए अर्थ है, जिस भोग को भोगने से सुख मिलता है वो हमारे लिए अर्थ है, और विश्राम करने के लिए जो वातावरण और सुख सुविधाएं चाहिए जहां कि हम सही से विश्राम कर पायें तो ये सुख सुविधाएं हमारे लिए अर्थ हैं। और इनके विपरीत जिन जिन से हमें दुख अनुभव होता है वो सब अनर्थ होता है। पहली बात ये है कि, इस अर्थ के निर्माण की व्यवस्था कैसे की जाये जोकि न्यायपरक हो सके। अर्थात अर्थ का निर्माण सुखी सुखी हो। ऐसा ना हो कि जैसे पहले राजा महाराजा बलपूर्वक महल आदि का निर्माण कराते थे। वो सब अन्यायकारी था। अब तो कसौटी हमारे पास है, और वो है सुख। यदि अर्थ का निर्माण सुखी सुखी होता है तो ही

इसे न्यायकारी निर्माण कहा जायेगा। इसके लिए हमें जानना होगा कि कितने प्रकार के पदार्थ या सेवा आदि इस संसार में होते हैं जिनसे हमें सुख होता है, जिन्हें हम अर्थ कह सकते हैं। इन्हें कुल चार प्रकार में में बांटा जा सकता है। कृषि के द्वारा पैदा किये गये पदार्थ और दी गई सेवा, वाणिज्य के द्वारा पैदा किये गये पदार्थ और दी गई सेवा, प्राशासन के द्वारा पैदा किये गये पदार्थ और दी गई सेवा, नेत्रत्व के द्वारा पैदा किये गये पदार्थ और दी गई सेवा। इन चारो प्रकार के अर्थ का सुखपूर्वक कैसे निर्माण किया जा सकता है, ये हम आगे इस पुस्तक में जानेंगे। दूसरी बात है कि, अर्थ का वितरण कैसे हो जिससे कि वो सबकी ईच्छानुसार उन तक पहुंच सके वो भी सुखपूर्वक। ये विषय भी अर्थशास्त्र के अंदर ही आता है जिसे आगे इस पुस्तक में आप जानेंगे।

कृषिक्षेत्र में अपनी वरीयता और ईच्छानुसार जितने भी लोग कर्म कर रहे होंगे और वो जो भी पैदा कर रहे होंगे उन सबका पता प्रशासन को रहेगा ही। क्योंकि सारी मांगे सरकार के कम्पयूटर में होंगी। समाज में किस वस्तु की कितनी मांग किस क्षेत्र में होगी ये भी सरकार को पता होगा ही। इसी ज्ञान के आधार पर सरकार मांग, निर्माण और आपूर्ति पर कार्य करेगी। इस नयी व्यवस्था में सभी मांगे सरकार को पता होंगी। जिस आधार से सरकार निर्माण का कार्य समय से पूरा करती रहेगी। उसीप्रकार वाणिज्य के क्षेत्र में किन वस्तुओं और सेवाओं की किन क्षेत्रों में किस प्रकार की मांग है उसी आधार पर उतनी संख्या में उन वस्तुएं का निर्माण और वितरण पर कार्य करेगी। सरकार के इस अभ्यास से ना कोई वस्तु या सेवा कम रहेगी और ना ही आवश्यकता से अधिक होगी। सदैव ही संतुलन बना रहेगा। क्योंकि मांग के आधार से ही वस्तुओं का निर्माण हो रहा होगा। महंगाई जैसी समस्या से सदैव के लिए आजादी मिल जायेगी। कृषिक्षेत्र की वस्तुएं मौसम आदि पर भी निर्भर करती है तो इस क्षेत्र में तो आवश्यकता से अधिक ही पैदा किया जाता रहेगा। क्योंकि कहीं सूखा भी पड़ सकता है या कोई और आपदा भी आ सकती है जिसका कि सरकार के पास तत्काल कोई हल नहीं होगा। और जब हल होने लगेगा तो फिर इस क्षेत्र में भी अधिक पैदा करने की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। इसप्रकार सभी क्षेत्रों में सरकार

संतुलन बनाने में समर्थ रहेगी। जिस आदमी की मांग पहले होगी, उसीको आपूर्ति भी पहले होगी। नम्बर के आधार से आपूर्ति की जायेगी। प्रशासनिक सुख सुविधाएं तो क्षेत्रिय आधार से सभी को समान रूप से अपने आप ही बिना मांगे मिल रही होंगी जैसे सड़क, आवास, बिजली, पानी आदि। शिक्षा और प्रशिक्षण भी सभी को उनकी रूचि के आधार से सबको मिल रहा होगा। संरक्षण भी सभी को आवश्यकता के आधार से मिल ही रहा होगा। मूल संसाधन या कहे प्राकृतिक संसाधन तो यहां सभी के लिए एकसमान हैं और बिना किसी मूल्य के हैं क्योंकि उसमें तो किसी ने कोई परिश्रम किया नहीं है। तो उन पर तो सभी का वो चाहे मनुष्य वर्ग हो या जीव जन्तु वर्ग हो उन सबका बराबर का अधिकार है। तो उनका तो किसी का कोई मूल्य होता नहीं। पर किसी भी मनुस्य के द्वारा जब किसी पदार्थ की रचना होती है या उसके द्वारा कोई सेवा दी जाती है तो उसमें उस मनुष्य का परिश्रम लगता है। उसकी शक्ति, उसका समय खर्च होता है। इससे प्रत्येक निर्मित पदार्थ या सेवा का एक मूल्य हो जाता है। इसका अर्थ ये हुआ कि केवल परिश्रम ही वो एकमात्र कुंजी है किसी निर्मित वस्तु या सेवा का मुल्य तय करने में नाकि कोई दूसरा कारण। इसका तात्पर्य ये हुआ कि यदि हम वस्तुओं के या सेवाओं के मूल्य निर्धारण में कोई और कारक का प्रयोग करते हें तो ये अन्यायकारी होगा। लेकिन इस नयी व्यवस्था में तो किसी के श्रम का मुल्यांकन करने की आवश्यकता भी नहीं रहेगी। क्योंकि जिसको जो भी चाहिए होगा वो व्यवस्था से मांग कर ही सकेगा और उसे प्राप्त करता रह सकेगा। तो श्रम के मुल्यांकन करने का तो कोई अर्थ बचा नहीं। तो इस नयी व्यवस्था में ना तो धन का कोई स्थान होगा और ना ही किसी के श्रम का मुल्यांकन करने का स्थान होगा। बस जिसको जो चाहिए वो मिल ही जाना है। इसप्रकार सभी समानरूप सुखी हो जायेंगे, जोकि इस व्यवस्था को बनाने का उददेश्य भी है। इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि जो व्यवस्था हमारे जीवन के उददेश्य को प्राप्त करा दे, वही व्यवस्था न्यायकारी कहला सकती है और वही अर्थशास्त्र न्यायकारी अर्थशास्त्र कहला सकता है। अभी तक के अर्थशास्त्र ने मनुष्य के जीवन का लक्ष्य प्राप्त नहीं कराया है और ना ही कोई आशा दिखाई पड़ रही है प्राप्त करने की। तो आज तक के

अर्थशास्त्र तो अन्यायकारी अर्थशास्त्र कहेंगे। बल्कि इसे विधवंशकारी अर्थशास्त्र भी कहेंगे, क्योंकि इसके कारण मनुष्य दूसरे मनुष्य का शत्रु बन बैठा है और एक दूसरे का नाष करने में लगा है।

न्यायशील अर्थव्यवस्था के मुख्य बिन्दु

1.आर्थिक क्रियाओं के वास्तविक 3 स्वरूपों का निर्धारण– मांग, उत्पादन, वितरण।

2.तीनों आर्थिक क्रियाओं का न्यायशील संचालन।

3.आर्थिक नियमों, नीतियों, निर्णयों का न्यायशील निर्धारण।

4.मुद्रा का उपयोग सरकार के द्वारा केवल गणनाएं करने के लिए ही प्रयोग में लाया जायेगा। लोगों के लिए इसका कोई विशेष महत्व नहीं होगा। लोगों को तो जो चाहिए वो उन्हें मिलता रहेगा।

5.शिक्षा, जीविका, सुविधा, संरक्षण प्राप्ति के चारों न्यायशील जनाधिकारों की प्रतिष्ठा।

6.सभी को शिक्षा, योग्य लोगों को जीविका, प्रतिग्राम सुविधा, प्रतिसंवर्ग संरक्षण हेतु समुचित व्यवस्था।

7.जनता के लिए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चारों पुरुषार्थों की सिद्धि।

किसी भी देश को सही रूप से जीवन जीने के लिए इन चार आधारों की आवश्यकता होती है।

1.संसाधन

2.संस्कृति

3.सभ्यता

4.सिद्धांत

संसाधन तो प्राकृतिकरूप से संसार में हैं ही। इन पर सभी का समानरूप से अधिकार है। स्थूल शरीर के जीवन निर्वाह के लिए भोजन, वस्त्र, आवास आदि की आवश्यकता सभी को समानरूप से होती है।

इसके बाद आवश्यकता होती है संस्कृति की अर्थात् ज्ञान विज्ञान की, जिससे सभी के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। एक अशिक्षित मनुस्य से हम

किसी भी ऐसी जीवन प्रणाली के अनुसार जीने की आशा नहीं कर सकते जिसका कि उसे ज्ञान ही ना दिया हो। उपर ये बताया जा चुका है कि हम सभी एक दूसरे के सहयोग से ही सुखी जीवन जी सकते हैं, अकेले अकेले नहीं। जीवन क्या है, जीवन क्यों है, इसे किस प्रकार से जीना चाहिए, किससे कैसा व्यवहार करना चाहिए आदि बातें सिखाने के लिए कोई एक ही मापदण्ड वाली सही शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है। अर्थात् लोगों के जीवन को संस्कृति के आधार पर संस्कारित करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है। सभी मनुस्य एक दूसरे के साथ सहज ही सहयोग कर सकें, इसके लिए सही शिक्षा ही आधार हो सकती है। ऐसा नहीं है कि कोई मनुष्य बिगड़ा हुआ है और शिक्षा से उसे सुधारना है। मनुष्य प्राकृतिकरूप से सही ही पैदा होता है। शिक्षा का उददेश्य केवल ये है कि वो उन सभी नीति नियमों से उस बच्चे को अवगत करा सके जिनके आधार से उसे समाज में रहना है। उदाहरण के लिए यदि किसी बच्चे को सड़क पर चलने के नीति नियम ना बतायें जायें तो इससे क्या होगा कि जब वो बच्चा सड़क पर चलेगा तो उसे पता नहीं होगा कि कैसे चले। वो कैसे भी चलने का प्रयास करेगा। जिसके कारण दुर्घटनाएं होंगी जोकि इसके लिए भी और दूसरों के लिए भी दुख कारक होगा। तो शिक्षा क्या करेगी कि उसे सड़क के नीति नियमों से अवगत करायेगी और उसका अभ्यास करायेगी। हम समझ सकते हैं कि शिक्षा किसी को सुधारने के लिए नहीं है वरन केवल उपयोगी ज्ञान प्रदान करने के लिए है और यही शिक्षा का उददेश्य भी है। इसी प्रकार पूरी व्यवस्था के सभी नीति नियमों और उपयोगी ज्ञान विज्ञान से अवगत कराना ही शिक्षा का उददेश्य होता है नाकि किसी को सुधारने का। सब सुधरे हुए ही होते हैं। और जो लोग विगड़े हुए से दिखाई भी पड़ते हैं वो केवल गलत व्यवस्था के कारण। जैसे गलत खानपान के कारण शरीर अस्वस्थ हो जाता है उसी प्रकार गलत व्यवस्था के कारण व्यक्तित्व अस्वस्थ हो जाता है। जैसे ही सही व्यवस्था आयेगी ये व्यक्तित्व भी सब स्वस्थ हो जायेंगे। जब संसाधन सबके पास हों और संस्कृति सबके पास हो तो इससे सभ्यता का उदय होता है। सभ्यता का अर्थ है कि सभ्य पूर्वक एक दूसरे के साथ पूर्ण सहयोगीरूप से अकेले या परिवारिक या सामाजिकरूप से सुखी जीवन को जीना। सहज ही

सम्यक व्यवहार करना, अपने कर्मों का सहज ही पालन करना आदि। यहां सभ्य से तात्पर्य है नीति नियमों के अनुसार जीवन। सभ्यता के बिना बड़ी सुखसुविधाएं पैदा नहीं की जा सकती। सभ्यता के बिना हम केवल कृषि पर ही निर्भर होकर रह जायेंगे। इससे आगे का सुख सभ्यता पर ही निर्भर करता है। हम अपने से कैसा व्यवहार करें, परिवार मं कैसा व्यवहार करें, समाज में कैसा व्यवहार करें और समष्टि में कैसा व्यवहार करें। व्यवहार ही किसी सभ्यता का मूल है। और सबसे अंत में है सिद्धांत, इसका अर्थ है कि अंतिमरूप से सिद्ध हो गया है जो यानिकि सभी प्रकार के ज्ञान विज्ञान के अनुसार जीवन। हमारे संसाधन, हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता का आधार ये हमारे सिद्धांत ही है। ज्ञान विज्ञान पर आधारित संस्कृति ही सही मायने में संस्कृति कहलाती है। और आजतक के ज्ञान विज्ञान से ये सिद्ध हो ही चुका है कि संसार में सारी अनेकता किसी एक का ही विस्तार है। कोई एक ही तत्व अनेक हो गया है। और हम सब निरंतर सुख ही चाहते हैं। तो सिद्धांत हुआ कि हम सब एक से ही अनेक हुए है और हमारा सबका एक ही लक्ष्य है और वो है सदैव सुखी रहना। फिर हमें अपनी संस्कृति का आधार इसी सिद्धांत को बनाना चाहिए। यदि किन्ही को कुछ और सिद्धांत सही लगता है तो वह सम्मान सहित विचार विमर्श के लिए मेरे यहां आमंत्रित हैं। और यदि पूरे विचार विमर्श के बाद ये सिद्ध होता है कि उपरोक्त सिद्धांत गलत है तो मैं उसी समय इस सिद्धांत को त्याग दूंगा। और जो सिद्धांत निकल कर आयेगा उसको ग्रहण करूंगा। पर यदि उपरोक्त सिद्धांत सही सिद्ध होता है तो आपको भी उसे सहज ही स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसी आपसे आशा रहेगी। फिर भी आप स्वतंत्र है कि आप स्वीकार करें या ना करें।

•••

अध्याय–07

सरकार की आवश्यकता क्यों

हमारे जीवन में चार प्रकार के कुल कार्य हैं। जोकि निम्नलिखित हैं

1.व्यक्तिगत कार्य।

2.पारिवारिक कार्य।

3.सामाजिक कार्य।

4.सामष्टिक कार्य।

आदमी इनमें से पहले दो प्रकार के कार्य अपने स्तर पर और पारिवारिक स्तर पर सम्पादित कर लेता है, जैसे कि नहाना, खाना, पहनना, खेलना, विवाह करना, बच्चे करना, परिवार की देखरेख करना, घर बनाना, घर के आस पास कुछ प्रबन्धन कर लेना आदि। लेकिन इन कार्यों को भी वह बिना सरकार के अच्छे से नहीं कर पाता है, पर काम चलाउ कर लेता है। जैसे तैसे काम चलाया जा सकता है। जैसाकि आपने दूर ऐसे गांवों में देखा होगा जहां कि सरकारें अभी पहुंच नहीं पायी हैं। बस वहां के लोग ही मिलकर कुछ हल्का फुल्का प्रबन्धन कर लेते हैं। वहां सामाजिक सुख सुविधायें ना के बराबर होती हैं वो भी वहां जो समाज है उसके कारण, नहीं तो वो भी ना हों। लेकिन बाद वाले दो सामाजिक और सामष्टिक कार्यों को करने के लिए तो एक सार्वजनिक संस्था की जरूरत होती ही है, जिसे सरकार कहते हैं। जैसेकि शिक्षा–प्रशिक्षण। रोजगार–कृषि, वाणिज्य, प्रशासन, नेत्रत्व। सुखसुविधाएं –आवास, सड़क, बिजली, पानी, यातायात, दूरसंचार, डाकधर आदि। और संरक्षण– न्यायिक संरक्षण, अस्पताल, आपातकाल संरक्षण, बीमा आदि। इन कार्यों को कोई व्यक्तिगत या पारिवारिक आधार पर सम्पादित नहीं कर सकता। अर्थात सामाजिक एवं सामष्टिक कार्यों को व्यवस्थितरूप से करने के लिए ही सरकार नामक संस्था का गठन होता है। गठन के बाद सरकार इन कार्यों की नीतियां बनाती है। एवं उनके अनुसार प्रशासन उन कार्यों को सम्पादित करता है। वे कार्य ये हैं।

सरकार के कर्मों का वर्णन।

1. शिक्षण–प्रशिक्षण
2. आजीविका
3. सुखसुविधा
4. संरक्षण

1. शिक्षण–प्रशिक्षण

जब भी कोई सभ्य समाज बनाने की बात आती है तो उसके लिए कुछ नीति नियम बनाने होते हैं, उसका पूरा एक उददेश्य होता है। एक पूरा दर्शन होता है जिसको सभी मान कर एक दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं। ये तभी सम्भव है जबकि उन नीति नियमों का ज्ञान समाज में रहने वाले लोगों को हो। यदि समाज को समाज के नीति नियमों का ज्ञान ही नहीं होगा तो वो उनका पालन कैसे कर पायेगा? इसलिए शिक्षा का बड़ा महत्व है समाज के अंदर। इसी ज्ञान को करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। दूसरा समाज के जीवन को समृद्धशाली कैसे बनाया जा सके, सुखसुविधाओं को बढ़ाने के लिए कैसे ज्ञान विज्ञान को खोजा जा सके और कैसे उस ज्ञान और विज्ञान को आने वाली पीढ़ी तक प्रेषित कर सकें ताकि आने वाली पीढ़ी उस ज्ञान को सहज ही कम समय में प्राप्त करके उससे आगे की खोजों पर जा सके, और जो खोज लिया गया है उसका प्रयोग जीवन की सुखसुविधाओं को बनाने में प्रयोग किया जा सके जिससे हम अधिक से अधिक सुखी हो सकें। ये ही परिवार, समाज आदि संरचना बनाने का उददेश्य होता है। उसके लिए ही शिक्षा की आवश्यकता होती है।

'शिष' धातु से शिक्षा शब्द बना है। शिक्षा वही है जो हमें शिष्ट बनाती हो। जो हमारे अंतःकरण को शिष्ट बनाती हो। शिष्ट से ही मनुष्य सभ्य होता है। सभ्य का अर्थ होता है कि जो समाज बनाया गया है वो उसमें व्यवहार करने योग्य हो जाये। सभ्य का ये अर्थ बिल्कुल नहीं है कि मनुष्य कोई बिगड़ा हुआ प्राणी है और उसे शिक्षा देकर सुधारना है। मनुष्य प्राकृतिक रूप से ठीक ही है जैसे कि उसे होना चाहिए। शिक्षा का उददेश्य केवल ये ही

होना चाहिए कि वो समाज के नीति नियमों का ज्ञान उसे करा सके ताकि वो सभ्य बन सके यानिकि समाज में व्यवहार करने में सफल हो सके। और उस समाज में उसका कर्म क्या होगा जिससे वो इस समाज के उददेश्य में अपना योगदान दे सके। इसी के लिए तो समाज की रचना की गई है कि जिसके माध्यम से हम सभी अपने ईच्छित सुखों को प्राप्त कर सकें। शिक्षा के माध्यम से हम ये जान पाते हैं कि हमें क्यों कुछ करना चाहिए, क्या कुछ करना चाहिए, कैसे करना चाहिए, क्या सही है और क्या गलत है, किससे कैसा व्यवहार करना चाहिए। हमें कैसा आचार और व्यवहार करना चाहिए, ये केवल शिक्षा से ही आसानी से एवं त्वरित गति से जाना जा सकता है। प्रत्येक मनुष्य में एक अंतःकरण चतुष्टय होता है। इसका अर्थ हमारे अंदर चार प्रकार की क्षमतायें होती है– मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। मन के अंदर चिंतन–मनन करने की शक्ति होती है। बुद्धि के अंदर निर्णय करने की शक्ति होती है। चित्त के अंदर धारण करने की शक्ति होती है। और अहंकार के अंदर जानने की शक्ति होती है। हमारे अंतःकरण की ये पूरी प्रक्रिया है। इसी अंतःकरण के विकास के लिए ही शिक्षा की जरूरत होती है। इसके चार प्रभागों मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के परिष्करण के लिए चार विषयों की ही जरूरत होती है। मन के परिष्करण के लिए भाषा, बुद्धि के परिष्करण के लिए गणित, चित्त के परिष्करण के लिए संज्ञान और अहंकार के परिष्करण के लिए दर्शन की जरूरत होती है। शिक्षा पूरी होते होते जिस बच्चे में जितनी समझ पैदा होगी, वह जितना वरीय होगा उसकी चारों क्षमताएं उसी के हिसाब से कार्य कर रही होंगी। उसका आचार व्यवहार भी उसकी वरीयता के अनुसार ही होगा। उसकी रूचियां भी उसकी वरीयता के आधार से ही उत्पन्न होती हैं। आगे उसका प्रशिक्षण भी उसी आधार से होगा। फिर उसका रोजगार भी उसी आधार से निश्चित हो जायेगा।

15वर्षीय पाठ्यक्रम एवं उसका उद्देश्य

शिक्षा दो प्रकार की होगी– सामान्य और आजीविका परक। 15 वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम होगा। जोकि सभी को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जायेगा। कोई भी विद्यार्थी कभी फेल नहीं किया जायेगा। जो जितने नम्बर लेकर आयेगा, उन्हीं नम्बरों के साथ उसको अगली कक्षा में प्रवेश दे दिया जायेगा।

केवल चार विषय ही इस सामान्य शिक्षा में पढ़ाये जायेंगे। भाषा, गणित, संज्ञान और दर्शन। जोकि सभी बच्चों के व्यक्तित्व का विकास करेंगे। भाषा मन का विकास करेगी, गणित बुद्धि का विकास करेगा, संज्ञान चित्त का विकास करेगी और दर्शन अहंकार का विकास करेगा। अंतःकरण के विकास से ही मनुष्य को सही और गलत का ज्ञान होता है। कब क्या करना चाहिए उसे इस बात का ज्ञान शिक्षा से ही होता है। आचार व्यवहार कैसा हो ये सब शिक्षा से ही मनुष्य को ज्ञात हो पाता है। मन तर्क वितर्क करने का कार्य करता है। जब हमारे सामने कोई स्थिति आती है तो हम मन के द्वारा उसका आकलन करते हैं। स्थिति का आकलन करने से कई प्रकार के विकल्प आते हैं, मन उन विकल्पों के बारे में सारी प्राप्त सूचनाओं और अनुभवों के आधार पर चिंतन मनन करता है और समझने का प्रयास करता है कि क्या करने से उसे सुख होगा और क्या करने से उसे दुख होगा। यही मन का कार्य होता है। और इस को अच्छे से करने के लिए एक तार्किक भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा के माध्यम से विचार विमर्श करना आसान होता है। और खासतौर से जब, जबकि हम विचार विमर्श किसी और के साथ कर रहे हों। क्योंकि भाषा के कारण ही इतनी विभिन्नताओं को इतने सारे नाम दिये जा सकते हैं, नहीं तो भाषा के अभाव में केवल शारिरिक संकेतो के आधार से ये कार्य लगभग असंभव ही है कि किसी बारे में किसी को कुछ बता सको। तो भाषा के माध्यम से ये सब बहुत ही सरल हो जाता है। भाषा के माध्यम से किसी बारे में हम एक दूसरे को सरलता से सारी सूचनाएं दे या ले पाते हैं। फिर उन सूचनाओं के आधार से अपने अंदर या किसी के साथ विचार विमर्श करके सारी स्थिति को स्पष्ट कर लेते हैं कि यदि ऐसा करेंगे तो सुख होगा और यदि वैसा करेंगे तो दुख होगा। कई विकल्प निकाल लेना ही मन का कार्य होता है। किसी बारे में कई प्रकार की कल्पनाएं करना ही मन का कार्य होता है कि यदि ऐसा होता तो क्या होता यदि वैसा होता तो क्या होता। यदि ऐसा कर लेंगे तो क्या हो जायेगा और यदि वैसा कर लेंगे तो क्या हो जायेगा। तो विभिन्न प्रकार की कल्पनाएं करना और विभिन्न प्रकार के विकल्प तैयार करना मन का कार्य होता है। और मन के इस कार्य में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। यदि

मनुष्यों के अन्दर से इस भाषा को समाप्त कर दें तो अभी हम सब आदिमानव के रूप में हो जायेंगे। ये सारा ज्ञान विज्ञान समाप्त हो जायेगा। और केवल एक जंगली जीवन ही विकल्प के रूप में बचेगा एकदम जैसे हम पशुओं का जीवन देखते हैं। इससे हम समझ सकते हैं कि सारे ज्ञान विज्ञान का आधार है ये भाषा। भाषा समाप्त तो पूरा ज्ञान विज्ञान समाप्त। अब विचार विमर्श के बाद आवश्यकता होती है निष्कर्ष की, निर्णय की। नहीं तो विचार विमर्श का कोइ औचित्य ही नहीं बचेगा। यदि हम सब बैठकर केवल विचार विमर्श करते रहें पर किसी निर्णय पर ना पहुंचे तो क्या होगा? ये ऐसा ही होगा जैसे कि कोई जज अदालत में वकीलों के विचार विमर्श तो खूब सुने पर किसी निर्णय पर ना पहुंचे तो इसे क्या कहेंगे कि अभी प्रक्रिया पूरी नहीं हुई। तो विचार विमर्श के बाद कोई निर्णय भी होना चाहिए। इसी निर्णय करने के अभ्यास के लिए गणित विषय के रूप में होता है विद्यालय में। और निर्णय करने के लिए अंतःकरण में से दूसरा करण बुद्धि उत्तरदायी होता है। इस बुद्धि के विकास के लिए ही गणित होता है। गणित में सदैव ही हम कोई ना कोई निर्णय ही ले रहे होते हैं प्रत्येक गणना में। जैसे यदि 5 को 8 में जोड़ेंगे तो क्या निर्णय हागा? निर्णय आयेगा 13। और गणन की क्रिया में भी प्रत्येक चरण में आप निर्णय ही कर रहे होते हैं और वहां जाकर रूकते हैं जहां पर कि आपको अतिंम निर्णय यानिकि अभीष्ट उत्तर आ जाता है जोकि आप पाना चाहते थे। तो ये जो निर्णय लेने की क्षमता है इसको बौद्धिक क्षमता कहते हैं और इसके विकास में गणित का महत्वपूर्ण योगदान होता है। कोई भी निर्णय इस बुद्धि की सहायता से ही लिया जाता है।

ठीक है हमने विचार विमर्श किया और किसी निर्णय पर भी पहुंच गये तो क्या बात पूरी हो गयी? तो देखेंगे कि नहीं अभी तो हम कहीं बीच में ही हैं। अभी हमारा वो उददेश्य तो पूरा हुआ नहीं है जिसके लिए ये सब 'विचार विमर्श और निर्णय' किया जा रहा है। अर्थात जज ने निर्णय ले लिया कि किसकी गलती है, और उसे क्या सजा देनी है। तो जज का कार्य तो पूरा हुआ, बुद्धि का कार्य तो पूरा हुआ पर क्या समाज का कार्य पूरा हुआ? नहीं हुआ, क्योंकि अभी तो उस निर्णय पर अमल होना बाकि है। तो क्या होता है अगला कदम? अगला कदम होता है कि जज के उस निर्णय को प्रशासन

स्वीकार करता है कि हां जज साहब आपके निर्णय को स्वीकार किया जाता है और अपके निर्णय के अनुसार इस पर कार्यवाही होगी। तो अगला कदम हुआ कि उस निर्णय को प्रशासन के द्वारा स्वीकार किया गया। ये निर्णय को स्वीकार करने का कार्य हमारे अंतःकरण में चित्त की सहायता से किया जाता है। और इस चित्त के विकास के लिए संज्ञान विषय उपयोगी होता है। संज्ञान का अर्थ होता है सामान्य ज्ञान। संज्ञान में वो सारी सामान्य शिक्षा होती है जिसका कि हम हमारे दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं जैसे हम कैसे बैठे, कैसे निद्रा लें, कैसे चलें, कैसे खायें पीयें, क्या खायें पीयें, क्या और कैसे कपड़े पहने, कैसे दूसरों के साथ व्यवहार करें, तकनीकि का प्रयोग किस प्रकार करें इतिहास, भूगोल आदि कि जिससे हमें और सबको सुख ही मिलता हो कोई दुख ना मिलता हो या सुख अधिकतम मिलता हो और दुख निम्नतम मिलता हो। तो संज्ञान से हमें ये सारी जीवन उपयोगी शिक्षा मिलती है, पर ये हमारे हाथ में है कि इसको हम स्वीकार करें कि नहीं। अब मनुष्य स्वभाव से ही सुख देने वाली वस्तुओं और सेवाओं को स्वीकार करता ही है। इसलिए सही संज्ञान को वो स्वीकार कर ही लेगा। संज्ञान का अर्थ हुआ कि संज्ञान विषय हमें बताता है कि कैसे अपने आपको व्यवहरित करो कि जिससे सब लोग अधिक से अधिक सुखी हो जायं। और केवल बताता ही नहीं है विस्तारपूर्वक समझाता भी है कि ऐसा ही क्यों इसके अलावा और कुछ क्यों नहीं। तो मनुष्य ऐसी शिक्षा को स्वीकार कर ही लेता है जिससे कि उसको सुख और केवल सुख ही मिलता है। यदि कोई मनुष्य इस शिक्षा को स्वीकार करने से मना करे तो ये ही समझना चाहिए कि अवश्य ही इस संज्ञान में कुछ कमी है नाकि मनुष्य में कमी खोजने लग जायें। तो ये है संज्ञान का महत्व हमारे जीवन में। अब चलो बात स्वीकार तो कर ली पर अब उसे क्रियमाण भी तो करना है। क्योंकि परिणाम तो करने के बाद ही आता है जिसके लिए इतनी लम्बी प्रक्रिया की जा रही है। तो ये तब होती है जब अहंकार इसको स्वीकार करने के बाद करने की इच्छा करता है क्योंकि उसको उससे संबंधित परिणाम चाहिए होता है। अंतःकरण के इस चोथे करण अहंकार के सही विकास के लिए दर्शन विषय उपयोगी होता है। क्योंकि सारी बात इसी अहंकार से प्रारम्भ होती है और इसी के लिए होती

है और इसी पर आकर समाप्त हो जाती है। यही है इस सबकी धुरी। इसी के चारों तरफ सबकुछ घूमता रहता है। ये अहंकार ही मुख्य अध्यक्ष है इस पूरे मनुष्य का। मनुष्य से संबंधित सभी कुछ इससे ही प्रारम्भ होता है और इसी पर ही अंत होता है और मध्य में भी यही केंद्र बना रहता है। यही इच्छा करके प्रारम्भ करता है, यही चिंतन मनन करता है मन की सहायता से, यही बुद्धि की सहायता से निर्णय करता है, यही चित्त की सहायता से स्वीकार करता है, यही कर्म इंद्रियों की सहायता से क्रिया करता है और फिर परिणाम को ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से भोगकर सुखी होता है। इस सारी प्रक्रिया में भी लगातार सुख बना ही रहता है। ये सुख बना रहना ही कसौटी भी है। यदि अहंकार की ये संपूर्ण प्रक्रिया सुखपूर्वक पूर्ण होती है तो ही वो व्यवस्था पूर्णरूप से सही होगी। कोई भी दुख आने पर हमें व्यवस्था का निरिक्षण करना चाहिए और उसकी अपूर्णता को पूर्ण करना चाहिए। इसलिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण अहंकार के विकास के लिए दर्शन विषय होता है। इस विषय का महत्व समझ सकते हैं क्योंकि सारे अच्छे और बुरे क्रिया कलाप इसी अहंकार से प्रारम्भ होते हैं अब यदि प्रारम्भ ही गलत होगा, फिर तो पूरी प्रक्रिया अंत तक गलत ही चलेगी। और सबके लिए दुख ही उत्पन्न करेगी। जोकि हम देख रहे हैं कि ऐसा अधिकतम हो ही रहा है। किसी भी समाज में सुखी और दुखी परिणामों के लिए ये दर्शन विषय ही मूलरूप से उत्तरदायी होता है। जिस समाज का जैसा दर्शन होगा, उसी परिमाण व दिशा में वो सुखी या दुखी होगा। इसी से हम समझ सकते हैं कि दर्शन हमारा पूर्ण है कि नहीं। इसकी कसौटी हमारे समाज की स्थिति से ही निर्धारित होगी। यदि हमारा समाज पूणरूप से सुखी है तो समझो कि हमारा दर्शन भी पूर्णरूप से सही है, अन्यथा नहीं है। उसमें निरंतर शोध होते रहने चाहिए उसके पूर्ण होने तक। दर्शन हमें बताता है कि ये जीवन क्यों है और इस क्यों को कैसे प्राप्त करें अर्थात इस जीवन का उददेश्य क्या है और उस उददेश्य को कैसे प्राप्त किया जाये। मूलरूप से यही दर्शन का विषय होना चाहिए। इसी बीच में और भी प्रश्नों का समाधान ये दर्शन करता है, जैसेकि हम कौन हैं, हमारा इस प्रकृति से क्या संबंध है, आपस में हमारा क्या संबंध है आदि आदि। कितने प्रकार के अहंकार होते हैं और उनको

कैसे विकसित किया जाये ताकि वो सब हो सके जिसके लिए इन विभिन्न प्रकार के अहंकारों का निर्माण होता है या किया जाता है। इनके निर्माण की प्रक्रिया क्या है। ये सब दर्शन विषय के अंतर्गत ही आते हैं। तो सामान्य शिक्षा का ये ही कार्य है, ये ही उददेश्य है कि वह हमारे अंतःकरण को सुनियोजितरूप से विकसित कर सके।

अभी तक जितने भी दर्शन प्राप्त होते हैं उन सबमें ये प्रारम्भिक या मूल प्रश्न 'ये ब्रहमांडिय जीवन क्यों है या इस ब्रहमांडिय जीवन का क्या उददेश्य है या ये ब्रहमांडिय जीवन पलप्रतिपल किस दिशा में जा रहा है' पर पूरा स्पष्टीकरण सही से नहीं दिया गया है। और जो भी हल्का फुल्का उददेश्य बताया गया है वो ये है कि मनुष्य को मोक्ष की दिशा में जाना चाहिए। और मोक्ष का अर्थ ये बताया जाता है कि इस संसार से मुक्ति अर्थात संसार में जन्म, जीवन और मरण से मुक्ति। अब आप ही बताईये कि इस संसार में जन्म लेने से पहले तो इस संसार से बहार ही रहे होंगे ना अर्थात संसार से मुक्त ही रहे होंगे। यदि संसार से मुक्ति ही उददेश्य होता इस जीवन का, तो जन्म से पहले सब मुक्त ही थे, तो फिर इस संसार को उत्पन्न करने की आवश्यकता ही क्या थी? उदाहरण के लिए यदि आप अपने घर में रह रहे हैं और आप कहीं और दूसरे स्थान पर जाने का निर्णय करते हैं, और वहां आपसे कोई पूछे कि मित्र आप दूसरे स्थान पर क्यों जा रहे हैं, तो क्या आप ये जबाब देंगे कि मित्र मैं वहां इसलिए जा रहा हूं ताकि वहां जाकर मैं यहां अपने घर वापिस आ सकूं? ताकि उस दूसरे स्थान से मुक्त हो सकुं! आपके इस उत्तर से आपका मित्र ये ही बोलेगा ना कि मित्र ये तो अनावश्यक है। आप तो पहले से ही यहां हैं। आप तो पहले से ही उस दूसरे स्थान से मुक्त ही हैं। तो फिर ये सब उठापटक क्यों? अब वर्तमान दर्शन इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देते। दे भी नहीं सकते क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर हो भी क्या सकता है ? अब यदि विभिन्न दार्शनिकों से जिन्हें आप बहुत सारे नामों से जानते हैं जोकि विभिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व करते हैं। और मैं इन सब धर्मों को भी दर्शन ही कह रहा हूं। दर्शन का अर्थ उपर मैं बता चुका हूं कि जीवन के वो सिद्धांत जिनके अनुसार हम सब जीवन को जीते हैं या उससे जीवन के दिशानिर्देश लेते हैं उसे ही दर्शन कह रहा

हूं। मेरी समझ में जिसे आज धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र कहते हैं ये भी एक दर्शन ही है या ये भी एक धर्म ही है जिसे आप लोकधर्म के नाम से कह सकते हैं। देश का संविधान भी एक दर्शन ही होता है, एक धर्म ही होता है। धर्म का अर्थ ही होता है धारण करने योग्य। और संविधान भी तो यही कहता है कि इसके अंतर्गत रहने वाले लोगों को क्या धारण करना चाहिए और क्या नहीं अर्थात क्या धर्म है और क्या अधर्म है। और पूरे संसार की स्थिति को देखकर ये कहा जा सकता है कि अभी वो धर्म या वो दर्शन आया ही नहीं है जोकि सबके जीवन के उददेश्यों की पूर्ति कर सकता हो। इसप्रकार से हमारे जीवन में हम दर्शन की महत्ता को समझ सकते हैं। और ये जो कहा जाता है कि सभी धर्मों को समभाव से देखना चाहिए। व्यवहारिक रूप से ये सम्भव नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति तो किसी ना किसी धर्म को विशेष मानता होगा ना, तभी तो वो उस एक धर्म को चुनता है। तो जब कोई किसी एक धर्म को विशेष करके देखेगा या जीयेगा तो बाकि के धर्मों को तो वो दूसरी श्रेणी में ही रखेगा ना? नहीं तो कैसे किसी एक धर्म को चुनेगा? उदाहरण के लिए आप सब्जी मंडी जाते हैं कोई सब्जी खरीदने। और वहां एक ही सब्जी की कई वैराइटी आप देखते हैं, फिर उनमें से आप कोई एक सब्जी अपनी पसंद के आधार से खरीदते हैं। अब आप ही बताइये कि आप सारी वैराइटी समभाव से कैसे देख सकते हैं? समभाव से देखने का अर्थ तो ये होगा ना कि आपकी समझ में सारी वैराइटी एक ही जैसी हों और आप कह दे सब्जी बेचने वाले को कि भाई कोई सी भी वैराइटी दे दो, सब तो एक जैसी ही हैं। और आप सभी जानते है कि व्यवहारिकता में ऐसा होता नहीं। तो फिर धर्म के मामले में भी कैसे हो जायेगा? यानि आप 16 कैरेट सोने को 24 कैरेट सोने वाले मूल्य पर नहीं खरीद सकोगे। अर्थात जब धर्म अनेक हैं तो उनका दर्शन भी अनेक ही होगा ना, नहीं तो अनेक बोलने का अर्थ ही क्या है? सबकी अपनी अपनी पसंद है और सब अपने हिसाब से अलग अलग मान देते हैं, किसी एक धर्म को अपनाते हैं। लेकिन कई बार ये विभिन्न प्रकार के धर्म एक दूसरे के रास्तें में हानि बनकर आ जाते हैं और एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं जैसा कि आप सब देख भी रहे हैं। अब ऐसी अवस्था में सर्वधर्म समभाव कैसे सम्भव है? तो एक ही समाधान है और

वो है एक ऐसा दर्शन जोकि अपने आप में पूर्ण हो और वो सब उपलब्ध कराता हो सबको, जोकि सब लोग मूलरूप से चाहते हैं अपने सम्पूर्ण जीवन में। उसके बाद इन अनेक दर्शनों की आवश्यकता नहीं रहेगी और अनेक दर्शनों की समस्या भी पैदा होनी बंद हो जायेगी। ना फिर ये भय होगा कि दूसरे धर्म के लोग संख्या में अधिक हो जायेंगे तो ये हमें जीने नहीं देंगे या हम अपनी संख्या बढ़ा लें ताकि ऐसी अवस्था में उनसे लड़ सकें और जीत सकें आदि आदि। दर्शन को भय या लोभ पर आधारित नहीं होना चाहिए। अभी आप देखेंगे कि संसार के लगभग सभी दर्शन स्वर्ग आदि के लोभ पर और नरक आदि के भय पर ही आधारित हैं। जबकि दर्शन को सत्य, प्रेम, न्याय और पुण्य पर आधारित होना चाहिए। या एक शब्द में बोलें तो सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति सबको हो सके, ऐसा कोई दर्शन होना चाहिए। सही दर्शन के होने से सही प्रकार के अहंकारों का यानिकि व्यक्तित्वों का निर्माण होता है। इसलिए हम समझ सकते हैं कि व्यक्तित्वों के निर्माण में दर्शन का सबसे अधिक महत्व है। दर्शन का अर्थ ही होता है, उददेश्य के अनुसार दिशा। अब जबकि उददेश्य एक ही है तो दर्शन अनेक कैसे हो सकते हैं? दर्शन भी एक ही होना चाहिए। जबतक दर्शन अनेक होंगे तो इसका अर्थ होगा कि उसके मानने वाले उन दर्शनों के अनुसार गति कर रहे होंगे। और उन दर्शनों की दिशा अलग अलग है तो इससे क्या होगा? इससे ये होगा कि इन लोगों में कभी भी सहयोग नहीं हो सकेगा क्योंकि सब अपने अपने उददेश्य के अनुसार गति करना चाहेंगे जोकि अलग अलग है। तो सहयोग वाली संस्कृति या सभ्यता कभी आ ही नहीं पायेगी और सभी कभी भी सुखी नहीं हो पायेंगे। इसलिए जबतक दर्शन अनेक हैं तो समझना चाहिए कि सही दर्शन अभी हमारे सम्मुख आया ही नहीं है। जिस दिन वो दर्शन आ जायेगा सभी लोग उसे सहज ही स्वीकार कर लेंगे।

इस सामान्य शिक्षा को प्राप्त करके चार प्रकार के व्यक्तित्व निकलकर आयेंगे। वे जिनके नम्बर 00 से 25 प्रतिशत तक आयेंगे, शरीरावस्था(PQ) की क्षमता वाले कहलायेंगे। वे जिनके नम्बर 25 प्रतिशत से ज्यादा और 50 प्रतिशत तक आयेंगे, मानसिक अवस्था(IQ) की क्षमता वाले कहलायेंगे। वे जिनके नम्बर 50 प्रतिशत से ज्यादा और 75 प्रतिशत तक आयेंगे, भावनावस्था

(EQ) की क्षमता वाले कहलायेंगे। वे जिनके नम्बर 75 प्रतिशत से ज्यादा और 100 प्रतिशत तक आयेंगे, चेतनावस्था(CQ) की क्षमता वाले कहलायेंगे।

भाषा का प्रारूप

कोई भी एक भाषा जोकि पूरी तरह तर्कसंगत होगी उसे भाषा के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए। भाषा का तर्कसंगत होना इसलिए अनिवार्य है क्योंकि भाषा के आधार से ही मनुष्य का मन विकसित होता है। जैसी भाषा होगी वैसा ही मन विकसित होगा। भाषा ही आगे की शिक्षा और प्रशिक्षण का आधार होती है। इसलिए मन को पूर्णतः तर्कसंगत बनाने के लिए भाषा का तर्कसंगत होना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी भाषा में जैसे PUT पुट होता है लेकिन BUT बट होता है बुट नहीं होता। तो यह अतार्किकता है। किसी भी स्वर या व्यंजन का उच्चारण सभी जगह एक जैसा ही होना चाहिए। इसी प्रकार भाषा के व्याकरण में भी पूरी तार्किकता होनी चाहिए। ऐसा नहीं है कि कोई कहीं कार्य करेगा और कहीं नहीं जबकि वहां सबकुछ पहले जैसा ही है। कोई अक्षर कहीं लिखा तो जायेगा परंतु बोलने में नहीं आयेगा आदि आदि। नहीं तो हम बच्चों में तार्किक मन पैदा नहीं कर पायेंगे। जिसके कारण बच्चे किसी भी विषय पर पूरी तार्किकता से चिंतन मनन नहीं कर पायेंगे। और यदि सही से चिंतन मनन ही नहीं कर पायेंगे तो फिर किसी विषय का निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है। अधिकतर लोग अनिर्णय की स्थिति में जीवन जीने को बाध्य हो जाते हैं। तो भाषा पूरे जीवन के लिए आधार है, यदि इसमें कुछ कमी रह जायेगी तो वो उसके सारे जीवन को गलत ढंग प्रभावित करती रहेगी। आदमी प्रत्येक स्थान पर अपने आप को सीमित और मजबूर अनुभव करेगा। इसके कारण वो बहुत सारे ऐसे दुखों को जीने के लिए बाध्य होगा जिनसे कि वो महज भाषा सही होने से बच सकता था। हां यदि चाहे तो एक कोई एच्छिक भाषा भी आप ले सकते हैं जबतक कि आवश्यकता हो। यदि और भाषाएं आप पढ़ना चाहते हैं तो आप अलग से भी पढ़ सकते हैं। लेकिन कोई एक भाषा पूरे संसार में सामान्यरूप से होनी चाहिए जोकि शुद्धता में सबसे श्रेष्ठ हो। जब भाषा एक ही होगी, तभी एक व्यक्ति जो भी कहेगा तो दूसरे व्यक्ति भी वही समझेंगे। अधिक भाषाएं होने से बहुत बड़ी परेशानी होती है लोगों के बीच। एक कुछ

कह रहा होता है और दूसरे लोग अपने अपने हिसाब से समझ रहे होते हैं और उसी विभिन्न समझों के आधार से उत्तर दे रहे होते हैं। यनिकि आपस में अभिव्यक्ति का सही से आदान प्रदान ही नहीं हो पाता, जोकि भाषा का एक मुख्य कार्य है, भाषा का उददेश्य है। और कई बार ये विभिन्न भाषाएं भयंकर युद्धों का कारण तक बन जाती हैं, क्योंकि किसी ने कहा कुछ होता है और दूसरी तरफ से समझा कुछ और ही जाता है। और इस तरह से बहुत सारे भ्रम पैदा होते रहते हैं समाज में। तो भाषा का कार्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए ही होता है और उसे उसी प्रकार देखना चाहिए। मात्री भाषा या पड़ोसी भाषा के रूप में नहीं। सही और एक भाषा होने से अभिव्यक्ति के आदान प्रदान में किसी भी प्रकार का भ्रम या अवरोध पैदा नहीं होगा और आदान प्रदान में सरलता और तेजी भी आयेगी। एक जो बोलेगा सब वही समझेंगे। और ये सब पूरे विश्व में हो सकता है। संसार के एक कोने में जो बोला जायेगा तो सारे विश्व में वही समझा जायेगा। इस कारण से भाषा एक ही जैसी सबको मिलनी चाहिए। इससे श्रम में कमी आयेगी। विभिन्न भाषाएं होने से सभी ज्ञान विज्ञान को, सभी साहित्य को, सभी चल चित्रों आदि को कई बार अनुवादित करना पड़ता है। एक ही भाषा होने से ये बार बार अनुवाद करने की आवश्यकता समाप्त हो जायेगी। इसी प्रकार और बहुत सारे कार्य हैं जोकि हमें गलत व्यवस्था के चलते करने पड़ते हैं। और सही व्यवस्था में करने की कोई आवश्कता नहीं रह जायेगी। तो इससे हमारे पास अतिरिक्त समय बचेगा जिसमें या तो और सृजन कर सकते हैं या अपने परिवार के लिए अधिक समय निकाल कर पारिवारिक सुख प्राप्त करते रह सकते हैं।

भावनाओं का प्रयोग केवल जीवित प्राणियों के बीच संबंधानुसार ही होना चाहिए नाकि किसी भाषा आदि के साथ। भावनाओं का प्रयोग वहां किया जाना चाहिए जहां कि भावनाओं को ग्रहण करने की योग्यता हो जोकि केवल चेतन में ही होती है, अचेतन में नहीं। भाषा एक काल्पनिक अचेतन रूप है। भाषा कोई जीव जंतुओं की तरह चेतन नहीं है कि वो आपकी भावनाओं को समझ सके। बल्कि भाषा अपने आप में एक माध्यम है अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का, वो भी उनके लिए जोकि उसे समझ सकें या

ग्रहण करने की क्षमता रखते हों। तो ये मेरी मात्र भाषा है और ये तेरी मात्र भाषा है, ऐसा बोलकर अनावश्यक ही सभी भाषाओं को बनाये रखने का नासमझ प्रयास नहीं करना चाहिए। पूरे संसार को कोई ऐसी भाषा का चुनाव करना चाहिए वर्तमान भाषाओं में से जोकि भाषा के अधितम मापदण्डों को पूरा करती हो और उसकी बची हुई कमियों को भी सही करके धीरे धीरे उसे शिक्षा के माध्यम से पूरे संसार में फैला देना चाहिए, इसमें सभी का सहमती भी लेनी चाहिए। ऐसा करने से हम उन सारी समस्याओं से बच सकेंगे जोकि विभिन्न भाषाओं के चलते होती हैं। नयी व्यवस्था आने पर इस ओर तुरंत कार्य किया जायेगा।

गणित का प्रारूप

गणित के द्वारा बुद्धि का विकास होता है। गणित में सदैव ही हम कोई ना कोई निर्णय ही कर रहे होते हैं। इसप्रकार गणित तो होता ही तार्किक है उसमें तो अतार्किकता हो ही नहीं सकती, नहीं तो हमारी सारी गणनाएं गड़बड़ा जायेंगी। हमारे सारे लेन देन असंभव हो जायेंगे। लड़ाईयों की संख्या और अधिक हो जायेगी हमारे जीवन में। गणित में लोग ऐसा कहने की कोशिश नहीं करते कि हमारा गणित और तुम्हारा गणित, हिन्दुओं का गणित और ईसाइयों का गणित जैसाकि भाषा के बारे में कहते दिखाई पड़ते हैं क्योंकि वे सब जानते हैं कि जैसे ही वे गणित के बारे में कोई अतार्किक बात करेंगे तो सबसे पहले लोग उसको ही ठग लेंगे। इसीलिए आजतक गणित को कभी भी मेरा या तेरा गणित करके नहीं देखा गया किसी भी काल में परंतु भाषा के बारे में लोग निरंतर अतार्किक और बचकानी बाते करते दिखाई पड़ेंगे सभी कालों में। भाषा को अलग अलग धर्मों के साथ जोड़ा जाता है, अलग अलग संस्कृति के साथ जोड़ा जाता है, मेरी भाषा औार तेरी भाषा के रूप में देखा जाता है, मेरी भाषा महान और तेरी भाषा महान नहीं आदि आदि। संसार में सर्वत्र भाषा, गणित, संज्ञान और दर्शन एक ही जैसे होने चाहिए तभी सबके व्यक्तित्व एक ही आधार से निर्मित होंगे जोकि कभी भी एक दूसरे के विपरीत नहीं होंगे। इसके फलस्वरूप सभी की समझ एक ही आधार से निर्मित होगी और आपसी सहयोग को पैदा करने में सहयोगी होगी। अभिव्यक्ति के आदान प्रदान में किसी भी प्रकार का भ्रम

या अवरोध पैदा नहीं होगा और आदान प्रदान में सरलता और तेजी भी आयेगी। एक जो बोलेगा सब वही समझेंगे। और ये सब पूरे विश्व में हो सकता है। संसार के एक कोने में जो बोला जायेगा तो सारे विश्व में वही समझा जायेगा। इस कारण से शिक्षा एक ही जैसी सबको मिलनी चाहिए।

संज्ञान का प्रारूप

संज्ञान से हमारा चित्त विकसित होता है। चित्त सभी सूचनाओं का भंडार गृह होता है। जिसके पास जिस प्रकार की जितनी सूचनाएं होती है उसे जीवन जीने में उतनी ही सुगमता होती है। संज्ञान विषय मूलरूप से याददास्त पर या स्मृति पर आधारित होता है। आपके आचार व्यवहार का पूरा ज्ञान संज्ञान विषय के अंतर्गत आता है। आपके जीवन में सामान्यरूप से जितने सामान्य ज्ञान की आवश्यकता होती है वह सब संज्ञान के अंतर्गत आता है। जैसे इतिहास, भूगोल, आचार–व्यवहार शास्त्र, दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाला सभी प्रकार का तकनीकि ज्ञान विज्ञान आदि का सामान्य ज्ञान। ये ऐसे ज्ञान का भण्डार होता है जोकि स्मृति पर आधारित होता है। जैसे ये मेरे पिता हैं। अब इस बात को आप ये नहीं कह सकते कि ये मेरे पिता क्यों हैं? बस हैं तो हैं और नहीं हैं तो नहीं हैं। ऐसे ही जैसे दिल्ली यहां से 200 किलोमीटर दूर है। तो आप ये नहीं कह सकते कि 200 ही क्यों 220 क्यों नहीं? अर्थात ऐसा ज्ञान जोकि तर्क प्रधान नहीं होता। ये बस याद रखना होता है। इससे आपकी स्मृति का विकास संज्ञान विषय के द्वारा होता है। और ये उपयोगिता के आधार से होना चाहिए। जिसको जिस प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता है, वो उसे सुलभ रहनी चाहिए। अनावश्यक रूप से सूचनाओं से अपने को भारी नहीं कर लेना चाहिए। तो जीवन में सबकुछ उपयोगिता परक होना चाहिए। अनावश्यक भार दुखदायी ही होता है।

दर्शन का प्रारूप

हमारे अहंकार का विकास, दर्शन विषय के द्वारा ही होता है। हमारा अहंकार यानिकि हम स्वयं किस व्यक्तित्व को प्राप्त करेंगे और किस दिशा में करेंगे ये सब दर्शन के अंतर्गत ही आता है। दर्शन विषय के अंतर्गत इन

प्रश्नों का समाधान किया जात है। जैसे ये संसार किस लिए बना है, ये संसार क्या है, हम यहां क्या कर रहे हैं, किसलिए कर रहे हैं, क्या हमारे जीने का कोई लक्ष्य है, अगर है तो क्या है, क्या हम एक दूसरे से संबंधित हैं? हमें कैसे जीना चाहिए ताकि सबके जीवन के लक्ष्य पूरे हो सके? क्या इस संसार के होने में कोई कारण है और यदि है तो क्या है? इस तरह के बहुत सारे प्रश्नों के उत्तर पूर्णतया वैज्ञानिक आधार से और तात्विक आधार से पूरे जाने जायें जोकि पूर्णतया तर्कसंगत भी हों। और ये तबतक अपग्रेड होते रहें जबतक कि ये विषय अपनी पूर्णता को नहीं उपलब्ध हो जाता।

भाषा के बिना विचार नहीं होता। गणित के बिना बोद्य नहीं होता। संज्ञान के बिना स्मृति नहीं होती और दर्शन के बिना शोध नहीं होता। शिक्षा किसी को भी बलपूर्वक नहीं दी जायेगी। विद्यालय में प्रवेश सभी का होगा। पंजिकरण सभी का होगा। प्रत्येक वर्ष वह अगली कक्षा में भी जाता रहेगा। परंतु किसी को बलपूर्वक शिक्षा नहीं दी जायेगी। शिक्षा देने के अच्छे से अच्छे सरल सहज उपाय निकाले जायेंगे। पूरी शिक्षा इस प्रकार से दी जायेगी कि किसी भी विद्यार्थी को शिक्षा लेते समय किसी प्रकार का भी कष्ट ना हो। सामान्यतः 5 वर्ष की उम्र पूरी होने के बाद 6 वां वर्ष में बच्चे का विद्यालय में पंजिकरण करके प्रथम कक्षा में प्रवेश हो सकेगा। 20 वर्ष की आयु तक प्रत्येक बच्चा सामान्य शिक्षा पूर्ण करेगा। अंत में विद्यालय के द्वारा सभी बच्चों की वरीयता निश्चित की जायेगी। तत्पश्चात् उनकी वरीयता और इच्छानुसार किसी एक विषय का आजीविका परक ज्ञान अगले 5 वर्षों तक दिया जायेगा। उसे महाविद्यालय कहा जायेगा। जिसके आधार पर सभी को एक रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा।

इसके पश्चात् शोधपरक शिक्षा के अंतर्गत केवल योग्य विद्यार्थी ही अपनी इच्छानुसार शोधानुसंधान की शिक्षा जारी रख सकेंगे। इसे विश्वविद्यालय कहा जायेगा। जोकि इनका रोजगार भी होगा। शोधपरक शिक्षा की कोई समयसीमा नहीं होगी। ये सारे शोधानुसंधान पूरे संसार के लिए समर्पित होंगे। उनपर पूरे संसार का एकसमान अधिकार होगा। संसार के लिए ये शोधानुसंधान बिना किसी शुल्क के ही प्रयोग में लाये जायेंगे।

निश्कर्ष ये हुआ कि मानव जीवन के समग्र विकास के लिए शिक्षा अनिवार्य है। शिक्षा ही हमें सही अर्थों में सामाजिक बनने में सहायता प्रदान करती है। सामाजिक होने से ही सभी प्रकार के सुखों के द्वार खुलने लगते हैं।

मनुष्य के प्रकार

मनुष्य को जन्म से ही अंतःकरण जागृतरूप में प्राप्त हो जाता है। मनुष्य जागृत अंतःकरण के कारण ही इतना विकास कर पाता है। वह कुछ भी समझने में सक्षम हो पाता है। वह प्रकृति का अध्ययन कर पाता है। उसमें से तथ्यों को निकाल पाता है। इतनी सारी खोजें कर पाता है। आज जो हम इतना विकास देख पा रहे हैं, उसका कारण ये जाग्रत अंतःकरण ही है। जिस मनुष्य का अंतःकरण जितना ज्यादा जाग्रत हो जाता है वह उतना ही हर विषय को गहराई से समझने लगता है। फिर उसी स्तर से अपने सारे कार्य कर पाता है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के अंतःकरण का विकास करना ही है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ही मनुष्य का अंतःकरण कहलाता है। जिस प्रकार पांच कर्मेंद्रिय एवं पांच ज्ञान इंद्रिय वाह्यकरण कहलाती हैं। करण यानि कि कुछ करने का साधन। जिसके द्वारा कोई कर्म सम्पन्न होता है उसे संस्कृत भाषा में करण कहते हैं। मनुष्य के अंतःकरण के चार कार्य होते हैं। मन के द्वारा चिंतन मनन करने का कार्य होता है। बुद्धि के द्वारा निर्णय करने का कार्य होता है। चित्त के द्वारा ग्रहण या स्मृति का कार्य होता है। अहंकार के द्वारा उस कार्य की इच्छा की जाती है एवं बाहय करण द्वारा उसको सम्पन्न किया जाता है। इस अहंकार को ही कर्ता, भोक्ता, दृष्टा, सृष्टा आदि नामों से जाना जाता है। मन कितना गहराई से चिंतन मनन कर पाता है, बुद्धि कितना सही निर्णय कर पाती है, चित्त कितनी जल्दी से और कितना ग्रहण कर पाता है, उसी से आपके यानि कि अहंकार के कार्य सम्पन्न होते हैं। जिससे पता चलता है कि आपका स्तर क्या है। अहंकार यानि कि आपके मैं का क्या प्रकार है यह आपके अंतःकरण के विकास पर ही निश्चित होता है। जो कोई अपने आपको केवल शरीर ही समझते हैं, तो उन्हें केवल अपने ही सुख दुख का अनुभव होता है। उनकी रूचि भी केवल शरीर से होने वाले कर्मों में ही होती है। उनकी पूरी दिनचर्या अपने आप

तक ही सीमित रहती है। तो इसका अभिप्राय ये होगा कि आप शरीरावस्था की स्थिति में है। आप अपने सुखों के लिए कुछ भी करने को सदैव तत्पर रहेंगे। जो लोग अपने परिवार के लोगों के सुख दुख ठीक उसी प्रकार अनुभव कर पाते हैं जैसेकि अपने। उनके सुख को बढ़ाने एवं दुख को दूर करने के लिए कर्म भी करते हैं। किसी विषय पर चिंतन मनन कर पाते है। निर्णय कर पाते हैं। कुछ को ग्रहण भी कर पाते हैं। कुछ सीमा तक बुद्धिमान होते हैं। तो इसका ये अभिप्राय होगा कि आप मानसिक अवस्था के हैं। आपके मैं का आकार आपके परिवार तक जा रहा है। आप अपने साथ साथ परिवार के सुखों के लिए भी कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। इसी प्रकार यदि आप पूरे समाज के सुख दुख को उसी प्रकार अनुभव कर पाते हैं जैसेकि अपना कर पाते हैं, अपने परिवार का कर पाते हैं, और फिर उनके सुखों को बढ़ाने एवं दुखों को समाप्त करने के लिए कर्म भी करते हैं। विषयों पर काफी गहराई से चिंतन मनन कर पाते है। निर्णय भी काफी सटीक निकलते हैं। ग्रहण करने में सदैव तत्पर रहते हैं। अर्थात् जैसे ही उन्हे पता चले कि हां ये सही है, ऐसा करने से समाज का सुख होगा तो वे उसे तुरंत ग्रहण करने में लग जाते हैं। सम्बंधों को बहुत महत्व देते हैं। जो बोलते हैं वो ही करते भी हैं। ये जो प्रतिज्ञा करते है उसे मृत्यु होने तक निभाने की क्षमता रखते हैं। इनका बस यही डर रहता है कि कहीं कोई गलत तरह की प्रतिज्ञा ना कर लें। इसका अभिप्राय है कि ये भावनावस्था के मनुष्य हैं। इसके मैं का आकार पूरे समाज के आकार तक जा रहा है। ये समाज के सुखों के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। इसी प्रकार जो पूरी गहराई से किसी विषय पर चिंतन मनन कर पाते हैं, उसके सारे आयाम जानकर एकदम सटीक निर्णय करते है। उस निर्णयको तुरंत ही ग्रहण करते हैं। और तुरंत ही क्रियांवयन करते हैं। समष्टि के आधार से उनके सारे कार्य होते हैं। समष्टि के सारे सुख दुख उन्हें ऐसे ही अनुभव होते हैं जैसेकि अपने सुख दुख अनुभव होते हैं, अपने परिवार के होते हैं, अपने समाज के होते हैं। खोज, अन्वेषण करने में दक्ष होते हैं, स्वभाव से ही वैज्ञानिक होते हैं। दूरदृष्टा होते हैं। निष्पक्ष होते हैं। अंतर्मुखी होते हैं। हमेशा ही सत्य, न्याय, प्रेम और पुण्य का पक्ष लेते हैं। इनका प्रत्येक कार्य समष्टि के स्तर का ही

होता है। ये आत्मावस्था के मनुष्य कहलाते हैं। सभी में अपने आपकों ही देखते हैं और अपने में सभी को देखते हैं। ज्ञान का भंडार होते हैं। विवेकशील होते हैं। प्रज्ञावान होते हैं। इनसे अनजाने में भी कदाचित ही कोई गलती होती है। उपर की चर्चा से हम समझ गये होंगे कि शिक्षा का क्या उद्देश्य होता है। इसलिए शिक्षा सभी के लिए अनिवार्यरूप से होनी चाहिए। लेकिन सहज में, बलपूर्वक नहीं। जो बच्चा सहज में अपने आप को जितना विकसित

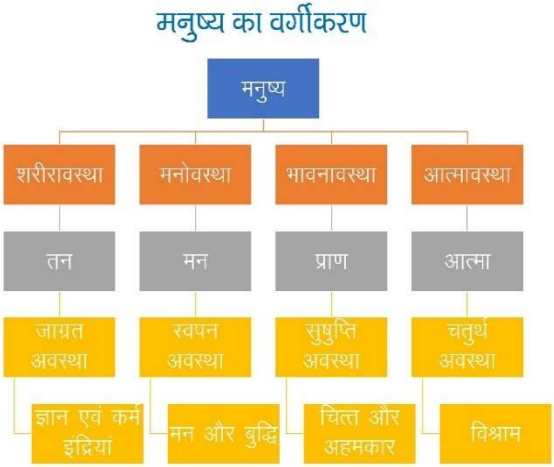

कर सकता है करे। हां हम ऐसे तरीके खोज सकते हैं कि बच्चा खेल खेल में सर्वाधिक विकसित अवस्था को प्राप्त कर जाये। जीवन का लक्ष्य सुखी होना है ना कि विकसित होना। विकसित होना केवल एक साधन हैं नाकि साध्य। केवल सुख ही साध्य है, और कुछ नहीं। इस सत्य को सदैव याद रखना चाहिए।

भाषा से मन का, गणित से बुद्धि का, संज्ञान से चित्त का और दर्शन से अहंकार का विकास होता है। शिक्षा का बस यहीं एकमेव उद्देश्य होता है। ना इससे कम और ना इससे ज्यादा। इस बात का ख्याल रखा जाये कि सारी शिक्षा सुखी सुखी होनी चाहिए, जरा भी दुखी करके नहीं। जीवन का एकमेव उद्देश्य है सदैव सुखी रहना, इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए, चाहे कार्य कुछ भी करें। हमारे किसी भी कार्य से कोई भी दुखी नहीं होना चाहिए। शिक्षा के अंतर्गत खेलों का भी बड़ा योगदान होता है। चारों

प्रकार के खेलों को भी शिक्षा के जैसा ही महत्व होगा। शारीरिक खेल, मानसिक खेल, भावनात्मक खेल और चेतनात्मक खेल ये चार प्रकार के खेल होते हैं। इनकी प्रतियोगिताएं आजीवन चलती रहेंगी। जो भी मनुष्य जिस भी खेल को खेलना चाहेंगे वो सदैव ही उन्हें प्राप्त रहेगा।

पांच वर्षीय प्रशिक्षण विधान

इस संसार में विभिन्न प्रकार के बच्चे होते हैं। जोकि बड़े होकर अपनी वरीयता के आधार पर कोई एक कर्म को अपनी रूचि से चुनते हैं। ताकि वे अपने कर्म को भली भांति समाज के लिए पूर्ण कर सकें। एक का कर्म ही औरों के लिए सुविधा के रूप में जाना जाता है या औरों के अधिकार के रूप में जाना जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई मनुष्य अध्यापक का कार्य चुनता है तो इसका अर्थ ये हुआ कि अध्यापन कार्य करना उसका कर्म हुआ और विद्यार्थियों का अधिकार हुआ या उनकी सुविधा हुई। अब यदि अध्यापक का चुनाव सही से नहीं होगा तो अध्यापन का कार्य भी सही से नहीं होगा। अर्थात् विद्यार्थियों के लिए सही से विद्या अध्ययन की सुविधा नहीं हो पायेगी, विद्यार्थियों को उनका अधिकार सही से नहीं मिल पायेगा। और कर्म देते समय उसकी रूचि का भी ध्यान रखना चाहिए नहीं तो मनुष्य कर्म को पूरी त्वरा से नहीं करेगा। जिससे कर्मफल उच्च गुणवत्ता वाला नहीं होगा। यही बात आप प्रत्येक कर्म और अधिकार या सुविधा पर लागू करके देख सकते हैं। यदि हम चाहते हैं कि हम सबको सारे सुख सुविधायें अच्छे से चाहिए तो हमें सारे कर्मों का वितरण समुचितरूप से करना होगा। अतः उचित मनुष्य बनाना और उसे जांचकर समुचित कर्म का निर्वहन करने के लिए देना ही विद्यालय का कार्य होता है। परीक्षा विद्यार्थी के आकलन के लिए ही होती है नाकि दो विद्यार्थियों के बीच तुलना करने लिए। परीक्षा ये जानने के लिए होती है कि यह विद्यार्थी किस कार्य को करने की क्षमता वाला हो गया है। और परीक्षा से यही देखना चाहिए नाकि किसी दूसरे विद्यार्थी से तुलना के लिए इसका प्रयोग करना चाहिए, ये निरर्थक है, दुख देने वाला है। हमें एक मनुष्य की तुलना दूसरे मनुष्य से कभी नहीं करनी चाहिए। सभी मनुष्य विभिन्न प्रकार के होते हैं। कोई किसी योग्य होता है और कोई किसी योग्य होता है। और विभिन्न योग्यताएं समाज को चाहिए होती हैं, नहीं तो विभिन्न

प्रकार के कर्म सम्पन्न ही नहीं हो पायेंगे और विभिन्न प्रकार की सुख सुविधायें उत्पन्न ही नहीं हो पायेंगी और हम सभी प्रकार के सुख नहीं भोग पायेंगे। इसलिए हम समझ सकते हैं कि एक पूर्ण समाज बनाने मं सभी स्तर के मनुष्य चाहिए होते हैं। सभी प्रकार के मनुष्यों की एकसमान आवश्यकता होती है। तात्विक आधार पर सभी एक हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। भेद केवल व्यक्तित्व के आधार पर होता है जोकि आवश्यक भी है विभिन्न प्रकार के कर्मों को अच्छे से पूरा करने के लिए। चार प्रकार के प्रशिक्षण होंगे।

1. कृषिक शिक्षा
2. वाणिज्यिक शिक्षा
3. प्रशासनिक शिक्षा
4. नेत्रत्व शिक्षा

परीक्षायें वार्षिकरूप से होंगी और दो प्रकार की होगी। लिखित एवं मौखिक। दोनों में ही प्रश्न पूछे जायेंगे अलग अलग प्रकार से। परीक्षाफल अंकों के रूप में होगा। जिसके जितने अंक होंगे उसी आधार पर उस विद्यार्थी का आकलन होगा। अनुत्तीर्ण किसी को नहीं किया जायेगा। शुन्य से लेकर सौ तक जितने भी अंक जिस विद्यार्थी के आयेंगे, उन अंकों के साथ ही उसे अगली कक्षा में प्रवेश दे दिया जायेगा। परीक्षा से उसकी योग्यता और गुणवत्ता की जांच प्रत्येक कक्षा में होती रहेगी। तीन प्रकार की श्रेणियां होंगी। 0 से 33 प्रतिशत तक के अंकों के लिए तृतीय श्रेणी, 33 से उपर 66 प्रतिशत तक के अंकों के लिए द्वितीय श्रेणी, 66 से उपर 100 प्रतिशत तक के अंकों के लिए प्रथम श्रेणी। इस आधार से वे क्रमशः निम्न, मध्यम और उच्च पदों पर आसीन होंगे।

शोधानुसंधान विधान

इसके अंदर शोधकार्य होंगे। विभिन्न क्षेत्रों में एवं विभिन्न विषयों में शोधकार्य होते रहेंगे। शोधकार्य करने वाले को वैज्ञानिक की उपाधि से ही जाना जायेगा। शोधानुसंधान शिक्षा को तीन भाग में रख सकते हैं। ये भी

तीन श्रेणियों में ही होंगे। जिस प्रकार आपके शरीर, मन, प्राण होते हैं। उसी प्रकार समष्टि में भी पदार्थ, प्रकृति और प्राण होते हैं। पदार्थ के ज्ञान और विज्ञान की खोज के लिए आधिभौतिक विज्ञान, प्रकृति के ज्ञान और विज्ञान की खोज के लिए आधिदैविक विज्ञान और प्राण के ज्ञान और विज्ञान की खोज के लिए आध्यात्मिक विज्ञान। आधिभौतिक शिक्षा, आधिदैविक शिक्षा एवं आध्यात्मिक शिक्षा, ये तीन प्रकार की शोधानुसंधान शिक्षा होगी है। आधिभौतिक शिक्षा के अंतर्गत चारों प्रकार की आजीविका कृषि, वाणिज्य, प्रशासन, नेत्रत्व का अध्य्यन एवं शोध कार्य आता है। आधिदैविक शिक्षा के अंतर्गत पूरी प्रकृति का अध्य्यन एवं शोध कार्य आता है। और आध्यात्मिक शिक्षा के अंतर्गत प्राण का अघ्ययन एवं शोध कार्य आता है। जो कार्य आधि भौतिक विज्ञान से सम्पन्न नहीं हो सकते वे कार्य सम्पन्न करने के लिए आधि दैविक विज्ञान का सहारा लिया जाता है। जैसेकि पर्यावरण के दोष, अग्नि कांड, ग्रह नक्षत्रों के दूषित प्रभाव, भूकंप, चक्रवात, बड़ी महामारियां, सूखा, अधिक बारिश, उल्कापिंड, सभी प्रकार के प्रदूषण आदि। प्रकृति के नियमों आदि को जानकर प्रकृति को संतुलित बनाये रखना ही इस आधिदैविक विज्ञान का मुख्य कार्य है। इसी प्रकार जो कार्य आधिदैविक विज्ञान से भी सम्पन्न नहीं किये जा सकते वे कार्य आध्यात्किम विज्ञान से सम्पन्न किये जाते हैं जैसेकि प्राणउर्जा से सम्बंधित कोई भी रोग या समष्टि में प्राणउर्जा से सम्बंधित कोई भी समस्या या आत्मिक शांति के लिए योगादि उपाय। प्राण उर्जा का विज्ञान जानकर प्राणउर्जा को अन्दर और बाहर संतुलित रखना ही इस आध्यात्मिक विज्ञान का कार्य है। ऐसा कोई कार्य इस संसार में नहीं हैं जो इन तीन विद्याओं से सम्पन्न ना हो सकता हो। इन तीनों विद्याओं में जो लोग अध्य्यन एवं शोध करेंगे और सारे जगत को संतुलित रखेंगे वे अपनी अपनी विद्या के वैज्ञानिक कहलायेंगे। साधारणतः आधिभौतिक वैज्ञानिकों का निवास स्थान एवं कार्य स्थान समाज के बीच में हुआ करेगा। आधि दैविक वैज्ञानिकों का निवास और कार्य स्थान जंगल में हुआ करेगा। किसी आवश्यकता पर ही ये जनता के बीच आया करेंगे। पूरी एकाग्रता से शोध कार्य करने के लिए इन्हें पूर्ण एकान्त की आवश्यकता होती है और इन्हें शोध भी तो प्रकृति का ही करना होता है। इसलिए समाज से

बाहर ही इनके लिए सही रहता है। सरकार के द्वारा इनकी सारी व्यवस्था वहीं पर कर दी जाया करेगी। इनका परिवार चाहे तो समाज में रह सकता है या साथ में जंगल में भी रह सकता है। आध्यात्मिक वैज्ञानिक ये पूरी पृथ्वी पर कहीं पर भी विचरण करते रह सकते हैं या कहीं पर भी निवास करते रह सकते हैं। आज यहां तो कल कहीं और। ये चलते फिरते समाधानकर्ता होते हैं। ये पूर्ण ज्ञानी होते हैं। इनका प्राण पर पूर्ण नियंत्रण होता है। इनके बारे में विस्तार से चर्चा कहीं बाद में करेंगे। केवल चेतनावस्था के लोग ही अपनी रूचि के अनुसार इन तीनों विद्याओं में प्रवेश के अधिकारी होंगे।

•••

अध्याय–08

कर्म के प्रकार

समाज में 4 प्रकार के कर्म या कर्म होते हैं– कृषि कर्म, वाणिज्यिक कर्म, प्रशासनिक या सेवा कर्म और शासनिक या नेतृत्व कर्म। वास्तव में यदि देखें कि सांस्कृतिक सुख पैदा कैसे होते हैं। यदि ये हम जान गये तो व्यवस्था बनाने की कुंजी भी हम सरलता से समझ सकेंगे। जब कोई मनुस्य किसी कर्म को सफलतापूर्वक सम्पन्न करता है तो उस कर्म से सम्बन्धित भोग का निर्माण होता है। और उस भोग के ज्ञान, निर्माण और उपभोग को ही सुख के नाम से जाना जाता है। अर्थात् यहां जितने भी कर्म सफलतापूर्वक सम्पन्न किये जाते हैं वो सभी अपने से सम्बंधित भोगों का निर्माण करते हैं। और वे भोग ज्ञान, कर्म और उपभोग के रूप में भोगे जाते हैं। उन्हें भोगकर हम, विभिन्न प्रकार के सुखों को प्राप्त करते हैं। इसप्रकार हमारे सुख, कर्मों के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने पर ही निर्भर करते हैं। इसलिए बनने वाली नयी व्यवस्था में ये ध्यान रखना होगा कि कर्मों का निर्धारण हमें इस प्रकार से करना होगा जिससे उनकी सफलता निश्चित हो सके। आप सभी ये बात जानते ही होंगे कि प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए एक निश्चित योग्यता, क्षमता, गुणवत्ता, कौशल और रूचि इन पांचों कारकों की जरूरत होती है। इन पांचों कारकों में से जिस भी कारक की कमी या अनुपस्थिति होगी, कार्य की सफलता उतनी ही अनिश्चित होती जायेगी और हो सकता है कि उस कर्म का परिणाम सुख की जगह दुख पैदा कर दे। कर्म जितना ज्यादा संवेदनशील होगा इन पांचों कारकों की मात्रा उतनी ही अधिक चाहिए होगी। यानिकि हमें पहले कर्मों का वर्गीकरण करना होगा और ये जानना होगा कि किस तरह के कर्म के लिए हमें ये पांचों कारक कितनी मात्रा में चाहिए। फिर उसी आधार से कर्मों का निर्वहन करने के लिए लोगों को देना होगा। इस बात को समझने के लिए हम एक उदाहरण का सहारा लेते हैं। यदि हम वाहन चालकों का उदाहरण लें– साईकिल, रिक्शा, मोटरसाइकिल, मोटरकार, बस, हवाई जहाज, अंतरिक्षयान आदि। अब साईकिल के चालक को देंखे कि साईकिल चलाना सिखने के लिए बहुत हल्का सा ज्ञान और

थोड़ा सा अभ्यास जरूरी है, और खतरा भी कम है। यदि साईकिल की दुर्घटना होती है तो नुकसान ना के बराबर ही होने की आशंका रहती है। आदमी को भी चोट अधिक नहीं लगती और साईकिल भी अधिक महंगी नहीं होती। रिक्शा चलाना सीखना थोड़ा ज्यादा कठिन है बजाय साईकिल के और दुर्घटना पर ज्यादा क्षति की आशंका रहेगी। इसी प्रकार मोटर साईकिल चलाना सीखना और भी ज्यादा कठिन है और दुर्घटना होने पर दोनों सवारी की मृत्यु तक हो सकती है और मोटर साईकिल भी महंगी होती है साईकिल या रिक्से से। मोटरकार सीखना और भी कठिन है और दुर्घटना होने पर पांच सवारियां तक अपनी जान से हाथ घो सकती हैं। इसप्रकार आप देख सकते हैं कि बस चलाना सीखना और भी जिम्मेवारी भरा है इसके दुर्घटना पर 60 सवारी तक मृत्यु को प्राप्त हो सकती हैं। फिर रेलगाड़ी जिसमें सैंकड़ों की संख्या में लोग हताहत हो सकते हैं। हमें इसीप्रकार सभी जिम्मेवारियों के बारे में समझ लेना चाहिए कि कौन सा कार्य कितना ज्ञानपरक और संवेदनशील है। उचित प्रकार की योग्यता, क्षमता, गुणवत्ता, कौशल और रूचि से सम्पन्न व्यक्ति को ही उस कर्म का उत्तरदायित्व देना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहिए, नहीं तो देर सवेर उसके परिणाम में दुख आ ही जायेगा। हम बच नहीं सकेंगे। कुछ लोग कहते हैं कि सब काम सभी को करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पर यहां ये समझना आवश्यक है कि स्वतंत्रता तो होनी चाहिए परंतु यदि वह आदमी पांचों कारक पूरे कर पाता हो तो, नहीं तो संसार में दुर्घटनाओं का अंबार लग जायेगा। कोई भी भोग उच्च गुणवत्ता वाला नहीं बनेगा। इससे सुख पैदा नहीं होगा बल्कि दुख पैदा होने लग जायेंगे। तो इस प्रकार का हठ नहीं करना चाहिए कि बिना सम्पूर्ण योग्यता के भी मुझे उस कर्म का सम्पादन करने को दिया जाये। ये बहुत ही हानिकारक होगा सभी के लिए। और वैसे भी हम तो अपनी रूचि का कर्म ही करना चाहेंगे। और जब हमें हमारी रूचि का ज्ञान मिल रहा है, हमारी रूचि का प्रशिक्षण मिल रहा है, सभी कर्मों का वेतन भी समान ही रहेगा, समान वेतन के प्रभाव से सभी कर्मों का मान बराबर ही हो जायेगा, तो हम कोई दूसरा कर्म करना ही क्यों चाहेंगे। बिना रूचि वाले कर्म करने में तो हम वैसे भी दुख का अनुभव ही करेंगे। तो जोभी

लोग ऐसा बोल रहे हैं कि सबको सारे कर्म करने को दिये जाने चाहिए, वो वास्तव में ऐसा इसलिए बोल रहे हैं क्योंकि वो समझते हैं कि कुछ कर्म आराम वाले, अधिक आय वाले और अधिक आय होने से अधिक सम्मान देने वाले होते हैं समाज में, और यदि सबको उन्हें करने का अवसर नहीं दिया जायेगा तो वे लोग सम्मान से वंचित रह जायेंगे, जिस कारण वे दुखी होंगे। मैं इस बारे में उन लोगों से कहना चाहता हूं कि यदि सभी कर्मों का मान एकसमान कर दिया जाये फिर ये समस्या नहीं बचती। और मान तय होता है जीवन स्तर से। जिसका जीवन स्तर कम होता है, उसका मान भी कम और जिसका जीवन स्तर अधिक उसका मान अधिक होता है। तो ये तो इस नयी व्यवस्था में समस्या होगी नहीं क्योंकि सभी कर्मों का मान समान होने से सभी का मान समान ही होगा। अब आप कह सकते हैं कि कुछ कर्म तो कम वेतन होकर भी अधिक मान वाले होते हैं। वास्तव में ऐसा नहीं है। यदि आप कुल मिलाकर देखें तो वेतन का अर्थ वो ही नहीं होता जोकि धन के रूप में आपको मिलता है बल्कि उस पद के कारण जो भी लाभ आपको मिलते हैं उन्हें भी वेतन ही समझना चाहिए। ऐसा समझने से अब हम समझ सकते हैं कि हमारा मान इस बात से तय होता है समाज में कि हम किस स्तर का जीवन प्राप्त कर पा रहे हैं। और इस नयी व्यवस्था में तो सभी का जीवन स्तर समान होगा और सर्वाधिक होगा। इससे मान सम्मान की समस्या का निराकरण हो जायेगा।

एक बात तो हो गई कि कर्मों का निर्धारण किसप्रकार से करना चाहिए। अब दूसरी बात कि इन कर्मों के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने पर जो भोग प्राप्त होंगे उनका वितरण समाज में किस प्रकार हो कि पूरे समाज तक हर वो भोग सबकी ईच्छानुसार आसानी से सभी के पास पहुंच जाये। ये जानने के लिए कि किसको किस भोग की इच्छा है या मांग है, या कौन क्या भोग चाहता है उसके लिए मैं उपर ही लिख आया हूं कि आनलाइन पोर्टल के अंतर्गत सभी अपनी इच्छानुसार भोगों की मांग कर सकेंगे और पा सकेंगे।

राश्ट्रीय आजीविका नीति

योग्यता, क्षमता, कौशल, गुणवत्ता और रूचि के अनुसार ही सभी को कोई एक आजीविका उसके कर्म के रूप में निश्चितरूप से दी जायेगी।

यदि किसी कारणवश सरकार आजीविका नहीं दे पाती है किसी को तो भी वो उसको समान जीवन स्तर देगी। बच्चों का 25 वर्ष तक पूरा खर्चा सरकार ही देगी, घर में कार्य करने वाली पत्नि या पति को भी सरकार ही समान जीवन स्तर देगी। सभी बीमार, अयोग्य और 50 वर्ष से उपर के लोगों का जीवन स्तर भी समान ही होगा। अर्थात सभी का जीवन स्तर एक समान ही होगा। यानिकि कोई भी आर्थिक रूप से एक दूसरे पर निर्भर नहीं करेगा। सीधे सरकार से ही होगा सबका आर्थिक प्रबन्धन। सभी का जीवन स्तर समान ही रहेगा।

आजीविका के प्रकार

1 कृषि

2 वाणिज्य

3 प्रशासन

4 नेत्रत्व

सभी चारों रोजगार में तीन श्रेणियां होंगी। मृदु, मध्यम और उत्तम। 33 प्रतिशत तक अंक प्राप्त करने वाले मृदु श्रेणी, 33 प्रतिशत से 66 प्रतिशत तक अंक प्राप्त करने वाले मध्यम श्रेणी और 66 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाले उत्तम श्रेणी के जाने जायेंगे। अब जैसे कृषि में लें तो मृदु श्रेणी के मनुस्य खेती करेंगे, मध्यम श्रेणी के मनुस्य उद्यान करेंगे और उत्तम श्रेणी के मनुस्य दुग्ध उत्पादन करेंगे। इसी प्रकार वाणिज्य में मृदु श्रेणी के मनुस्य सामान्य तकनीकी का कर्म करेंगे, मध्यम श्रेणी के मनुस्य मध्यम तकनीकी के कर्म करेंगे और उत्तम श्रेणी के मनुस्य उच्च तकनीकी का कार्य करेंगे। इसी प्रकार प्रशासन में भी मृदु श्रेणी के मनुस्य क्षेत्रों में जाकर कार्य करेंगे, मध्यम श्रेणी के मनुस्य लिपिक का कार्य करेंगे और उत्तम श्रेणी के मनुस्य प्रबन्धन का कार्य करेंगे। इसी प्रकार नेत्रत्व में मृदु श्रेणी के मनुस्य विधायकत्व का कार्य करेंगे, मध्यम श्रेणी के मनुस्य मंत्रीत्व का कार्य करेंगे और उत्तम श्रेणी के मनुस्य गुरुत्व का कार्य करेंगे। उदाहरण के लिए ग्राम और जिला स्तर पर विधायक स्तर के लोग नेता चुने जायेंगे। राज्य और देश स्तर पर मंत्री

स्तर के लोग नेता चुने जायेंगे और विश्व स्तर पर गुरू स्तर के लोग नेता चुने जायेंगे। रोजगार के अंतर्गत चार प्रकार के ही कर्म हैं।

1.शारीरिक योग्यता प्रधान कर्म : लोक–पोषण संबन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अन्नोत्पादन, फलोत्पादन एवं दुग्धोपालन इत्यादि कृषिकर्म।

2.मानसिक योग्यता प्रधान कर्म : लोक–समृद्धि संबन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वाणिज्यिककर्म।

3.भावनात्मक योग्यता प्रधान कर्म : लोक–सेवा संबन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यपालन अर्थात् प्रशासन, न्यायपालन अर्थात् निर्णयन, लोकपालन अर्थात् सुरक्षा, शिक्षा, चिकित्सा इत्यादि सर्वकारिक–कर्म।

4.चिदात्मक योयता प्रधान कर्म : लोक–नेतृत्व संबन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विधायन अर्थात् नियमन, व्यवस्थापन एवं गुरुत्व इत्यादि नैतिक–कर्म।

वैज्ञानिक आधार से सरकार वस्तुओं या सेवाओं का सृजन करेगी। जबतक वैज्ञानिक ये नहीं बतायेंगे कि ये वस्तु या सेवा देना सुखप्रद होगा और प्रकृति में कोई दुष्प्रभाव भी नहीं करेगा तब तक सरकार वो वस्तु या सेवा करने की अनुमति नहीं देगी। जिससे कि पर्यावरण असंतुलित ना हो।

कृषि आजीविका

कृषि आजीविका के अंतर्गत तीन प्रकार के कार्य आते हैं। अन्न उत्पादन, फलोत्पादन और दुग्धोत्पादन। कृषि आयोग इस सबका प्रबंधन करेगा।

1.वरीयता के अनुसार शारीरिक अवस्था में जिनकी मृदु श्रेणी आयेगी वे मनुस्य अन्नोत्पादन का कार्य करेंगे। जैसेकि रवि की फसलें, खरीफ की फसलें। ये फसलों से संबंधित कार्यों को करेंगे।

2.वरीयता के अनुसार शारीरिक अवस्था में जो मध्यम श्रेणी के मनुस्यहोंगे वे उद्यान का कर्म करेंगे। अर्थात् शाक, फल और फूल का उत्पादन संबंधित कार्यों को करेंगे।

3.वरीयता के अनुसार शारीरिक अवस्था में जो उत्तम श्रेणी के मनुस्य होंगे वे दुग्धोत्पादन से संबंधित कार्यों को करेंगे। दुग्ध उत्पादन

में केवल उन पशुओं या वृक्षों आदि का उपयोग होगा जिन्हें वैज्ञानिक लाभकारी बतायेंगे। उससे दुग्ध, दही, घी, लस्सी आदि का निर्माण करेंगे।

वाणिज्यिक आजीविका

वाणिज्यिक आयोग इस आजीविका के अंतर्गत सारी व्यवस्था का प्रबंधन करेगा। वरीयता के अनुसार मानसिक अवस्था में जिनकी मृदु श्रेणी आयेगी वे मनुस्य साधारण तकनीकी का कार्य करेंगे। अर्थात् जिन कर्मों में तकनीकी का प्रयोग साधारण स्तर का होगा जैसे– बढ़ई, प्लम्बर, टेलर, बिजली फिटिंग और रिपेयरिंग, साधारण मशीन का चालक, मोची, नाई, धोबी, बढ़ई, राजमिस्त्री, लोहार, सुनार, विज्ञापनकार, मरम्मत का कर्म आदि। उसी प्रकार से मध्यम स्तर का रोजगार होगा जैसे– विभिन्न प्रकार का इंजीनियरिंग का कर्म, क्वालिटि कंटरोल, सोफ्टवेअर प्रोग्रामिंग, विभिन्न प्रकार की डिजाइनिंग आदि। और उच्च स्तर के रोजगार जैसे– तकनीती के विशेष जानकार जैसे पद होंगे।

प्रशासनिक आजीविका

प्रशासनिक आजीविका या सार्वजनिक सेवा के अंतर्गत भी तीन प्रकार के कार्य आते हैं। श्रमिक, लिपिक और प्रबन्धन। प्रशासनिक आयोग इस आजीविका के अंतर्गत उनकी योग्यता और उनकी रूचि आदि के आधार पर उन्हें उनका रोजगार प्रदान करेगा।

1. वरीयता के अनुसार भावनावस्था में जिनकी मृदु श्रेणी आयेगी वे मनुस्य क्षेत्रश्रमिक के पद पर कार्य करेंगे। अर्थात् सार्वजनिक कार्यों में श्रमिकों के पदों पर उनकी योग्यता और उनकी रूचि आदि के आधार पर उन्हें कोई एक पद देगी। यहां श्रमिक का अर्थ है कि उन्हें अपने क्षेत्र में प्रस्तावित कार्यों को करना होगा।
2. वरीयता के अनुसार भावनावस्था में जो मध्यम श्रेणी के मनुस्य होंगे वे लिपिक के पद पर कार्य करेंगे। अर्थात् सार्वजनिक कार्यों में लिपिकों के पद पर उनकी योग्यता और उनकी रूचि आदि के आधार पर उन्हें कोई एक पद देगी। लिपिक का अर्थ है कि उन्हें

सारी सूचनाओं को संग्रहीत करके इसप्रकार से रखना होगा जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर वो सारी सूचनाएं प्रबंधको को उपलब्ध करा सकें। सारी सूचनाएं क्षेत्र में कार्य करने वाले श्रमिक उन्हें लाकर देंगे। एक प्रकार का डाटा मैंनेजमेंट का कार्य उनका होगा।

3. वरीयता के अनुसार भावनावस्था में जो उत्तम श्रेणी के मनुस्य होंगे वे प्रबन्धन का कार्य करेंगे। प्रबन्धकों के पद पर उनकी योग्यता और उनकी रूचि आदि के आधार पर उन्हें कोई एक पद देगी। प्रबंधक का अर्थ है कि वो अपने प्रस्तावित क्षेत्र के कार्यों के लिए उत्तरदायी होंगे कि वो कार्य हुए कि नहीं, जोकि शासन के द्वारा उनको दिये गये हैं। यदि कोई समस्या हो रही है और अपने स्तर से समाधान नहीं कर पा रहे हैं तो शासन से समाधान ले सकते हैं।

सांसदिक आजीविका

सांसदिक या नेत्रत्व या शासनिक आजीविका के अंतर्गत भी तीन प्रकार के कार्य आते हैं। अधिभौतिक नेत्रत्व, अधिदैविक नेत्रत्व और अध्यात्मिक नेत्रत्व। रोजगार आयोग इस आजीविका के अंतर्गत प्रति कर्मचारी उनकी योग्यता और उनकी रूचि आदि के आधार पर उन्हें रोजगार प्रदान करेगी।

1. वरीयता के अनुसार चेतनावस्था में जिनकी मृदु श्रेणी आयेगी वे मनुस्य अधिभौतिक नेत्रत्व के पद पर कार्य करेंगे। सम्बंधित संस्थानों के निर्देशक पदों पर होंगे, जज,

प्राचार्य, विश्वविधालय के शिक्षक आदि। अर्थात विधायक पद पर जोकि ग्राम या जिला स्तर के नेत्रत्व पद के लिए। या आधि भौतिक विज्ञान में खोज करने के लिए चुने जा सकते हैं।

2. वरीयता के अनुसार चेतनावस्था में जो मध्यम श्रेणी के मनुस्य होंगे वे अधिदैविक नेत्रत्व के पद पर कार्य करेंगे। ये राज्य या देश स्तर के नेत्रत्व पद के लिए। सम्बंधित संस्थानों के निर्देशक पदों पर होंगे, जज, प्राचार्य, विश्वविधालय के शिक्षक आदि। या आधिदैविक विज्ञान में खोज करने के लिए चुने जा सकते हैं।
3. वरीयता के अनुसार चेतनावस्था में जो उत्तम श्रेणी के मनुस्य होंगे वे आध्यात्मिक नेत्रत्व के पद पर कार्य करेंगे। सम्बंधित संस्थानों के निर्देशक पदों पर होंगे, जज, प्राचार्य, विश्वविधालय के शिक्षक आदि। ये विश्व स्तर के नेत्रत्व पद के लिए या आध्यात्मिक विज्ञान में खोज करने के लिए चुने जा सकते हैं। प्रारम्भ में मैं चार परीक्षापत्र बना दूंगा जिससे कि इन चारों प्रकार के लोगों की पहचान हो सकेगी। बाद में तो शिक्षा के उपरांत विद्यालय से ही सभी की पहचान हो जाया करेगी। लेकिन उसके बाद भी यदि किसी को लगता है कि उनका उत्थान हो गया है तो वे बाद में भी परीक्षा पास करके संबंधित आजीविका पा सकेंगे।

मान या वेतन समान क्यों?

कई लोग कहते हैं कि विभिन्न रोजगार का वेतन अलग अलग होना चाहिए क्योंकि सभी में अलग प्रकार का श्रम होता है। मोटे तौर से ये बात सही प्रतीत होती है। परंतु जीवन के उददेश्य की प्राप्ति नहीं कराती वरन उसमें अवरोधक बनती है। आओ समझे कि कैसे अवरोधक बनती है ये नीति?

यदि हम वेतनमान समान नहीं रखते हैं, तो इसमें समस्या ये होगी कि जो भी वस्तुएं या सेवाएं अधिक वेतनभोगी लोगों के द्वारा निर्मित की जायेंगी वो स्वभावतः अधिक मुल्य वाली होंगी। और अधिक मुल्य की होने कारण कम आय वाले लोग इनको प्राप्त नहीं कर सकेंगे। यानिकि समाज का एक बड़ा वर्ग अधिक मूल्य वाली वस्तुओं या सेवाओं का उपभोग नहीं कर सकेगा, ये वर्ग इनके सुख से वंचित रहेगा। तो फिर कम वेतन वाले लोग कोई ना कोई तरीका खोजेंगे महंगे भोगों को प्राप्त करने का, क्योंकि वो भी उनका सुख प्राप्त करना चाहेंगे। अब समाज में तो दो ही प्रकार होते है सभी सुख प्राप्त करने के, एक तो संविधान के अनुसार और दूसरा संविधान के विपरीत। और संविधान तो हमने बना दिया कि कम आय वाले अधिक मूल्य के सामान का उपभोग कर नहीं पायेंगे अपनी आय के द्वारा। तो दूसरा उपाय ही बचता है और वो है विभिन्न प्रकार के अपराधों का मार्ग। इस प्रकार भ्रष्टाचार और सभी प्रकार के अपराधों के लिए कारण पैदा हो जायेंगे। जिसे बल का प्रयोग करके कुछ कम तो किया जा सकता है पर समाप्त नहीं किया जा सकेगा और इस बल प्रयोग के भी अपने प्रभाव होंगे जोकि समाज में अशान्ति को, अस्थिरता, आतंकवाद आदि को ही पैदा करेंगे। इससे सभी समय सभी लोग कलह और अशांति में ही जी रहे होंगे। और ऐसे वातावरण में हम प्राप्त वस्तुओं का भी उपभोग सही से कर नहीं पाते। प्रशासन भी अपना समय, श्रम और धन इसी सब अशांति, कलह आदि को ही व्यवस्थित करने में लगा रहता है। इससे हम समझ सकते हैं कि समाज में आर्थिक समानता कितनी आवश्यक है। आर्थिक समानता ना होने के कारण बाकि दूसरी समानताएं भी वास्तविक धरातल पर समान नहीं हो पायेंगी। पर सभी मनुष्य तो सारे भोग चाहते हैं। वो फिर चोरी, डकैती, चालबाजियां, अपहरण, भ्रष्टाचार, ईर्ष्या, वैमनस्य, हिंसा, क्रोध, लोभ, मोह, प्रतिद्वंदिता और भी सारी समस्याएं जोकि अभी आप अनुभव कर रहे हैं, वो सब होने लगेंगी। इससे हम समझ सकते हैं कि वेतनमान का समान होना कितना अनिवार्य है। वेतन समान किये बिना दुनिया की कोई व्यवस्था न्याय नहीं कर पायेगी और बिना न्याय के सारी भौतिक और आध्यात्मिक समस्याएं पैदा होने लगेंगी जैसे कि अभी तक आप

देख रहे हैं। और जब सबका वेतन समान ही करना है तो फिर वेतन रखने की आवश्यकता ही नहीं। बस सारे श्रम का मान बराबर होगा। अर्थात जिसको जो भी चाहिए वो मिल जायेगा। इससे सभी का जीवन समानरूप से समृद्धि को प्राप्त रहेगा।

भौतिक और आध्यात्मिक समस्याओं का कारण कौन?

आपको आश्चर्य होगा ये सुनकर कि आर्थिक असमानता ही आध्यात्मिक समास्याओं का भी कारण हैं। अभी लोग ऐसा समझते हैं कि भौतिक समस्याएं और आध्यात्मिक समस्याएं अलग अलग हैं और अलग अलग कारणों से पैदा होती हैं। पर ऐसा नहीं हैं। मूल कारण एक ही है और वो है समाज के धरातल पर आर्थिक असमानता। अध्यात्मिक समस्या ये ही तो है ना कि हमारे अंदर अशांति हो जाती है। हम अपने आपको बंधन में अनुभव करने लगते हैं। स्वतंत्रता अनुभव नहीं होती जीवन में। हीनता का अनुभव करते है। अनावश्यक विचार श्रंखला चलने लगती है और यदि निरंतर चलती है तो शीध्र ही अनियंत्रित भी होने लगती है। हम चिड़चिड़ाने लगते हैं। बात बात पर क्रोध करने लगते हैं। कोई भी कर्म ठीक से संपादित नहीं कर पाते। फिर बड़बड़ाने लगते हैं। हमारा नियंत्रण अपने उपर से खोने लगता है। भविष्य की चिंता से ग्रस्त रहने लगते हैं। और ऐसा लग रहा होता है कि जैसे भविष्य में ही जीवन जी रहे हैं। या भूतकाल में ही जी रहे हैं। वर्तमान में जी ही नहीं पाते। परिवार के लिए समय नहीं निकाल पाते। सभी से खराब व्यवहार करने लगते हैं। जीवन अस्त व्यस्त सा होने लगता है। और कई लोग तो पागल ही हो जाते हैं। वो या तो आत्महत्या कर लेते हैं या पागलखाने में डाल दिये जाते हैं। हम स्वयं दुखी रहते हैं और सभी हमसे दुखी होते रहते हैं। और यहीं अवस्था निरंतर बनी रहती है जीवन में। कभी कभार कोई सुख के क्षण आते हैं जीवन में। यहीं तो है हमारी आध्यात्मिक समस्या, या कि कुछ और है? लेकिन थोड़ा सा विचार करें तो पता चलेगा कि अंदर अशांति तभी होती है जबकि बाहर हमारी ईच्छा के विपरीत हो रहा होता है। और बाहर अशांति का कारण आप सभी जानते ही हो कि बाहर जबतक भय का वातावरण रहेगा तबतक हमारे अंदर भय और अशांति रहेगी

ही। और बाहर भय का वातावरण, असमान व्यवस्था के कारण ही पैदा होता है, ये हम उपर चर्चा में समझ चुके हैं। जब सबकी इच्छाएं पूरी नहीं होती तो हम सब येन केन प्रकारेण एक दूसरे से छीनकर, झपटकर उन इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करते हैं जिसमें कभी कोई कामयाब हो जाता है और अधिकांश तो असफल होते हैं। जो सफल हो भी जाता है, तो उसे भी भय रहता है कि छीन तो लाया पर कहीं कोई मुझसे ना छीनने आ जाये। क्योंकि जो छीनने में सफल नहीं हुए वो फिर से प्रयास करते हैं, जिससे कि निरंतर समाज में भय का वातावरण बना रहता है जिससे हमारे अंदर भय बना रहता है और भय के कारण अशांति बनी रहती है। और ये ही जीवन का स्वभाव है, ऐसा हमें लगने लगता है। बाहर विभिन्न धर्मों के साधू सन्यासियों से हम सुनते भी रहते है कि ये संसार तो दुखों का घर ही है, ये तो सराय है, ये तो अपना घर नहीं है, अपना घर तो दूर कहीं बादलों के पार, कहीं सात समुंदर पार स्वर्ग में है कि बैकुण्ठ में है आदि। फिर हम सब अपने बच्चों को भी इसप्रकार ही संस्कारित करने का प्रयास पूरे जीवन भर करते रहते हैं और उनके बचपन के सुखों का भी नाश कर बैठते हैं। अपने सारे धर्म भी इसप्रकार के दुषित अनुभवों के आधार से बना लेते हैं, वैसी ही दुषित शिक्षा बना लेते हैं। फिर ये बच्चे बड़ें होकर ऐसी शिक्षा और ऐसे धर्मों को पाकर नासूर बन जाते हैं जिन्हें हम आतंकवादी कहने लगते हैं और अपने श्रम का एक बड़ा हिस्सा इनसे लड़ने में अथवा इनसे अपनी सुरक्षा करने में खर्च करने लगते हैं। इसप्रकार से ही कई कुचक्र हमारे जीवन में चलते रहते हैं जिनके कारण हम अपने अंदर भय और अशांति का निरंतर अनुभव करते रहते हैं जिसका परिणाम ये होता है कि हम सदैव दुखी बने रहते हैं और ऐसा लगता है कि हम सबतरफ से बंधन में हैं। इसीलिए हम इस संसार से मुक्ति या मोक्ष की ऐसी कल्पना करने लगते हैं जिसका कि वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं है। जब बाहर समस्याएं रहेंगी तो आदमी के अंदर कैसे सुख शांति रहेगी? कैसे वो दूसरों से ईर्ष्या नहीं करेगा? कैसे उनपर क्रोध नहीं करेगा? कैसे दूसरों के साथ हिंसा नहीं करेगा? कैसे एक दूसरे के लिए भय पैदा नहीं करेगा? कैसे एक दूसरे के साथ प्रतिद्वंदिता नहीं करेगा? कैसे भविष्य की चिंताएं नहीं करेगा? कैसे एक दूसरे के लिए

कांटे नहीं बोयेगा? कैसे हत्याएं नहीं करेगा? कैसे बलात्कार नहीं करेगा? कैसे असत्य नहीं बोलेगा? कैसे अच्छा व्यवहार करेगा? और कुलमिलाकर कैसे सुख और शांति से जीयेगा, और जीने देगा? जोकि वो जीना चाहता है। तो केवल किसी संविधान में न्याय शब्द लिख देने से न्याय नहीं हो जाता। न्याय के लिए वो सारे प्रावध ाान भी जरूरी होते हैं जिनसे कि ये न्याय धरातल पर उतर सके। जिससे कि न्याय वास्तविकता बन सके। चांद पर सभी जाना चाहते हैं पर क्या बिना किसी उपाय के कोई चांद पर पहुंच सकते हैं? हम सभी जानते हैं कि ये सम्भव नहीं है। तो संविधान में न्याय की केवल प्रस्तावना भर लिख देने से न्याय नहीं हो जाता। उसके लिए सारे प्रावधान करने होंगे जोकि न्याय को ध ारातल पर अभिव्यक्त कर सके। न्याय के लिए जिन नीतियों की आवश्यकता होती है यदि वो होंगी तो ही ये न्याय सम्भव हो सकेगा। न्याय कहो चाहे समानता कहो एक ही बात है। तो आर्थिक समानता या आर्थिक न्याय ही मूल है बाकि और समानताओं के लिए भी। यदि हम समाज में आर्थिक समानता नहीं लाते हैं तो फिर दूसरा कोई उपाय मुझे नहीं दिखाई देता जिससे कि बाकि सारी समानताएं आ सकेंगी। इसलिए आर्थिक समानता के बिना कोई उपाय नहीं है सबको उनकी इच्छा के भोग देने का। यदि किसी के पास कोई और अच्छे उपाय हैं तो वो कृपया हम लोगों को सूचित करें। हम सब लोग जोकि इस उददेश्य के लिए कार्य कर रहे हैं तो वो सब आपके साथ होंगे। और यदि ये ही उपाय है तो फिर विलम्ब ना करें। शीघ्रता से हमारे साथ जुड़ें और इस व्यवस्था को इस संसार में लाने में अपनी क्षमतानुसार सहयोग करें। हम आपकी प्रतिक्षा में हैं।

•••

अध्याय–09

सरकार, शासन या नेत्रत्व के गठन की प्रक्रिया

सरकार का गठन एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम है। सरकार में सबसे महत्वपूर्ण और सबसे पहला कदम है, एक सही नेत्रत्व की स्थापना करना। अर्थात नेताओं का चयन किस प्रकार हो। सरकार का गठन किस प्रक्रिया के तहत होता है, इसपर ही आगे की सारी व्यवस्था निर्भर करती है। सरकार का गठन इसप्रकार से होना चाहिए, जिससे नियंत्रण तो जनता के पास रहे और नेत्रत्व चुने हुए नेताओं के पास रहे। ऐसा होने पर किसी भी नेता के निरंकुश होने की सम्भावना समाप्त हो जायेगी और नेत्रत्व भी उचितरूप से हो सकेगा। इसप्रकार हमें दोनों लाभ एकसाथ मिल जायेंगे। नेत्रत्व भी उच्चकोटि का मिलेगा और नियंत्रण जनता के पास सदैव रहेगा। ऐसा नहीं कि केवल 5 वर्ष में एक बार, बल्कि सदैव नियंत्रण जनता के पास ही रहेगा। जनता किसी भी समय किसी भी नेता को या उनकी किसी भी नीति नियम को बनवा या हटवा सकती है एक प्रक्रिया द्वारा। और सरकार या सरकार का कोई भी नेता कुछ भी निर्णय करेंगे तो उसकी पूरी प्रक्रिया इंटरनेट पर पड़ी होगी। जनता जब चाहे उसे देख सकेगी और उसके बारे में अंतिम निर्णय ले सकेगी। इस व्यवस्था में एक ऐसा लाइव प्लेटफार्म होगा जहां कोई भी नागरिक अपनी बात जनता तक सीधे कह सकेगा यदि उसके पास कोई ऐसे तथ्य हैं जिनसे या तो व्यवस्था में और सुधार हो जायेगा या कोई नेता अपना कर्म सही से नहीं कर रहा है आदि। यदि कोई व्यक्ति अपने आधार से कुछ ऐसा खोज लेता है जोकि संसार के लिए लाभदायक है तो उसे भी वो उस लाइव प्लेटफार्म में सरकार को या लोगों को सूचित कर सकेगा। वो प्लेटफार्म जनता के लिए ही होगा। जनता उस प्लेटफार्म का संसार के लाभ के लिए कोई भी उपयोग कर सकेगी।

एक मुख्य चुनाव आयोग होगा जो सरकार के गठन की प्रक्रिया को पूर्ण करेगा। इस व्यवस्था में दलों का कोई अस्तित्व नहीं होगाा। ग्राम स्तर पर चेतनात्मक लोग चुनाव के लिए अधिकृत हो सकेंगे। प्रत्येक क्षेत्र में केवल

10 अधिक योग्य आवेदकों को ही चुनाव में उतारा जायेगा। जिनमें से जनता 5 नेताओं का चुनाव करेगी। उदाहरण के लिए 200,000 तक की जनता के लिए 10 में से 5 नेताओं का अर्थात् एक ग्राम के लिए 5 नेताओं का चयन होगा। लगभग 40,000 आवासों वाले सभी सुविधाओं से सम्पन्न एक क्षेत्र को ग्राम की संज्ञा दी जायेगी। और धीरे–धीरे पूरे भारत में इसी प्रकार के ग्राम स्थापित किये जायेंगे। सभी क्षेत्रों में एकजैसी ही सुविधाएं एवं संरक्षण होगा। 20 ग्रामों को मिलाकर 1 जिला माना जायेगा। इसीप्रकार 20 जिलों को मिलाकर एक राज्य माना जायेगा। और 20 राज्यों को मिलाकर एक देश माना जायेगा। और ऐसे सभी देशों को मिलाकर एक विश्व माना जायेगा। केवल ग्राम स्तर के नेता जनता द्वारा चुने जायेंगे। फिर इन चुने हुए नेताओं के द्वारा जिला स्तर के 5 नेताओं को चुना जायेगा। फिर जिला स्तर के नेताओं के द्वारा राज्य स्तर के 5 नेताओं को चुना जायेगा। और इसी तरह राज्य स्तर के नेताओं द्वारा देश के 5 नेताओं को चुना जायेंगा। और अंत में इसी प्रकार सारे देश के नेता मिलकर विश्व के लिए 5 नेताओं को चुनेंगे या प्रत्येक देश से एक नेता विश्व सरकार के लिए चुना जा सकता है। हर स्तर

पर 5 में से 1 मुख्य और 4 सहायक नेता होंगे। यदि भविष्य में किसी नेता के कार्य से 10 प्रतिशत लोग संतुष्ट नहीं हो रहे हों तो उस नेता को पुनः चुनाव प्रक्रिया में जाना होगा। और यदि 50 प्रतिशत से कम वोट रहते हैं तो वो अपदस्थ हो जायेगा। सामान्यतः सभी नेताओं का कार्यकाल 5 वर्ष का ही होगा। इस प्रकार करने से नेताओं का चुनाव नीचे से उपर की ओर होगा और व्यवस्था उपर से नीचे की ओर होगी। अंतिम नियंत्रण सदैव जनता के पास ही बना रहेगा। चुनाव नीचे से उपर की ओर होगा और व्यवस्था उपर

से नीचे की ओर होगी। अर्थात मुख्य संविधान विश्व स्तर के नेताओं द्वारा लिखा या संशोधित किया जायेगा। जिसके अनुसार सभी स्तरों पर व्यवस्था होगी। विश्व सरकार अपने स्तर के कार्यों को करेगी एवं देशों की सरकारां को आवश्यक दिशानिर्देश देती रहेगी आवश्यकतानुसार और उनके कार्यों का निरीक्षण करती रहेगी। देश सरकार अपने कार्यों के साथ साथ राज्य सरकारों को दिशानिर्देश देगी और उनके कार्यां का निरीक्षण करेगी। इसी प्रकार ग्राम सरकार तक चलेगा। तो चुनाव नीचे से उपर और शासन उपर से नीचे होगा। इससे सदैव ही शक्ति का संतुलन बना रहेगा। वैसे तो चेतनात्मक स्तर के लोग निरंकुश नहीं होते परंतु फिर भी जितने अधिक उपाय किये जा सकते हैं उतने करने चाहिए। ग्राम स्तर के नेताओं के चुनाव की प्रक्रिया नीचे लिखे अनुसार होनी
चाहिए।

पात्रता

केवल चेतनावस्था के लोगों को ही इस पद का उम्मीदवार बनाया जाना चाहिए।

चयन की प्रक्रिया

एक ग्राम से सभी प्राप्त योग्य आवेदनों में से 10 अधिक वरीय लोगों को नेत्रत्व आयोग के द्वारा चुना जायेगा। फिर जनता अपना मत डालकर उनमें से 5 नेताओं को चुनेगी। जोकि अपने में से एक मुख्य नेता का चुनाव कर लेंगे। चुनाव का सारा खर्च सरकारी ही होगा। नेत्रत्व आयोग ही सभी उम्मीदवारों के बारे में एवं उनकी नीतियों के बारे में विभिन्न माध्यमों द्वारा उस क्षेत्र के लोगों को बतायेगी, उनका प्रचार करेगी। कोई उम्मीदवार अपना प्रचार अपने से नहीं करेगा केवल आयोग ही करेगा। निश्चित समय पर मतदान रखा जायेगा। जिसको भी बहुमत मिलेगा उन्हें उस जगह का नेत्रत्व पद अगले पांच वर्षों के लिए दे दिया जायेगा। सामान्य तौर पर इनका कार्यकाल पांच वर्ष का होगा। चुने हुए नेता को पूरी स्वतंत्रता से अपने कार्य करने का अवसर होगा। हां यदि जनता चाहे तो आगे लिखी प्रक्रिया के द्वारा उन्हे बीच में ही हटा सकती है। यदि उसके क्षेत्र के 10 प्रतिशत लोग हस्ताक्षर करके किसी नेता को हटाने का कारण सहित प्रार्थनापत्र नेत्रत्व आयोग को देते हैं तो चुनाव आयोग उस नेता के लिय फिर से चुनाव करेगा। यदि उसे हटाने का बहुमत आता है तो वहां उसको हटा दिया जायेगा और दोबारा चुनाब होगा उस पद के लिए। सारे चुनाव आनलाईन प्रक्रिया के तहत ही होंगे। सब अपने प्रोफाईल के अंदर से ही अपना मत सीधे डाल सकेंगे। बाद में भी कोई अपना वोट देख सकेगा कि उसका वोट किस नेता को गया है। उसे तुरंत बताया भी जायेगा कि आपका वोट किस नेता को जा चुका है। नेत्रत्व चुनाव आयोग एक स्वतंत्र आयोग होगा जिसमें लोग अपनी वरीयता और रूचि के आधार से पद पा सकेंगे। कोई भी सरकार उन्हें पदासीन नहीं करेगी। केवल पहली बार सरकार के द्वारा नियुक्ति होगी। ये सभी चेतनावस्था के उच्च वरीयता प्राप्त लोग होंगे। जितने भी लोग इसमें आवेदन करेंगे, उनमें से आवश्यक लोगों की नियुक्ति हो जायेगी। बाद में ये

आयोग आवश्यकतानुसार अपने यहां इसी प्रक्रिया के तहत स्वयं ही नियुक्ति करता रहेगा। बाकि दूसरे चारों आजीविका आयोग अपनी स्तर की सरकारों के आधीन अपना कर्म करेंगे। इसीप्रकार ग्राम नेताओं के द्वारा 10 में से 5 जिला नेताओं का चुनाव होगा, फिर इन जिला नेताओं के द्वारा राज्य स्तर पर 10 नेताओं में सें 5 नेताआं का चुनाव होगा फिर राज्य स्तर के चुने हुए नेताओं के द्वारा 10 में से 5 नेताओं का चुनाव देश स्तर की सरकार को बनाने के लिए होगा। और अंत में प्रत्येक देश से देश स्तर का नेता, 2 आवेदकों में से 1 नेता का चुनाव विश्व सरकार को बनाने के लिए होगा या पूरे विश्व में से 10 में से 5 नेताओं को चुनाव प्रक्रिया से चुना जायेगा। माना कि 100 देश होंगे तो 100 नेता विश्व सरकार में चुनकर आ जायेंगे। वैसे तो 5 नेता ही काफी होते हैं परंतु प्रारम्भ में प्रत्येक देश से 1 नेता भी ले सकते हैं। इसमें कोई समस्या नहीं है। क्योंकि जो कार्य 5 लोग कर सकते हैं उसके लिए 100 नेता अनावश्यक हैं। परंतु प्रारम्भ में लोग ये सोच सकते हैं कि हमारे देश का प्रतिनिधित्व विश्व सरकार में होना चाहिए। तो ऐसा भी कर सकते हैं। जब कुछ वर्ष में लोग अनुभव करेंगे कि 5 ही काफी है तो

चुनाव प्रक्रिया

फिर 5 का चुनाव कर लेंगे पूरे विश्व से विश्व सरकार बनाने के लिए।

एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में सर्वप्रथम, नेत्रत्व करने वालों को चुना जाता है। जोकि सारी नीतियों का निर्धारण करते हैं। नेता वही है जो पूर्ण

वरीय हो और जनता का प्रिय हो। तो जब ऐसे नेताओं की सरकार बन जाये तब आगे की और दूसरी नियुक्तियां शुरू होती हैं। ये तो हुइ सरकार के गठन की संक्षिप्त प्रक्रिया। अब ये चुनी हुई सरकार कैसे कार्य करे, इसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है। सबसे पहले सरकार चार आजीविका आयोग स्थापित करेगी जिनके नाम– नेत्रत्व आजीविका आयोग, प्रशासनिक आजीविका आयोग, वाणिज्कि आजीविका आयोग और कृषि आजीविका आयोग होंगे। जोकि बाकि के लोगों को उनके पदों पर स्थापित करेंगे। किसी भी सरकार के मुख्य रूप से चार कार्य होते हैं।

ये सरकारें ऐसी नीतियां बनायेंगे एवं उनका संचालन करेंगे कि जिससे ये निम्नलिखित उददेश्यों की पूर्ती हो सके।

1.शिक्षण–प्रशिक्षण :– प्रत्येक बच्चे को समान स्तर का सम्पूर्ण शिक्षण एवं प्रशिक्षण सुनिश्चित होगा।

2.रोजगार :– 25 से 50 वर्ष की आयु वाले मनुष्यों को उनकी वरीयता एवं रूचि के अनुसार कोई एक समुचित रोजगार सुनिश्चित होगा।

3.सुखसुविधाएं :– प्रत्येक क्षेत्र के अनुसार सभी क्षेत्रों को समान एवं समुचित सुखसुविधाएं सुनिश्चित होंगी।

4. संरक्षण :– प्रत्येक वर्ग को समुचित संरक्षण सुनिश्चित होगा।

आजीविका आयोगों के गठन की प्रक्रिया

सभी स्तर की सरकारें अपने यहां सभी आजीविका आयोगों का गठन इस प्रक्रिया के तहत करेंगे। जिसमें मुख्य पदों के लिए योग्यता होगी, चेतनात्मक स्तर के लोग। एवं शेष भावनात्मक स्तर के लोग इन आयोगों में अपनी नियुक्तियां पा सकेंगे। जहां भी ये लोकतांत्रिक व्यवस्था होगी वहां पर कभी कोई भी समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। मैं इस बात को दोहराना चाहता हूं कि कोई भी समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। और यदि कोई नई समस्या उत्पन्न भी हुई तो उसका समाधान जड़ से अतिशीघ्र कर लिया जायेगा, जिससे कि वो कभी भविष्य में दोबारा उत्पन्न ना हो सके।

संस्थाओं में नेत्रत्व के गठन की प्रक्रिया

नेत्रत्व आजीविका आयोग के द्वारा विभिन्न संस्थाओं में चेतनावस्था स्तर के लोगों की पद नियुक्तिया उनकी योग्यता, क्षमता, कौशल, गुणवत्ता और रूचि के आधार पर होगी। जैसे सभी केंद्रो के निर्देशक, विश्वविद्यालय के

शिक्षक, सभी जज, वैज्ञानिक, प्रमुख चिकित्सक, व्यवस्था के सभी निरीक्षक, सूचना आयोग के सभी प्रमुख एडीटर्स आदि की पदनियुक्ति।

प्रशासन या लोकसेवकों के गठन की प्रक्रिया

प्रशासनिक आजीविका आयोग के द्वारा प्रशासनिक नियुक्तिया उनकी योग्यता, क्षमता, कौशल, गुणवत्ता और रूचि के आधार पर होंगी। इन पदों के लिए भावनावस्था के लोग होंगे। प्रशासन वो सारे कार्य करेगा जोकि जनता की सुख सुविधाओं से संबंधित होंगे। जैसे– शिक्षा–प्रशिक्षण, आवास, सड़क, बिजली, पानी, डाक, दूरभाष, दूरदर्शन, रेडियो, परिवहन, पार्क, स्टेडियम, पुस्तकालय, देश के सभी नागरिकों की सुरक्षा हेतु प्रति संवर्ग आधार पर, समष्टि के चारों संवर्गो, जैसे– जड़–पदार्थ, वृक्ष–वनस्पति, पशु–पक्षी एवं मनुष्य वर्ग को स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, सहायता एवं सहयोग, सुरक्षा एवं न्यायालय आदि सार्वजनिक सेवाओं के रूप में समुचित संरक्षण प्राप्ति की व्यवस्था में प्रबंधन से लेकर क्षेत्रीय कार्यों तक सभी कर्म।

ये तो हो गई शासन और प्रशासन के गठन की प्रक्रिया। अब दो क्षेत्र और हैं, एक है वाणिज्कि और दूसरा कृषि का। आओ उसको भी देखें।

वाणिज्किक्षेत्र में लोगों के गठन की प्रक्रिया

वाणिज्कि आजीविका आयोग इन पदों की नियुक्ति का कार्य करेगा। इसके लिए कम से कम मानसिक अवस्था के लोग वरीय होंगे। इसमें भी तीन स्तर होंगे। मृदु, मध्यम और उच्च स्तर। सारा नेत्रत्व एवं प्रबंधन सरकार का ही होगा वहां भी, बाकि लोगों को वहां केवल उनको दिया हुआ कर्म करने ही आना होगा। जैसे बढ़ई, प्लम्बर, टेलर, बिजली फिटिंग और रिपेयरिंग, मशीन चालक, मोची, नाई, धोबी, बढ़ई, कटर, वैल्डर, राजमिस्त्री, लोहार, सुनार, विज्ञापनकार, मरम्मत का कर्म, विभिन्न प्रकार का इंजीनियरिंग का कर्म, क्वालिटि कंटरोल, सोफ्टवेअर प्रोग्रामिंग, विभिन्न प्रकार की डिजाइनिंग, तकनीती के विशेष जानकार आदि। उनकी वरीयता और रूचि के आधार से कोई एक रोजगार में नियुक्ति कर दी जायेगी।

कृषिक्षेत्र में लोगों के गठन की प्रक्रिया

कृषि आजीविका आयोग के द्वारा शारीरिक अवस्था वाले मनुष्यों को उनकी वरीयता और रूचि के आधार से इन विभागों में अन्न उत्पादन, फल उत्पादन और दुग्द उत्पादन से संबंधित कोई एक रोजगार पर नियुक्ति दे देगी। सरकार सभी को उनकी वरीयता के आधार पर रोजगार देने के लिए बाध्य रहेगी। रोजगार ना देने की सूरत में भी सरकार को उन्हें समान जीवन स्तर ही देना होगा चाहे उसकी कोई भी वरीयता क्यू ना हो। रोजगार लेने के बाद भी यदि कोई कार्य नहीं करता तो इसका वह स्वयं उत्तरदायी होगा, सरकार नहीं। सरकार आपकी हरप्रकार से सहायता करने को सदैव तत्पर रहेगी। और सभी प्रकार का संरक्षण आपको देगी। यदि सरकार का कोई भी नीति नियम आपको गलत लगता है तो उसके लिए एक प्लेटफार्म होगा जिसका जनता में सीधे लाईव प्रसारण रहेगा, वहां आप उसके बारे में अपने विचार रख सकते हैं। जनता को आप बता सकते हैं कि क्या गलत है। और यदि सही भी आपको पता है तो वो भी आप बता सकते हैं। बाद में नेता लोगो के द्वारा या जनता के आधार से उसमें परिवर्तन कर दिया जायेगा। किसी भी प्रकार की कोई भी परेशानी यदि आपको आती है तो कृपया संबंधि ात अधिकारी या विभाग को उससे अवगत करा सकेंगे, जोकि ऑनलाइन ही होगी उसके लिए कहीं जाना नहीं पड़ेगा। आपका जो ऑनलाइन अकाउंट हागा उसमें जाकर आप कोई भी प्रकार की शिकायत कर सकेंगे। निश्चित समय के अंदर ही उसका समाधान वह अधिकारी आपको देगा। यदि वह अधि ाकारी निश्चित समय पर आपकी समस्या का समाधान नहीं करता और अपने से उपर भी आपकी समस्या को स्थांनांतरित नहीं करता तो उसे उसके पद से नीचे वाले पद पर स्थानांतरित कर दिया जायेगा ये समझते हुए कि ये इस पद के योग्य नहीं है, या इसकी उसमें रूचि नहीं है। एक निश्चित समय के बाद आपकी वो समस्या अपने आप भी अगले अधिकारी को हस्तांतरित हो जायेगी। और इसी प्रकार होती रहेगी जबतक कि उसका कोई समाधान नहीं हो जाता। जबतक कोई सही समाधान नहीं आता तबतक कोई वैकल्पिक समाधान आपको तुरंत दे दिया जायेगा जिससे कि आपका जीवन सही से चलता रह सके।

यदि किसी को अपनी आजीविका बदलना है तो वह परीक्षा देकर वरीयता सिद्ध करके नयी आजीविका से संबंधित नियुक्ति ले सकता है। अपनी वरीयता से नीचे की आजीविका यदि कोई करना चाहता है तो कर सकता है उसके लिए उसे किसी परीक्षा की आवश्यकता नहीं होगी। पर अपनी वरीयता से उपर का रोजगार आप तभी कर सकते हैं जब आप उतनी वरीयता हासिल कर लें। व्यवस्था आपको वरीयता हासिल करने में पूरा सहयोग करेगी। सभी आयोग विद्यालय के अंतिम दिन ही आपकी वरीयता की जांच करके आपको आपका उचित रोजगार दे देंगे। आपको कहीं जाना नहीं पड़ेगा। सामान्य तौर पर कोई व्यक्ति एक समय में एक ही रोजगार के पद पर नियुक्ति पा सकेगा।

रोजगार व्यवस्था का स्वरूप

ये एक ऐसी देशनिर्भर तरह की व्यवस्था होगी जिसमें एक देश को किसी दूसरे देश पर निर्भर रहने की बहुत कम आवश्यकता होगी।

राष्ट्रीय सुखसुविधा नीति

ये सामाजिक स्तर का कार्य है। सुखसुविधाओं का अर्थ है कि सरकार के स्तर से दी जाने वाली वे सभी सुखसुविधाएं जोकि व्यक्तिगत या पारिवारिक स्तर पर संभव नहीं होती और जिनके लिए किसी सरकार का गठन किया जाता है। जैसेकि आवासीय क्षेत्र वो भी सभी सुविधाओं से संपन्न, जिसमें जल आपूर्ति, विद्युत आपूर्ति, गैस कनेक्शन, इन्टरनैट कनेक्शन, टीवी कनेक्शन, सीवर व्यवस्था, सभी प्रकार के सुरक्षा इंतजाम आदि हों। सभी क्षेत्रों में विद्यालय, सड़क, यातायात परिवहन, स्टेडियम, उन्नत पार्क, डाक व्यवस्था, मोबाइल व्यवस्था, पुस्तकालय, औषधालय आदि। ये सारी सुखसुविधाएं क्षेत्रिय आधार पर दी जानी चाहिए। जो सुविधा ग्राम के आधार पर ना दी जा सके वो जिला स्तर पर दी जानी चाहिए और जो जिला स्तर पर भी संभव ना हो सके वो प्रदेश स्तर पर दी जानी चाहिए इसीप्रकार जो प्रदेश स्तर पर संभव ना हो वो सुखसुविधा देश के स्तर पर या इसी प्रकार विश्व के स्तर पर दी जानी चाहिए। ये सारी सुखसुविधाएं समुचित आधार पर सभी को समानरूप से दी जानी चाहिए। इसी को न्याय कहते हैं। क्योंकि इस संसार में जो भी मूल संसाधन हैं उनपर यहां पैदा होने वाले सभी जीवों का समान अधिकार है। ना किसी का कम और ना किसी का ज्यादा। यदि इस तरह से न्याय व्यवस्था को स्थापित कर दिया जाये तो संसार में किसी को भी किसी प्रकार का अभाव नहीं रहेगा। किसी प्रकार की समस्याएं पैदा ही नहीं होंगी जैसेकि आतंकवाद, नकस्लवाद, गरीबी, बिमारी, भुखमरी, बलात्कार की मानसिकता, किसी को प्रताड़ित करने की मानसिकता, अपने को महान और औरों को तुच्छ समझने की मानसिकता, या अपने को तुच्छ और औरों को महान समझने की मानसिकता। भविष्य के प्रति असुरक्षा की भावना कि कल को क्या होगा, कि कल का जीवन कैसे चलेगा आदि।

राष्ट्रीय संरक्षण नीति

ये सामिष्टक स्तर का कार्य है। अर्थात् चारों संवर्गों को समुचित संरक्षण मिलना चाहिए। मनुस्य, पशु–पक्षी, वृक्ष–वनस्पति और पदार्थ ये चारों संवर्ग हैं। इनमें से किसी को किसी भी प्रकार का दुख नहीं रहना चाहिए। सरकार

की संरक्षण नीति इसप्रकार की होनी चाहिए कि चारों संवर्गों में ना तो किसी भी प्रकार का असंतुलन हो और नाही एक को दूसरे से भय हो या नुकसान हो। जिसप्रकार एक अच्छा समझदार किसान अपने खेत में मुख्य फसल के साथ पैदा हुए खरपतवार को उखाड़कर खेत से बाहर निकाल देता है और अपनी फसल की रक्षा करता है उसी प्रकार से सारा प्रयास करने के बाद भी यदि कोई जीव किसी और को कोई हानि पहुंचाता है या पहुंचाना चाहता है तो उसे इस समाज से निकालकर या तो उसका समुचित उपचार करे या अगर उपचार नहीं हो सकता तो उसे समुद्र के बीच किसी टापू पर छोड़ आना चाहिए। उसे समाज के बीच कदापि ना रखे। और यदि बहुत अधिक ही हानिकारक हो तो उसे पूर्णतया शांत कर देना चाहिए। उसके लिए विश्व सरकार आवश्यक अस्त्र–शस्त्र, सेना और कारागार आदि की व्यवस्था रखे। न्यायालय, चिकित्सालय, रक्षालय आदि की स्थापना और उनका आवश्यकता के अनुरूप विकास करना चाहिए। इससे पर्यावरण संतुलन होता है, भूकंप की कमी होती है, बिमारियों से मुक्ति मिलती है, आयु में बृद्धि होती है, सभी प्रकार के बलों में बृद्धि होती है, जीवन में स्वच्छता आती है, जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण उत्पन्न होता है आदि आदि। सभी को स्वतंत्रता, सम्मान, स्वास्थ्य आदि की प्राप्ति सरकार संरक्षणनीति के अंतर्गत करायेगी। जो लोग परिवार में नहीं रह सकते किन्हीं भी कारणों से तो उनके लिए संरक्षण गृह खोले हुए होंगे। जिनमें सभी प्रकार की सुखसुविधाएं होंगी। जिनमें कोई भी वृद्ध आदि जबतक रहना चाहे वे वहां अच्छे से रह सकें। वैसे भी सरकार ही उनका सारा प्रबंध कर रही होगी तो वे परिवार में रहें या संरक्षण गृह में, इससे सरकार को तो कोई अतिरिक्त व्यय है नहीं। सरकार चारों संवर्गों के बीच एक संतुलित और सुखमय वातावरण बना सके उसके लिए ही इस संरक्षणनीति का समावेश किया जाता है। क्योंकि इस संसार में कहीं कोई भी यदि दुखी या असंतुलित होता है तो वह अपने आसपास या दूर तक भी सबको दुखी और असंतुलित कर देता है। इसलिए यदि मनुष्यों को सुखी रहना है तो उन्हें बाकि सभी को भी सुखी और संतुलित रखना होगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। कारागार दंड देने का स्थान नहीं होने चाहिए बल्कि मनोरोग की चिकित्सा का स्थान होना चाहिए। क्योंकि किसी भी अपराध के

पीछे या तो खराब व्यवस्था का हाथ होता है और या मानसिक रुगड़ता का कारण होता है। ये जो समाज में गलत व्यवस्था के कारण आर्थिक असमानता, दलन, दमन, उत्पीड़न, शोषण, कुण्ठा, कुत्सा, रुगड़ता, विक्षिप्तता आदि होती है इसके कारण ही सारे अपराध होते हैं। इसके लिए सही प्रकार से सही प्रकार की शिक्षा व्यवस्था, आजीविका व्यवस्था, सुखसुविधा व्यवस्था और

संरक्षण व्यवस्था होनी चाहिए जिसके लिए इस व्यवस्था की बात कर रहे हैं। और सभी समझ सकें उसके लिए ये पुस्तक लिखी जा रही है। यदि आप सभी चाहोगे तो ये व्यवस्था इस धरातल पर उतारी जा सकती है। हमें दण्डनीति के स्थान पर चिकित्सानीति और उससे भी पहले सही व्यवस्थानीति अपनानी चाहिए। सभी प्रकार के रोग गलत व्यवस्था का परिणाम ही होते हैं और कुछ नहीं। और समृद्धि का मानक हमेंशा ही व्यक्तिगत सुख का स्तर ही होना चाहिए। इस नयी व्यवस्था में प्रत्येक मनुष्य अपने सभी सुखों के लिए सदैव ही अपनी रेटिंग देते रहेंगे। यदि कोई भी मनुष्य कभी भी व्यवस्था के कारण कोई दुख पाता है तो वो अपनी रेटिंग के द्वारा सूचित कर सकेगा। जिसे सभी इंटरनेट पर जब चाहे देख सकेंगे। सरकार को तुरंत ही उसके दुख का कारण दूर करना होगा। इसी मानक के आधार से सरकार के कार्यों की स्थिति समझी जा सकेगी कि सरकार कितनी सफल हुई। यदि एक भी

मनुष्य किसी भी कारण से दुखी है तो ये सरकार के लिए विचारणीय प्रश्न होगा कि अभी और कहां समस्या है व्यवस्था में जिसके कारण कि ये दुख उत्पन्न हो रहा है। उसे शीघ्रता से समाज में जारी कर दिया जायेगा जिससे कि यदि किसी के पास कोई समाधान हो तो वो सरकार को दे सके। और सरकार तो अपने स्तर से पूरी खोज कर ही रही होगी समस्या के समाधान की।

•••

अध्याय–10

समुचित अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र का अर्थ

जीवन के सभी लक्ष्यों की पूर्ति करने के लिए जो भी कर्म हम सब करते हैं, उन सारे कर्मों का आपस में विभाजन और उन सारे कर्मों के फलस्वरूप जो भी फल या भोग आते हैं उनका आपस में विभाजन करने के लिए जिन नीति नियमों का निर्धारण किया जाता है उसको ही अर्थशास्त्र के नाम से जाना जाता है। और इससे ज्यादा अर्थशास्त्र कुछ भी नहीं होता है। अर्थशास्त्र को अभी इतना ज्यादा कठिन बनाया हुआ है कि आम आदमी तो इसे समझ ही नहीं सकता। जबकि ये बहुत सरल होना चाहिए। यदि अर्थशास्त्र सरल नहीं होगा तो इसे सभी समझ नहीं पायेंगे। और यदि सभी समझ ही नहीं पायेंगे तो उनका पालन कैसे होगा? और जब पालन ही नहीं होगा तो उसका अपेक्षित परिणाम ही कैसे आयेगा? और जब अपेक्षित परिणाम ही नहीं आयेगा तो ऐसे अर्थशास्त्र का अर्थ ही क्या हुआ? जबकि अर्थशास्त्र किसी भी व्यवस्था का मूल आधार होता है। जिस समाज का जैसा अर्थशास्त्र होता है, उस समाज की आर्थिक अवस्था वैसी ही होगी। यदि समाज की आर्थिक अवस्था सही नहीं है, सही का अर्थ है कि समाज की स्थिति सम्पूर्ण रूप से सुखी नही है तो इसका अर्थ ये होगा कि उस समाज ने अर्थशास्त्र नहीं बल्कि अनर्थशास्त्र को ग्रहण किया हुआ है। अब नीचे देखिये कि कितनी सरलता से मैं इसका वर्णन करता हूं और उतनी ही सरलता से आप इसे समझ भी लेंगे। और पालन भी उतना ही सरल होगा। अकसर आपने सुना होगा कि केंद्र और राज्य की सरकारें ये कहती रहती हैं कि हमारे पास रोजगार नहीं हैं, इस वर्ष हम कुछ रोजगार का सृजन करेंगे। रोजगार को देने के लिए हमारे पास धन नहीं है। धन की कमी के कारण सरकारें रोजगार उत्पन्न नहीं कर पा रही हैं। और रोजगार उत्पन्न नहीं कर पा रही हैं तो इसका अर्थ है कि सरकारें उन सभी आवश्यक कार्यों को नहीं कर पा रही हैं जिसके फलस्वरूप समाज सभी सामाजिक सुखों को भोगकर सुखी होता

है। अर्थात समाज दुखपूर्वक जीवन जी रहा है। और ये समस्या केवल इसलिए है कि इन सरकारों ने जिस अर्थशास्त्र को ग्रहण किया हुआ है वो अर्थशास्त्र नहीं बल्कि अनर्थशास्त्र है। नहीं तो अर्थशास्त्र में धन की कमी हो कैसे जायेगी? जब अर्थशास्त्र ही गतल है तो फिर उसके अनुसार जिन नीतियों का सरकार निर्माण करती है, उससे गलत परिणाम ही उत्पन्न होता है। जिसके कारण सरकार को हर बात की कमी अनुभव होती रहती है। नीचे आप समझेंगे कि काम तो हमारे पास इतना ज्यादा है कि करने के लिए लोग कम पड़ जायेंगे। आओं पहले ये समझ लें कि ये कर्म या रोजगार है क्या? क्या इसे अलग से उत्पन्न करना होता है? या ये मनुष्य के उत्पन्न होने के साथ ही अपने आप उत्पन्न होते जाते हैं? चूंकि कर्म लोगों के लिए ही किया जाता है। उन्हें ही भोगों की आवश्यकता होती है। उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही कर्म उत्पन्न होता है। इसलिए जितने लोग होंगे, उतने ही भोगों की आवश्यकता होगी। और जिनते भोगों की आवश्यकता होगी तो उतने ही कर्मों की आवश्यकता होगी। यही चक्र है जनसंख्या, भोग और कर्म के बीच। इस प्रकार कर्म तो समाज में ना कभी अधिक होते हैं और ना कभी कम होते हैं। जितने लोग उतना कर्म होता है। अब ये कर्म क्या है इसे भी समझते हैं।

कर्म की परिभाषा

जीवन का परमलक्ष्य है सुख की निरंतर अवस्था या एक शब्द में बोलें तो सुख। यानिकि सभी प्रकार के इच्छित भोगों की निरंतरता। और इन सभी प्रकार के भोगों को उत्पन्न करना होता है, ये प्रकृति में सीधे अपने आप उत्पन्न नहीं होते हैं। इन्ही भोगों को उत्पन्न करने के लिए हम जो भी श्रम करते हैं, वो ही कर्म कहलाता है। और ये कर्म परस्पर लोगों के द्वारा स्वयं के लिए एवं औरों के लिए किये जाते हैं। यानिकि जितने लोग उतना कर्म। अर्थात् लोगों की संख्या के आधार से ही कर्म की उत्पत्ति स्वयं होती है। जितने लोग उतना कर्म, जितना कर्म उतना भोग, जितना भोग उतना सुख। इसलिए ना तो कर्म कभी कम पड़ सकता है और ना भोग ही। और इससे ही सबके जीवन का परमलक्ष्य पूरा होता है। उदाहरण के लिए जबतक घर में एक आदमी था तो उतने कर्म की आवश्यकता होती थी। फिर उस आदमी

का विवाह हो गया और दो लोग हो गये तो उसी आधार से कर्म भी बढ़ गया और उस कर्म को करने वाला आदमी भी बढ़ गया। तो पहले एक आदमी था तो एक का कर्म था और उसके बाद दो लोग हो गये तो दो का कर्म हो गया। इसके बाद एक बच्चा भी हो गया तो उसका और कर्म बढ़ गया। इसी प्रकार से जनसंख्या के आधार से कर्म कम या अधिक होता रहता है। कम जनसंख्या तो कम कर्म और अधिक जनसंख्या तो अधिक कर्म।

केन्द्रीकृत सॉफ्टवेअर योजना

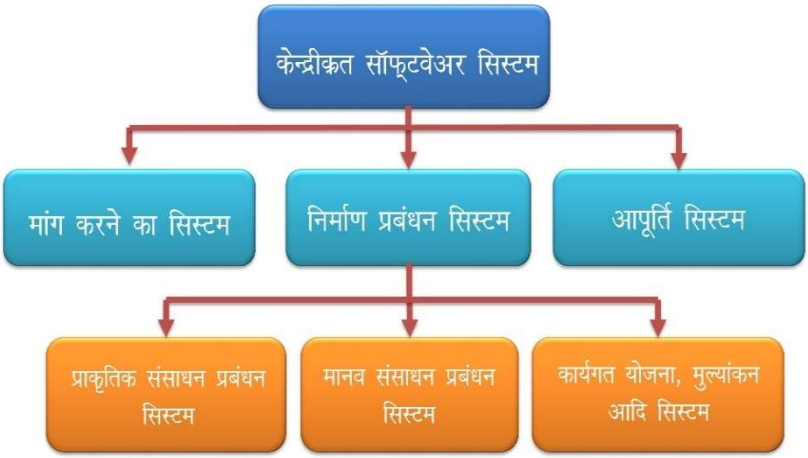

इन सभी कर्मों और भोगों का आपस में विभाजन कैसे हो, ताकि सभी को उसके कर्म और भोग न्यायपूर्वक मिल सकें। इसी बात का अध्ययन करने के लिए ही अर्थशास्त्र की आवश्यकता होती है। आओ अब इस अर्थशास्त्र का अध्ययन करते हैं।

ज्ञान, कर्म और भोग क्या हैं?

ज्ञान, कर्म और भोग को समझें कि हमारे जीवन में इनकी क्या उपयोगिता है, क्या स्थान है? हमारे शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं जिनके माध्यम से हम कोई भी विषयों के भोग को भोग सकते हैं। जैसे कि कान से

विभिन्न प्रकार के संगीत सुनने का भोग कर सकते हैं, एक दूसरे की बातों को सुनकर उनका भोग कर सकते हैं। त्वचा के द्वारा विभिन्न प्रकार के स्पर्श का भोग कर सकते हैं। आंखों के द्वारा हम विभिन्न प्रकार के रंग, रूप, दृष्य आदि का भोग कर सकते हैं। जीभ के द्वारा हम विभिन्न प्रकार के स्वादों का भोग कर सकते हैं। और इसीपकार हम अपनी नासिका के द्वारा विभिन्न प्रकार की सुगंधों का भोग कर सकते हैं। इसप्रकार से हम समझ सकते हैं कि हम अपनी इन पांच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से सैकड़ों प्रकार के भोगों को भोग कर उनसे सम्बन्धित सुखों को प्राप्त कर सुखी हो सकते हैं। हां ऐसे लोग भी मुझे मिले जोकि ये कहते हैं कि सुखी होने के लिए किसी भोग की आवश्यकता नहीं है। लेकिन जब मैंने उनके जीवन का निरीक्षण किया तो मैंने पाया कि वो अज्ञानतावश असत्य बोल रहे हैं। मैंने उनको देखा कि वो विभिन्न भोगों की प्राप्ति के लिए बहुत ही प्रयास करते थे और यदि असफल होते थे तो दुखी भी पाये गये। जब मैंने उनको अपना निरिक्षण बताया उनके जीवन के बारे में तो वे निरूत्तरित हो गये। वे कुछ बोल नहीं पाये। कुछ ने स्वीकार भी किया कि ये तो बस कहने की बातें हैं। कहीं बिना भोग के सुखी हो सकते हैं क्या? यदि हम ऐसा नहीं कहेंगे समाज को तो वो भोगों के पीछे ही निरंतर भागता रहेगा, और हमें भी दान आदि नहीं देगा। और भी इसी प्रकार की बातें वे सब कहते हैं। इसप्रकार यदि कोई ये कहता है कि बिना भोगों के हम सुखी रह सकते हैं तो वो किन्हीं कारणों से असत्य ही बोल रहा होता है। परमात्मा की इस सृष्टि के विरोध में ही बोलने का प्रयास कर रहा होता है। अब जब हमें सारे भोग चाहिए, तो उन्हें उत्पन्न भी करना होगा क्योंकि प्रकृति से तो हमें वे सारे भोग मिलते नहीं हैं। तो उन सारे भोगों को उत्पन्न करने के लिए हम सभी को श्रम करना होगा। और क्या श्रम करना है और कैसे श्रम करना है ये जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होगी। इसप्रकार अब थोड़े से ही चिंतन और मनन से हम सभी समझ गये होंगे कि ज्ञान, कर्म और भोग की ये पूरी श्रंखला है। यदि भोगों से हम भागेंगे तो कर्म की आवश्यकता ही नहीं होगी। और यदि कर्म की आवश्यकता ही नहीं होगी तो फिर ज्ञान किसलिए करोगे? फिर तो जैसे पशु जीते हैं बिना ज्ञान और कर्म के वैसे ही हमें भी केवल प्रकृति के द्वारा दिये गये भोगों

को भोगकर ही जंगल में असुरक्षित जीवन जीना होगा। जोकि मेरी समझ से कोई नहीं जीना चाहेगा। फिर भी यदि कुछ लोग प्राकृतिक जीवन जीना चाहे तो वो जी सकते हैं। वो तो पहले से ही प्राप्त है, उसके लिए तो कोई कर्म या ज्ञान की आवश्यकता होती नहीं। लेकिन अधिकतम लोग तो सभी सुख सुविधाओं का जीवन जीना चाहते हैं। तो इनके लिए तो कर्म और ज्ञान की आवश्यकता होगी। और उन्हीं लोगों के लिए ये सारी व्यवस्था की आवश्यकता होगी।

एक बात और है कि संसार के धर्मग्रंथ और उनको मानने वाले लोग ये प्रचार करते रहते हैं कि भोगी मत बनो, त्यागी बनो। अब यदि उनके कहने के अनुसार सब त्यागी बनने लगें तो फिर भोगों के निर्माण की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। और जब भोगों के निर्माण की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी तो कोई कर्म की आवश्यकता नहीं रहेगी, किसी ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी अर्थात किसी रोजगार की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। तो फिर सरकार से रोजगार की मांग नहीं करनी चाहिए। फिर सरकार का ये उत्तरदायित्व ही नहीं बनता कि वो किसी को रोजगार दे या सबको भोग दे। फिर तो हमें ये कहना बंद करना चाहिए कि सरकार हमें नौकरी नहीं देती। अब सरकार के पास तो नौकरियां तभी होंगी ना जब सरकार को कोई कर्म करना होगा, कोई खोज करनी होगी। और यदि सरकार कोई कर्म करेगी तो उससे तो कोई ना कोई भोग ही उत्पन्न होगा जोकि आप में से कोई भोगने को तैयार नहीं है। क्योंकि भोगने से तो हम पापी हो जायेंगे। चारों तरफ तो त्याग का ही शोर किया हुआ है कि त्यागो सबकुछ। अब जब सबकुछ त्यागना ही है तो फिर कर्म की या ज्ञान की कोई जरूरत नहीं अर्थात रोजगार की कोई आवश्यकता नहीं। तो फिर सरकार कोई कर्म करके करेगी क्या? तो पहले हम सबको मिलकर ये तय कर लेना चाहिए कि भोगना है कि त्यागना है। सीधी सी बात है कि यदि आपलोग अधिक भोगी बनोगे तो ही अधिक कर्म करने की और फिर अधिक ज्ञान करने की आवश्यकता होगी। तभी अधिक रोजगार उत्पन्न होगा। सरकार भी तभी आप सभी को कर्म यानिकि रोजगार दे सकती है। इसका अर्थ साफ है कि जितने आप भोगी होने को तैयार हो सरकार केवल उतना ही रोजगार दे

सकती है उससे ज्यादा नहीं दे सकती। तो इसका अर्थ स्पष्ट है कि अधिक भोग यानिकि अधिक कर्म और ज्ञान यानिकि अधिक रोजगार अर्थात् अधिक सुख। कम भोग यानिकि कम कर्म और कम ज्ञान यानिकि कम रोजगार अर्थात् कम सुख और अधिक दुख। निर्णय आप सभी को करना है कि किस बात को जीवन का आधार बनाना है। यदि कम भोग को जीवन का आधार बनाते है तो फिर आप किसी से अधिक सुख की मांग नहीं कर सकते। यदि आप अधिक भोग को जीवन का आधार बनाते हैं तो ही आप अधिक सुख की मांग कर सकते है सरकार से। तो कम से कम हमें पर्याप्त भोगी होना चाहिए। इसी में जीवन का सारा सुख छिपा है। तो भोगों के त्याग का प्रचार हमें अब बंद करना चाहिए। सभी धर्मों के साधुओं से विनम्र निवेदन करना चाहिए कि अब आप त्याग का ज्ञान देना बंद करें और भोगी होने का ज्ञान संसार को सिखाएं। त्याग के ज्ञान से गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानी, अपराध, दुख अशांन्ति, असंतुष्टि आदि का जीवन होता है और फिर भोग के ज्ञान से समृद्धि, शिक्षा, ज्ञानी, सुख शान्ति, संतुष्टि आदि का जीवन होता है। अब आपको कैसा जीवन चाहिए वैसा ही अपने जीवन का आदर्श बनायें। भोग या त्याग जिसको चाहे आदर्श बनायें। फिर उसके परिणाम आपको आपके समाज सहित सबको मिलेंगे ही। निर्णय आपका। इसी भोग, कर्म और ज्ञान को व्यवस्थित करने के लिए ही किसी व्यवस्था की जरूरत होती है और इसी के लिए अर्थशास्त्र की आवश्यकता होती है। एक बात और भी है और वो है कि हमें अपने दर्शन को भी सही करना होगा। दर्शन को सही किये बिना सही अर्थशास्त्र का कोई अर्थ नहीं होगा। और दर्शन वास्तविक होना चाहिए। ऐसा कोरा कल्पित नहीं होना चाहिए जिसका कि कोई वास्तविक आधार ही ना हो। आभासी आधार का दर्शन नहीं चाहिए। आभासी आधार वाले दर्शन से आभासी जीवन ही मिलेगा। आभासी का यहां अर्थ है कि दिखेगा सुख और मिलेगा दुख। और वास्तविक का अर्थ है कि दिखेगा भी सुख और मिलेगा भी सुख। स्वर्ग, बैकुण्ठ, जन्नत अदि सब कोरी कल्पनाएं हैं जिनका कि कोई वास्तविक आधार नहीं हैं। और आश्चर्य भी है कि जिस सुख को यहां त्याज्य बता रहे हैं ये दर्शन, उसी सुख को महान बता रहे हैं स्वर्ग आदि काल्पनिक स्थानों में! जो सुख स्वर्ग में महानता का प्रतीक है वो

इस संसार में क्यों हीन बनाया हुआ है इन्होंने? पूछो इनसे तो नास्तिक बोलकर उपहास उड़ाने लगते हैं। कहने लगते हैं कि आप में श्रद्धा नहीं है। आप भोगी मनुष्य हो। जैसेकि सारी श्रद्धा इन्हीं लोगो ने एकत्रित कर ली है? यहां भोगी होना पाप परंतु स्वर्ग, जन्नत आदि में भोगी होना पुण्य, ये कैसा दोहरा मापदण्ड है इनका? यहां ब्रहमचर्य की बात करते हैं और स्वर्ग में, जन्नत में बहुत सारी अपसराएं या हूर चाहिए इनको। क्या ये इन लोगों का या कहें कि हमारे दर्शनों का दोहरा मापदण्ड नहीं है? यहां कोई सुख की खोज करे या कोई सुख की मांग करे तो तुच्छ प्राणी और वही प्राणी बैकुण्ढ में सुख खोजे या उसके लिए साधना आदि करे तो वो महान! क्या ये दोहरा मापदण्ड नहीं है हमारे सभी धर्मग्रंथों का, और धर्म के ज्ञानियों का? अब जीवन में जितने भी प्रकार के सुख होते हैं उन्हें समझने का प्रयास करते हैं।

1. शारीरिक सुख
2. मानसिक सुख
3. भावनात्मक सुख
4. आत्मिक सुख

इनमें कुछ आवश्यकताएं वो हैं जोकि अतिआवश्यक हैं जिनके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। इन्हें हम सभी रोटी, कपड़ा, मकान आदि के नाम से जानते हैं। आओ अब हम देखें कि हमारी भोग सामग्री कितने प्रकार की होती है। हमारे पास पांच ज्ञान इंद्रियां हैं जिनके माध्यम से हम किसी भी प्रकार के भोगों का सुख प्राप्त करते हैं। कान, त्वचा, आंख, जीभ और नाक। कान से हम विभिन्न प्रकार की ध्वनियां सुनते हैं जिसमें शब्द, संगीत, वार्तालाप इत्यादि होते हैं। त्वचा से हम विभिन्न प्रकार के स्पर्शों का सुख प्राप्त करते हैं जिसमें कोमल स्पर्श से लेकर कठोर स्पर्श इत्यादि होते हैं। आंख से हम विभिन्न प्रकार के रूपों का सुख लेते हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के आकार और रंगो का मेलजोल रहता है। जीभ से हम विभिन्न प्रकार के स्वादों का सुख लेते हैं जिसमें सभी प्रकार के भोजन, पेय पदार्थ, फल–फूल इत्यादि होते हैं। और नाक से हम विभिन्न प्रकार की गंधों

का सुख लेते हैं जिसमें सभी प्रकार के इत्र आदि होते हैं। वैसे तो सभी पदार्थों में ये सारी विशेषताएं होती हैं जैसेकि भोजन को लें तो उसमें शब्द भी होता है, स्पर्श भी होता है, रूप भी होता है, स्वाद भी होता है और सुगंध भी होती है। परंतु फिर भी भोजन से हमारा अधिक तात्पर्य स्वाद और स्वास्थ से होता है। इसी प्रकार बाकि विषयों के बारे में भी समझ लेना चाहिए। तो इसप्रकार से हम सभी पदार्थों से अपना इच्छित सुख प्राप्त करते रहते हैं। इसके अलावा कर्म करने का अपना सुख है और ज्ञान पाने का भी अपना अलग सुख है। अब ये सारे भोग भी चार प्रकार के होते हैं। क्योंकि समाज में लोग भी चार प्रकार का स्तर रखते हैं। तन, मन, भाव और आत्मा।

1. शारीरिक स्तर के भोग
2. मानसिक स्तर के भोग
3. भावनात्मक स्तर के भोग
4. चेतनात्मक स्तर के भोग

शारीरिक स्तर के भोग हमें शारीरिक स्तर पर सुखी बनाते हैं। मानसिक स्तर के भोग हमें मानसिक स्तर से सुखी बनाते हैं। भावनात्मक स्तर के भोग हमें भावना के स्तर से सुखी बनाते हैं। और आत्मिक स्तर के भोग हमें आत्मा के स्तर से सुखी बनाते हैं। इन चारों प्रकार के सुखों से हमारे तन, मन, भाव या प्राण और आत्मा सुखी और स्वस्थ रहते हैं। हम सभी को ये चारों प्रकार के सुख चाहिए होते हैं। हां इनमें से कोई एक प्रकार का सुख मुख्य होता है सभी के लिए और बाकि सुख दूसरे तीसरे पायदान पर होते हैं। जैसे कि शारीरिक अवस्था वाले मनुष्यों को शारीरिक सुख प्रमुख होगा और बाकि के दूसरे और तीसरे पायदान पर होंगे। इसी प्रकार बाकि अवस्था वाले लोगों के लिए समझ लेना चाहिए। इन सभी को समझने के लिए मैं एक उदाहरण का सहारा लेता हूं। उसी से बाकि भी समझ लें। भोजन को ही लेते हैं। शारीरिक स्तर के मनुस्य जो होंगे उनके लिए भोजन की उचित मात्रा का होना जरूरी है। पेट सही से भरे ये उसका पहला उद्देश्य होता है। स्वाद भी हो तो सही है पर मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए। उसके लिए भोजन की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए नहीं तो उसको भोजन से पूर्ण तृप्ति नहीं होगी। अर्थात् उसे कम मात्रा के भोजन से पूर्ण सुख का अनुभव नहीं

होगा चाहे जितना सुंदर भोजन हो, चाहे जितना स्वदिष्ट भोजन हो, चाहे जितना स्वास्यवर्द्धक भोजन हो। तो मात्रा महत्वपूर्ण होती है इनके लिए।

मानसिक स्तर का मनुस्य जो होगा वो स्वाद के लिए भोजन को खाता है। कम मात्रा में चलेगा लेकिन भोजन स्वादिष्ट होना चाहिए। भोजन पर्याप्त मात्रा में है लेकिन स्वादिष्ट नहीं है तो इसको उस भोजन से पूर्ण तृप्ति नहीं होगी। चाहे भोजन कितना भी स्वास्थ्य के लिए अच्छा हो, चाहे कितना भी सुंदर हो लेकिन यदि स्वादिष्ट नहीं तो उसके लिए बेकार है। तो इसके लिए पहले स्वाद प्रमुख है।

भावनात्मक स्तर का मनुस्य जो होगा वो सुंदरता का ध्यान अधिक रखता है। एक बार को कम मात्रा हो चलेगी कम स्वादिष्ट होगा तो भी चलेगा परंतु सुंदर होना चाहिए। तो अगर भोजन स्वादिष्ट है, मात्रा भी पर्याप्त है, स्वास्थता देने वाला भी है परंतु सुंदर नहीं है तो इसको उस भोजन से पूर्ण तृप्ति का अनुभव नहीं होगा। तो इसके लिए भोजन का सुंदर होना जरूरी है।

चेतनात्क स्तर का मनुस्य जो होगा उसके लिए भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक होना चाहिए। एक बार को कम मात्रा हो तो चलेगी, कम स्वादिष्ट हो तो भी चलेगा, सुंदर ना हो तो भी चलेगा, परंतु स्वास्थ्यवर्द्धक नहीं है तो हो सकता है कि मजबूरी में खा ले पर उससे उन्हें तृप्ति का अनुभव नहीं होगा। तो पहले इसके लिए भोजन का स्वास्थ्यवर्धक होना प्रमुख है उसके बाद सुंदरता, उसके बाद स्वाद और उसके बाद मात्रा महत्वपूर्ण है।

तो हम समझ सकते हैं कि चारों स्तर के मनुस्यों के लिए भोजन का प्रयोजन भिन्न भिन्न होता है। उसी प्रकार से सभी प्रकार के भोगों में भी आपको ऐसा ही समझ लेना चाहिए। लेकिन अच्छी व्यवस्था में भोजन में ये सारे गुण अपने आप ही होंगे क्योंकि प्रत्येक वस्तु या सेवा उच्च गुणवत्ता वाली ही होगी, शुद्ध होगी सबके लिए। उपर केवल विभिन्न प्रकार के मनुष्यों को समझने के लिए मैंने कह दिया है, ताकि विभिन्न प्रकार के लोगों के दृष्टिकौण हम समझ सकें और हम ये समझ सकें कि किस प्रकार एक ही

प्रकार के भोग से सब अलग अलग प्रकार के सुखों को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार कर्म और ज्ञान में भी समझ लेना चाहिए। सभी अपनी अवस्था के अनुसार कोई ना कोई कर्म करना चाहते हैं जिससे उन्हें कर्म करने का सुख मिलता। जैसे शारीरिक अवस्था वाले कृषि से सम्बंधित कर्म करना चाहते हैं, मानसिक अवस्था वाले वाणिज्य से संबंधित कर्म करना चाहते हैं, भावना अवस्था वाले प्रशासन से संबंधित कर्म करना चाहते हैं और इसी प्रकार चेतना अवस्था वाले लोग नेत्रत्व से संबंधित और खोजों से संबंधित कर्म करना चाहते हैं। और हम सभी अपनी अवस्थानुसार और इच्छानुसार कुछ ना कुछ ज्ञान भी पाना चाहते हैं। तो भोग, कर्म और ज्ञान के माध्यम से हम विभिन्न प्रकार के सुखों को प्राप्त करते हैं या करना चाहते हैं।

क्या सच में बेरोजगारी होती है?

अब जैसे सरकार कहती रहती हैं कि हमारे पास रोजगार नहीं हैं, हम रोजगार उत्पन्न करेंगे। देखें कि क्या किसी भी समाज में रोजगार कम रहता है या कि किसी और कारण ये बेरोजगारी रहती है। इसे जानने के लिए हम मान लेते हैं कि इस समय पृथ्वी पर केवल 10,000 लोग ही रहते हैं। तो यदि 6 मनुष्यों का एक परिवार मानकर चलें तो 10,000 लोगों में लगभग 1666 परिवार बनते हैं। एक परिवार का अर्थ हुआ, 2 बुजुर्ग माता पिता 2 युवा माता पिता और 2 उनके बच्चे। इसका अर्थ हुआ कि हमें परिवार में एक रोजगार के अनुसार कम से कम 1666 लोगों को कर्म यानिकि रोजगार देना होगा और उनके माध्यम से 10,000 लोगों को उनके भोगों का निर्माण एवं वितरण करना होगा। फिर इसके आधार से वर्तमान जनसंख्या को भी इसी अनुपात में सब बातें तय कर सकते हैं। तो आओं समझें कि ये विभाजन कैसे तय होगा।

सबसे पहले पहली आवश्यकता भोजन को लें। विभिन्न प्रकार के भोजन जिसके अंतर्गत सम्भवतः 10 से अधिक प्रकार के अन्न और दालें, 20 से अधिक प्रकार की सब्जियां, 10 से अधिक प्रकार के तिलहन, 20 से अधिक प्रकार के मसाले, 25 से अधिक प्रकार के फल। कुल मिलाकर 85 से भी अधिक प्रकार की चीजें आपके केवल भोजन के लिए चाहिए। अर्थात् यदि

एक मनुस्य केवल 1 चीज का ही उत्पादन करे तो 85 से ज्यादा लोगों के लिए हमने कर्म दे दिया। और ये तो केवल भोजन का उत्पादन हुआ। अभी इन सारे उत्पादनों को बाजार में भी बेचने के लिए लोगों की आवश्यकता होगी। अभी हम 1 चीज 1 आदमी बेचेगा तो 85 आदमी चाहिए बेचने के लिए। अब ये तो हुआ उत्पादन और उत्पादन को बाजार में ले जाना। आओ अब बाजार मं जो इन उत्पादनों से मिलाकर जो चीजें बनायी जाती हैं जैसे तेल निकाले जाते हैं, आलू की चिप्स, टिकियां, सैंडविच आदि चीजे बनाई जाती हैं। ये सम्भवतः 100 से भी अधिक हो सकती हैं। तो ये 270 से भी अधिक लोगों के लिए रोजगार हो गया। ये तो केवल खाने की वस्तुओं से सम्बन्धित कर्म ही हुआ। खेती करने में जो भी खाद, पानी, टेक्टर, बीज, दूसरी मशीनरी आदि में यदि कम से कम 100 से भी अधिक कर्मिकों की आवश्यकता होगी। तो कुल मिलाकर 370 लोगों को कर्म हो गया।

अब दूसरे कर्मों में आ जाओं। जैसेकि कपड़े बनाने वाले, दुकानों तक कपड़े पहुचाने वाले, कपड़े बेचने वाले, कपड़े सिलाई करने वाले, कपड़े साफ करने वाले, कपड़े प्रेस करने वाले, अब आप देख सकते हैं कि केवल एक कर्म को पूरी तरह से सम्पादित करने में ही 20 से भी ज्यादा लोगों की जरूरत होती है। इसी प्रकार 100 से भी ज्यादा प्रोडक्टस हैं इस समय बाजार में। तो इस हिसाब से 100 गुणा 20 हो गये 2000 लोग चाहिए हमें ये सारे कर्म करने में। 50 से भी ज्यादा सेवायें हैं बाजार में जैसेकि स्वास्थ्य को लेकर, हेअर सेलून, ब्यूटी पार्लर, मनोरंजन के विभिन्न बहुत सारे साधन।

अब आप हिसाब लगा सकते हैं कि 10,000 लोगों के लिए 3000 से भी ज्यादा लोग चाहिए हमें, जबकि हमें केवल 1666 परिवारों को ही कर्म का वितरण करना हैं। इसप्रकार आप देख सकते हैं कि कर्म का वितरण करना कितना आसान है। पहले लोगों को उनकी योग्यता विकसित करने का पूरा अवसर हो और फिर जिसकी जैसी योग्यता विकसित हो जाये उसकी रूचि अनुसार कर्म का वितरण कर दिया जाये। जिससे कि वो उस कर्म को सही से सम्पादित कर सके सुखपूर्वक। और भी सुखसुविधायें होती है जिनकी सबको जरूरत होती है। जैसेकि शिक्षा, खेल, आवास, सड़क,

बिजली, पानी, यातायात, डाक, बैंकिंग, सुरक्षा, अस्पताल आदि को भी सम्पादित करने के लिए भी बहुत सारे लोगों की आवश्यकता होगी। इसमें भी 200 से भी अधिक लोगों की लगातार आवश्यकता होगी।

अभी उपर हमने जो हिसाब लगाया है वो 10,000 नागरिकों के हिसाब से लगाया है। जिसमें हमें केवल 1666 लोगों को ही रोजगार देना है परन्तु आप समझ रहे होंगे कि हमारे पास 4000 लोगों से भी ज्यादा का रोजगार है। हो सकता है कि कहीं मैंने कुछ ज्यादा बोल दिया हो तो भी कुल 1666 लोगों को ही रोजगार तो बन ही जायेगा। और फिर रोजगार जितना भी हो आपस में विभाजित हो जाना चाहिए ना। ऐसा थोड़े करना चाहिए कि कुछ लोगों को तो कई रोजगार दे दिये जायें और कुछ लोग रोजगार की प्रतीक्षा ही करते रहें। ये तो अन्याय ही होगा ना लोगों के साथ? तो फिर ये सरकारें, ये क्यों कह रही हैं कि इनके पास रोजगार नहीं है। इसका अर्थ है सरकारों के पास रोजगार की नीतियां सही नहीं है। जिसके कारण हमें हर बात की कमी हो जाती है। तो चलो हम अपनी नीतियों का पहले सही करें। थोड़े में समझें तो ये ही अर्थशास्त्र है। अब बस इसी को और अधिक व्याख्यायित करने की आवश्यकता है। अभीतक जितने भी अर्थशास्त्र चल रहे हैं वो सब न्याय की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। तो क्यों ना इन सबको अलग हटाकर एक ऐसे अर्थशास्त्र को जन्म दें, जोकि प्रत्येक दृष्टि से हर कसौटी पर खरा उतरे। मुख्य रूप से मनुष्य तीन प्रकार से सुख उठाते है। ज्ञान, कर्म और भोग। कुछ लोगों को ज्ञान में अधिक सुख मिलता है जैसे कि वैज्ञानिक या और कोई प्रकार के खोजी लोग या अध्ययन करने और कराने वाले लोग आदि। उनको कुछ भी जानने और खोजने में सुख मिलता है वो लोग लम्बे समय तक जानने या खोजने में लगे रहते हैं। उसमें उनकी गहरी रूचि होती है। इसी प्रकार कुछ लोगों को कर्म में मुख्यरूप से रूचि होती है। वे अपनी रूचि और योग्यता के आधार से लम्बे समय तक सुखपूर्वक कर्म करते रह सकते हैं और करते रहना चाहते हैं। और इसी प्रकार सभी अपनी रूचि के अनुसार विभिन्न भोगों को तो भोगते ही हैं।

तो इसका अर्थ ये हुआ कि ज्ञान करने में भी सुख है, कर्म करने में भी सुख है और भोगों को भोगने में भी सुख है। इसप्रकार ज्ञान, कर्म और भोग

तीनों अवस्थाओं में सुख ही सुख है यदि ये हमारी रूचियों के अनुसार है तो। और इन्हीं से दुख मिलेगा यदि ये हमारी रूचियों के विपरीत है तो। 25 वर्ष तक शिक्षित और प्रशिक्षित होकर किसी ना किसी कर्म या ज्ञान मं रूचि उत्पन्न हो ही जाती है और उसी रूचि के आधार पर आपको ज्ञान करने का या कोई कर्म करने का रोजगार सरकार आपको दे ही देगी। तो आपकी रूचि का कर्म या ज्ञान आपको मिल ही जायेगा। तो बस सभी प्रकार से आपका जीवन सुखी हो जायेगा। यनिकि आप सदैव सुख की अवस्था में ही बने रहेंगे।

मुद्रा का सही स्वरूप

जो व्यवस्था मैं देने जा रहा हूं, उसमें मुद्रा का कार्य केवल सरकार और लोगों के बीच में गणना करने के रूप में ही चलेगा। एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से मुद्रा का कोई भी लेन देन नहीं कर सकेगा। इसके अलावा सरकार अपनी व्यवस्था के अंदर जहां जहां वित्त संबंधि गणनाएं करने की आवश्यकता होगी तो वहां वहां वो मुद्रा का प्रयोग करेगी। जब भी कोई व्यक्ति सरकार से किसी वस्तु या सेवा की मांग करेगा तो सरकार उसकी मांग को संबधित विभाग में भेज देगी फिर संबंधित विभाग उस वस्तु का निर्माण कर देगा और वितरण विभाग मांग वाले पते पर भेज देगा। जब वह वस्तु उस व्यक्ति तक पहुंच जायेगी तो अपने आप उस वस्तु के मूल्य के बराबर मुद्रा उस व्यक्ति के खाते में घट जायेगी। सरकार इस प्रकार ही मुद्रा को जारी करेगा। ऐसा करने से कभी भी ना तो मुद्रा कम पड़ेगी और ना ही अधि ाक होगी। इस प्रकार सरकार के पास कभी भी धन की कमी नहीं होगी। आवश्यकता के अनुसार ही रहेगी। मुद्रा स्फीति या मुद्रा संकोच कभी नहीं होगा। वैसे भी मुद्रा हमारे जीवन में इसीलिए आयी थी कि इसके माध्यम से हम लेन देन आसान कर सकें। मुद्रा इस लिए नहीं आयी थी कि इस पर व्याज लगायें या धन से धन कमायें। मुद्रा का लेन देन के अलावा कोई

भी प्रयोग समाज में अन्याय को ही बढ़ाता है। जिससे समाज अपराधों और परिणाम स्वरूप भयंकर दुखों को प्राप्त होता जाता है। और वो दुख उस समाज के जीवन का अंग बन जाते हैं। अपराधों को जन्म देता है और उन्हें निरंतर बनाये रखता है। इसलिए मुद्रा का प्रयोग केवल और केवल गणनाओं के लिए ही किया जाना चाहिए। इस नयी व्यवस्था में मुद्रा का केवल यही स्वरूप एवं उपयोग रहेगा। और इसप्रकार का उपयोग तभी संभव है जबकि ये सरकार और लोगों के बीच हो और सरकार के द्वारा ही संचालित हो नाकि व्यक्ति के द्वारा। यदि इसका संचालन व्यक्तियों के बीच होगा तो इसका अन्याय वाला स्वरूप हो ही जायेगा। और सारा समाज लाभ और हानि के आधार से कार्य करने लगेगा जोकि इसका गलत प्रयोग होगा। समाज में दुख उत्पन्न करने वाला होगा। इसलिए केवल सरकार ही प्रयोग करेगी मुद्रा को भी। कोई व्यक्ति अपने मुद्रा का उपयोग स्वयं नहीं कर सकेगा। और ना ही उसे इसकी कोई आवश्यकता रहेगी। व्यक्ति को जो

चाहिए वो सरकार से मांग करेगा और सरकार उसे वो वस्तु या सेवा उपलब्ध करायेगी। सरकार प्रत्येक वर्ष सभी लोगों के खातों में उनकी सीमा के आधार

से धन डाल देगी। फिर सभी अपनी उस सीमा के आधार से अपनी ईच्छानुसार वस्तुओं और सेवाओं का सुख प्राप्त करते रह सकेंगे। व्यक्ति कभी भी देख सकेंगे कि उनके खाते की क्या स्थिति है। वो खुद से किसी और मनुष्य को अपना धन नहीं दे सकेंगे। सरकार ही उनके खाते को चलायेगी। प्रत्येक नये वर्ष में आपके बचे हुए ध ान में सरकार नया धन जोड़ देगी आपकी सीमा के आधार से। और इसी प्रकार आपका खाता सरकार के द्वारा व्यवस्थित होता रहेगा। उदहरण के लिए मान लिए कि धन की सीमा है 1 लाख रूपेय एक वर्ष के लिए। और आपने वर्तमान वर्ष में 90 हजार खर्च कर लिया। तो अगले वर्ष में सरकार आपको 1 लाख रूपेय और देगी। इस प्रकार अगले वर्ष के लिए आपके पास 1 लाख 10 हजार रूपेय होंगे खर्च करने के लिए। लेकिन इस धन का आप प्रयोग केवल सरकार से ही कुछ भी खरीदने के लिए ही कर सकते हैं। लोग आपस में कोई लेन देन नहीं कर सकेंगे। और ऐसा इसलिए किया जा रहा है क्योंकि यदि सरकार लोगों को मुद्रा का उपयोग करने की स्वतंत्रता देती है, तो सरकार को कभी पता नहीं चलेगा कि किस वस्तु या सेवा की कितनी मांग है क्योंकि लोग आपस में ही लेन देन करने लगेंगे और सरकार को पता चलने का कोई तरीका नहीं होगा। और यदि सरकार को मांग का ही पता नहीं होगा तो वो सही आपूर्ति का प्रबंधन कभी नहीं कर पायेगी। फिर तो लोगों को ही स्वयं प्रबंधन भी करना होगा जोकि सही से कभी नहीं हो सकता। और ऐसा तो अभी हो ही रहा है। वस्तुओं का मूल्य फिर से मांग और आपूर्ति के आधार से चलने लगेगा। लोग अधिक लाभ के चक्कर में कुछ ना कुछ हेरा फेरी करने लगेंगे जिसके कारण फिर कुछ के मूल्य इतने अधिक हो जायेंगे कि कम आय वाले लोग खरीद नहीं पायेंगे और कुछ का मूल्य इतना कम हो जायेगा कि उसे उसकी लागत मूल्य भी नहीं मिलेगी, जिससे समाज में भयंकररूप से आर्थिक असमानता रहेगी। हम उपर समझ ही चुके हैं कि आर्थिक असमानता समाज में सारी बुराईयों की जड़ है। हर खाद्य पदार्थ में मिलावट होने लगेगी अधिक लाभ लेने के चक्कर में। हर वस्तु एवं सेवा की क्वालिटी निम्न हो जायेगी। सभी प्रकार के प्रदूषण होने लगेंगे क्योंकि सरकार नियंत्रण कैसे करेगी जब उसको पता ही नहीं होगा कि कहां पर कौन मनुष्य क्या बना रहा है और

कौन खरीद रहा है। और फिर से मुद्रा ही महत्वपूर्ण हो जायेगी। फिर ये साधन नहीं बचेगी बल्कि साध्य बन जायेगी जिससे लोग मुद्रा से और मुद्रा कमाने का प्रयास करेंगे, एक दूसरे से प्रतिद्वंदिता हो जायेगी, सारा व्यवहार नकली हो जायेगा, प्रेम नहीं रहेगा आदि आदि। एक वाक्य में कहूं तो आज वाली स्तथि ही हो जायेगी समाज की। तो मुद्रा को स्वतंत्र कर देने से सब अनियमित और अनियंत्रित हो जाता है। जैसाकि अभी हो रखा है। मुद्रा के प्रयोग की स्वतंत्रता से सभी प्रकार के भ्रष्टाचार समाज में उत्पन्न होते रहते हैं लगातार। सरकार चाहे जितना रोकने की कौशिश करे पर वो रोक नहीं पाती। क्योंकि जिन लोगों को भ्रष्टाचार रोकने को सरकार नियुक्त करेगी वो भी तो आर्थिक असमानता के कारण भ्रष्टाचार करने को मजबूर हो ही जायेंगे। और सरकार को भी अगला चुनाव लड़ना है तो उसको भी तो पैसा चाहिए। वो भी भ्रष्टाचार से ही सम्भव है। और सब तो समृद्ध जीवन जीना चाहते ही हैं। और इसमें कुछ गलत भी नहीं है कि लोग समृद्ध जीवन जीना चाहते हैं। उसके लिए जो भी प्रयास उनसे बन पड़ता है वो करते हैं। तो हम समझ सकते है कि मुद्रा को स्वतंत्र करने के कितने भयाभय परिणाम होते हैं। और ये सब हम अपने अनुभव से भी जानते ही हैं। आर्थिक समानता तभी हो सकती है जब मुद्रा का संचालन समाज करे नाकि व्यक्ति। और समाज का अर्थ यहां सरकार ले रहे हैं हम लोग। समाज ही सरकार को नियुक्त कर रहा है व्यवस्था को बनाने और उसका संचालन करने के लिए। जिस भी व्यक्ति को जो कुछ भी चाहियेगा वो सरकार को आनलाईन मांग करेगा अपने प्रोफाइल से और खुद ही उसकी मांग संबंधित विभाग में चली जायेगी। संबंधित विभाग उसका निर्माण करके वितरण विभाग को भेज देगा। वितरण विभाग उसको मांग वाले पते पर पहुंचा देगा। इसी प्रकार सब लोग सरकार से सभी वस्तुओं या सेवाओं की मांग करते रह सकेंगे और प्राप्त करते रह सकेंगे। यदि किसी को अपनी कोई पुरानी वस्तु बेचनी है तो वह सीधे सरकार को बेच सकता है और जिसको भी वो पुरानी वस्तु खरीदनी है तो सरकार से खरीद सकता है। ऐसी वस्तुओं को सरकार मूल्य के साथ आनलाईन डालकर रखेगी। जिसे आवश्यकता होगी वो उसकी मांग सरकार से कर सकता है। इस प्रकार पुरानी वस्तुओं की खरीद और बिक्री लोग

करते रह सकते हैं। तो इस प्रकार सरकार आर्थिक समानता बनाये रख सकती है मुद्रा का संचालन करते हुए भी। कुछ लोग ऐसा भी बोलते हैं कि ये मुद्रा ही सारी समस्याओं की जड़ है। पर ऐसा नहीं है। मुद्रा तो एक साधन है, सुविधा है लेन देन को आसान करने का। ये ऐसे ही है जैसे कि कोई कहने लगे कि ये जो सब्जी काटने का चाकू है, ये ही समस्याओं की जड़ है क्योंकि बार बार इससे हाथ कट जाता है। पर यदि आप चाकू को जीवन से हटा देंगे तो हम और अधिक परेशान हो जायेंगे। तब खाना बनाना बहुत ही मुश्किल होगा और अधिक समय लेगा। जबकि करना ये है कि चाकू तो हमारे जीवन में रहे पर उसे ठीक से चलाएं और उसे उस प्रकार बनाया जाये ताकि असावधानी में भी वो हमें घायल ना कर सके। इसी प्रकार मैंने मुद्रा को रखा है, पर उसका स्वरूप और उसका संचालन ऐसा कर दिया है कि जिससे केवल लाभ ही मिले समाज को, नाकि कोई हानि। आज की व्यवस्था में भी मुद्रा का चलन बंद करने पर इससे वस्तु विनिमय में बहुत कठिनाई हो जायेगी और वस्तु विनिमय की गति भी बहुत मंद हो जायेगी। जिससे लोग समय पर वस्तुओं को प्राप्त नहीं कर पायेंगे और सुखी नहीं हो पायेंगे और कठिनाई होने से दुख उत्पन्न होगा वो अलग। और इस पर सरकार का नियंत्रण भी नहीं रह सकेगा। क्योंकि सरकार कभी नहीं जान सकेगी कि लोग आपस में कितना और क्या लेनदेन कर रहे हैं। फिर उसे प्रबंधन भी लोगों पर ही छोड़ना होगा। फिर वो प्रबंधन नहीं कर पायेगी। और फिर से आर्थिक असमानता होगी और सारी समस्याएं फिर से उत्पन्न हो जायेगी आज की तरह ही। समाज आज से 100 साल पीछे चला जायेगा। सरकार तो सही से चल ही नहीं पायेगी। बड़ी खोजें नहीं हो पायेंगी। सामाजिक सुविधाएं बहुत ही सीमित होकर रह जायेंगी। ऐसा समझ लो कि राजाओं के समय में जो समाजिक अवस्था थी वो ही अवस्था वर्तमान समाज

की हो जायेगी। इसलिए मुद्रा को बंद करने से तो कोई लाभ नहीं होगा। उल्टा सारे विकास की गति धीमी हो जायेगी। जब सरकार का नियंत्रण रखना ही है तो मुद्रा के सम्पूर्ण चालन में भी क्यों ना रख दिया जाये ताकि मुद्रा का लाभ भी मिले और उससे कोई दुख भी उत्पन्न ना हो। तो ये तरीका सही है कि मुद्रा भी रहे पर उसका कोई दुरपयोग ना हो सके।

केवल उसका लाभ ही समाज को मिले। और वो तरीका मैंने उपर बताया है। किसी को और अच्छा तरीका सूझे तो कृपया मुझे सूचित करें। वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य एक ही मापदण्ड से तय किया जायेगा नाकि आज की तरह। तो इस व्यवस्था में तो किसी भी वस्तु का मूल्य हमेशा एक जैसा ही बना रहेगा। मांग और आपूर्ति के आधार पर तय ही नहीं होगा। इस

क्रोध, लोभ, मोह, अपराध और अशांति पैदा ही नहीं होंगे।

- समान जीवन स्तर होने के कारण सबको समानरूप से ही सभी कुछ इच्छानुसार ज्ञान, कर्म और भोग प्राप्त होते रहेंगे सदैव।
- इससे ये होगा कि किसी को कोई क्रोध पैदा नहीं होगा। क्योंकि क्रोध तो किसी पर तभी आता है जब किसी की इच्छापूर्ति में कोई रूकावट बनें।
- जब क्रोध ही पैदा नहीं होगा तो हमारे जीवन में अहिंसा अपने आप ही आ जायेगी। युद्ध भी नहीं होंगे। आतंकवाद भी नहीं होगा किसी भी तरह का।
- लोभ भी पैदा नहीं होगा क्योंकि लोभ तो तब पैदा होता है जबकि हमें ये लगता हो कि पता नहीं कल मिलेगा कि नहीं अर्थात वस्तुओं की मांग से यदि आपूर्ति कम हो तो।
- मोह भी पैदा नहीं होगा क्योंकि आवश्यकता होने पर सबकी पूर्ण देखभाल होने की व्यावस्था रहेगी। मेरे बच्चे ही मेरी देखभाल करें ये कोई आवश्यक नहीं रहेगा। जिन्हें अपने बुजुर्गों की देखभाल में सुख मिलता है वो देखभाल करेंगे। नहीं तो सरकार की भी पूर्ण व्यवस्था रहेगी उनकी देखभाल की।
- जब हमारी इच्छानुसार हमें ज्ञान, रोजगार, भोग और सभी सुख सुविधाएं मिलती रहेंगी तो हमारे जीवन में शांति सदैव बनी ही रहेगी। उसके लिए अलग से कुछ करने की जरूरत नहीं होगी।
- इन सब बातों के लिए किसी ध्यान, मंत्र जप, त्याग, तपस्या, पूजा, प्रार्थना, टोने, टोटके आदि की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी ये सब बातें स्वभाविक रूप से व्यवस्था के परिणाम स्वरूप अपने आप ही सभी के जीवन में सदैव बनी रहेंगी। जीवन में कोई अपराध होने की सम्भावना ही समाप्त हो जायेगी क्योंकि कोई कारण ही नहीं रहेगा।
- और यदि कोई करना भी चाहेगा तो कर नहीं पायेगा क्योंकि व्यवस्था में स्थान ही नहीं होगा ये सब करने का। अर्थात चाहकर भी कर नहीं पायेगा।

व्यवस्था में तो कभी भी मंहगाई नाम की चीज ही नहीं होगी। सभी का जीवन स्तर एकसमान ही होगा। और बाजार में मांग करने के लिए धन की अनिवार्यता नहीं रहेगी क्योंकि सरकार आपको पहले से ही पर्याप्त धन देकर

रखेगी। यदि सरकार को वर्ष में कभी भी लगता है कि धन की सीमा को बढ़ाना चाहिए तो वो बढ़ा सकेगी। और जब समाज में एक साम्यावस्था आ जायेगी तो सम्भवतः धन की कोई सीमा रखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। जब समाज पुरानी व्यवस्था से इस नयी पूर्ण स्वतंत्रता वाली व्यवस्था में स्थित होंगे तो पुराने खराब अनुभवों के कारण लोग अनावश्यक वस्तुओं की मांग करना चाहेंगे, जिससे कि एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो जायेगी। उससे बचने के लिए मांग पर कुछ समय तक नियंत्रण रखना आवश्यक होगा। उसके बाद तो जिसको जो वस्तु या सेवा चाहिए वो ले और अपना सुखी जीवन जीये। फिर इस प्रकार के नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहेगी। वैसे भी अधिकतम वस्तुए और सेवाएं तो फ्री ही प्राप्त होती रहेंगी सबको।

वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य की गणना

हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य मांग और आपूर्ति के आधार पर तय नहीं होना चाहिए। वस्तुओं या सेवाओं का मूल्य किसी एक न्यायकारी मापदण्ड से ही तय होना चाहिए। जैसे कि हम मान लेते हैं कि 1 घंटे का श्रम बराबर 1 मुद्रा के। अब किसी वस्तु के निर्माण होने में एवं आप के पास तक वितरित करने में जितना घण्टे श्रम लगा। तो मान लिया कि एक वस्तु 2 घंटे के श्रम से बनी और वितरित हुई तो उस वस्तु का मूल्य 2 मुद्रा हुआ। अब जोकि सामाजिक सुविधाएं हम सब फ्री में प्रयोग करेंगे। और सभी प्रकार के श्रम का मुल्यांकन करना सम्भव भी नहीं होता। जैसे बौद्धिक श्रम का मुल्यांकन करना सम्भव भी नहीं है। अब चूंकि इस नयी व्यवस्था में सभी प्रकार के श्रम का मुल्यांकन समान ही होगा। इसलिए ऐसी वस्तुओं अथवा सेवाओं का मुल्यांकन उस श्रम के आधार से ही होगा जिसका कि मूल्यांकन सम्भव है। और इसका तरीका ये है। मान लिया कि एक बढ़यी एक घंटे में एक कुर्सी का निर्माण करता है। तो हर रोज वो 5 कुर्सियों का निर्माण कर लेगा। और इस प्रकार से एक माह में 100 धंटे के कार्य के फलस्वरूप वो 100 कुसिंयों का निर्माण कर लेगा। यदि सप्ताह में केवल 5 दिन ही कर्म करेगा तो। तो इस प्रकार उस बढ़ई का वेतन हुआ 100 मुद्रा प्रतिमाह। अब इसको आधार मानकर सभी के रोजगार का वेतन

होगा 100 मुद्रा प्रतिमाह। अब ऐसे लोग जोकि सरकार के अंतर्गत ऐसे कार्यों का निस्पादन करेंगे जोकि सभी के लिए फ्री होंगे, जैसेकि सड़क, बिजली, पानी आदि। तो ऐसे सभी लोगों का भी वेतन 100 मुद्रा प्रतिमाह मान लिया जायेगा। अब मान लेते हैं कि सरकार में 1000 लोग कार्य कर रहे हैं। तो प्रत्येक माह इन सबका वेतन होगा 100000 मुद्रा। यानिकि सरकार का प्रतिमाह कुल खर्चा होगा 100000 मुद्रा। तो सरकार इस खर्चे को उन सभी वस्तुओं और सेवाओं पर बराबर से जोड़ देगी। जैसे मान लेते हैं कि 100000 मुद्रा के श्रम से वस्तुओं और सेवाओं का निर्माण हुआ। तो इसप्रकार बेचने वाली वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य होगा 100000 प्लस 100000 अर्थात 200000 मुद्रा। यानिकि 2 मुद्रा के श्रम में निर्माण और वितरण वाली कुर्सी का अंतिम मूल्य होगा 4 मुद्रा। तो इसप्रकार से वस्तुओं और सेवाओं का अंतिम मूल्य तय होता रहेगा। इस व्यवस्था में वेतन किसी को भी दिया नहीं जायेगा। लेकिन इसकी गणना अवश्य होगी जोकि व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सहयोगी होगी। जब सरकार किसी भी कार्य की कोई प्लानिंग करेगी तो सरकार के अंतर्गत आपसी व्यवहार में भी ये मूल्यांकन सहयोगी होगा। इस मुल्यांकन की सहायता से सरकार वस्तुओं के अनावश्यक मांग को नियंत्रण कर सकेगी। मशीन आदि जोकि कोई भी अंतिम निर्माण करने में प्रयोग की जायेंगी का मुल्यांकन भी इसी आधार से होगा। पूरी व्यवस्था में कहीं भी कोई समस्या है तो इन गणनाओं के माध्यम से उसे सरलता से जाना जा सकेगा और उसकी सरलता से व्यवस्था की जा सकेगी। तो कुल मिलाकर हम इस मुद्रा का प्रयोग समझ सकते हैं इस नयी व्यवस्था में। अंतिमरूप से मैं ये ही कहना चाहता हूं कि मुद्रा का प्रयोग इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर किया जायेगा जिससे सभी के जीवन में आवश्यक सरलता बढें, स्पष्टता बढ़े, पारदर्शिता बढ़े और कुल मिलाकर कहें तो सुख बढ़े और किसी भी प्रकार का दुख ना उत्पन्न हो। बाद में भी यदि कहीं कोई समस्या इस मुद्रा को लेकर होती है तो उसका समाधान भी इसी प्रकार कर दिया जायेगा। और यदि आपकी समझ में इससे अच्छा कोई उपाय है अथवा भविष्य में होगा तो वो सदैव स्वीकार्य रहेगा। इस प्रकार की व्यवस्था से क्या होगा कि सरकार को कोइ टैक्स आदि नहीं लगाना पड़ेगा। ना टैक्स इक्टठा

करने के लिए आपको कोई विभाग खोलना होगा। ना ही लोगों के पीछे आपको कोई पुलिस लगानी पड़ेगी। ना ही कोई पैसा लेकर भागेगा। ना ही किसी की जांच करनी होगी। सब कितना आसान हो जायेगा। प्राकृतिक संसाधन तो सभी के लिए पहले से समानरूप से निशुल्क हैं ही। तो ये बहुत ही सरल अर्थशास्त्र होगा जोकि किसी को भी आसानी से समझ आयेगा।

मान की गणना

मान सभी का समान ही होगा इस व्यवस्था में। सभी के खाते में एक समान ही धनराशि सरकार के द्वारा प्रत्येक वर्ष की प्रथम तिथि को डाल दी जाया करेगी। बच्चों की धनराशि उनकी आयु के आधार से तय होगी। जो 25 वर्ष से 50 वर्ष की आयु के होंगे वो रोजगार करेंगे। यदि वे चाहें तो अपने रोजगार का समय कम कर सकते हैं और उसी आधार से उनकी धनराशि की सीमा सरकार तय कर देगी। उदाहरण के लिये यदि सरकार 5 घंटे प्रतिदिन सामान्य समय निशचित करती है रोजगार के लिए। यदि सप्ताह में 5 दिन ही सरकार काम के लिए तय करती है तो इस हिसाब से एक आदमी एक माह में 20 दिन कार्य करेगा। यानिकि 100 घंटे कार्य करेगा। तो यदि कोई व्यक्ति कहता है कि मैं तो 3 घंटे ही कार्य करना चाहता हूं। और सरकार मेरी धनराशि की सीमा उसके अनुसार तय कर सकती है। उदाहरण के लिए यदि सरकार सबके लिए प्रति व्यक्ति 1 लाख की धनराशि की सीमा तय करती है प्रस्तावित वर्ष के लिए। तो इसके अनुसार 3 घंटे कार्य करने वाले की सीमा को सरकार 60 हजार तक सीमित कर देगी। वो व्यक्ति इस सीमा तक ही लाभ ले पायेगा। वैसे तो मेरी खोज के अनुसार ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होगा स्वभाविकरूप से जोकि पूरा कार्य ना करना चाहे। परंतु चूंकि अभी लोग सही व्यवस्था में नहीं जी रहे तो लगभव सभी लोग अस्वाभाविक जीवन जी रहे हैं इसलिए कई कारणों से कोई व्यक्ति कोई कार्य ही ना करना चाहे और समाज पर ही निर्भर रहना चाह सकता है। तो अभी जब हम इस गलत व्यवस्था से सही व्यवस्था में धीरे धीरे परिवर्तित होंगे तो इस प्रकार की समस्या आ सकती है। अभी प्रारम्भ में इतनी बाध्यता हम सभी को लेनी होगी कि या तो हम पूरी तरह से सहयोग करे व्यवस्था में और या अपने सहयोग के आधार से ही अपेक्षा

रखें व्यवस्था से। जैसे ही व्यवस्था पूर्णरूप से स्थापित हो जायेगी तो उस समय सरकार देखेगी कि अब क्या किया जा सकता है। और जब मैं कह रहा हूं कि सरकार देखेगी तो इसे ऐसा मानकर ही चलें कि जनता ही देखेगी, वही अंतिम निर्णय लेगी इस व्यवस्था में। ना कभी भी किसी वस्तु की कमी होगी क्योंकि मांग पहले ही ले ली

जा रही है जनता से। मांग के बाद ही किसी वस्तु का निर्माण हो रहा है तो अनावश्यक गोदाम बनाने कि आवश्यकता भी नहीं रहेगी। लगभग सारा सामान सीधे उपभोक्ता को उसके निवास स्थान पर ही भेज दिया जायेगा। किसी बड़े बाजार की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। लोगों के उपर कार्य का भार भी कम होगा क्योंकि सभी लोग कार्य कर रहे होंगे और कोई भी अनावश्यक कार्य नहीं रहेगा। इससे लोग इस बचे हुए समय में दूसरे प्रकार के व्यक्तिगत या पारिवारिक सुख प्राप्त कर सकेंगे। किसी भी वस्तु या सेवाओं का मुल्य लगभग निश्चित ही रहेगा। तो महंगाई या सस्ताई कभी नहीं होगी। कभी भी आपको कोई बार बार वेतन नहीं बढ़ाने होंगे। कोई महगाई भत्ते नहीं देने होंगे। किसान ये नहीं बोलेगा कि हमारी वस्तुओं का सही मुल्य नहीं मिल रहा। उपभोक्ता भी नहीं कहेंगे कि महंगाई हो गई। सबकुछ संतुलन में ही रहेगा। इसका अर्थ होगा कि एक बार जो तय हो जायेगा उसमें बदलाब करने की आवश्यकता ना के बराबर ही होगी। अभी तो क्या हो रहा है कि जनता और सरकार आपस में चोर पुलिस का खेल ही खेलते रहते हैं और सभी एक दूसरे को परेशान ही करते रहते हैं व्यवस्था के नाम पर। ये सब बन्द हो जायेगा इसकी कोई जरूरत भी ना रहेगी। क्योंकि खराब व्यवस्था में ही लोगों को चोर बनने को मजबूर होना पड़ता है। फिर सरकार को पुलिस रखने को मजबूर होना पड़ता है और सरकार का भी अनावश्यक खर्च बढ़ता है जोकि अंततः उपभोक्ता पर ही पड़ता है। इसलिए भाईयों क्यों ना हम सब व्यवस्था को ही सही कर लें। इसप्रकार से इस व्यवस्था में सभी का मान समान ही रहेगा। उसी की कोशिश मैंने इस पुस्तक में की है। इस पुस्तक में मैंने जो भी सैद्धांतिक बातें रखी हैं, वो मैंने अपनी दूसरी पुस्तक 'जीवन दर्शन' में विस्तार से लिखी हैं। उन्हें वहां अधिक

विस्तार से समझा जा सकेगा। इस पुस्तक में मैं व्यवस्था पर ही केंद्रित रहूंगा।

शासन के स्वरूप

इस संसार में शासन के चार रूप ही हो सकते हैं।

1. व्यक्तिगत
2. वंशगत
3. दलगत
4. लोकगत

व्यक्तिगत शासन का अर्थ है कि जब किसी एक ही व्यक्ति के अनुसार शासन व्यवस्था चलने लगती है। अर्थात् यदि व्यक्ति अच्छा है तो व्यवस्था कुछ हद तक अच्छी चलती है पर यदि बुरा है तो वो व्यक्ति पूरा नरक मचा देता है। पहले कबीलों में ज्यादातर व्यक्तिगत व्यवस्था ही होती थी। सरदार के थोड़ा सा कमजोर होते ही कोई और व्यक्ति आकर उसकी जगह सरदार बन जाता था। यहां शारीरिक बल ही सरदार होने की पात्रता मानी जाती है। व्यक्तिगत शासन में शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया जाता जिसके कारण ज्ञान विज्ञान का उदय नहीं होता। अतिसाधारण कृषि और मांसाहार पर ही सारे लोगों का जीवन निर्भर रहता है। हर बात का निर्णय बल के द्वारा ही होता है। बाजार नाम का कोई स्थान नहीं होता। जीवन हर तरह की असुरक्षा से भरा रहता है। जन्मदर बहुत ज्यादा रहने पर भी कभी जनसंख्या अधिक नहीं हो पाती, क्योंकि मृत्युदर भी काफी होती है। कोई सामाजिक सुखसुविधा नहीं होती। अर्थात् लोगों का जीवन लगभग जंगली पशुओं की तरह ही होता है, अधिकतम प्रकृति पर आधारित। वंशगत शासन में एक ही परिवार के लोग शासन करते चले जाते हैं जकतक कि कोई उन्हें बलपूर्वक हटा नहीं देता है। इसमें भी व्यक्तिगत जैसा ही परिणाम रहता है, बस थोड़ी उदारता की संभावना रहती है क्योंकि राजा अपनी अच्छी छवि बनाकर रखना चाहता है ताकि प्रजा उनके वंश को सहज ही स्वीकार करती रहे। और कुछ बहुत अलग नहीं होता। राजकार्य से जुड़े लोगों को हल्की फुल्की शिक्षा देने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। ताकि राजकार्य कुछ हद तक सही प्रकार से चल

सके। राज्य की सीमायें भी थोड़ी ज्यादा दूर तक हो जाती हैं। जोकि संगठनात्मक रूप से ही संभाली जा सकती हैं। इसमें हल्का फुल्का बाजार उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है। संगठनात्मकरूप से कार्य होने के कारण थोड़ा विकास कार्य भी प्रारम्भ हो जाता है। और विकास ही बाजार के नाम से जाना जाता है। लोग थोड़ा विषयात्मक होने लगते हैं। पहले की बजाय लोगों का जीवन थोड़ा ज्यादा सुखी होने लगता है। निश्चितरूप से व्यक्तिगत शासन की बजाय वंशगत शासन अधिक सुखमय होता है। लोगों की सुरक्षा भी बढ़ी होती है। सुखसुविधाएं भी प्रारम्भ होने लगती हैं। जीवन थोड़ा सा प्रकृति से उपर उठने लगता है। शिक्षा के कारण लोग सोचने समझने लगते हैं। सोचने समझने वाला एक वर्ग उत्पन्न होने लगता है। और लोकगत शासन की वकालत करने लगता है। धीरे धीरे लोकगत शासन आने लगता है। लेकिन वो वास्तव में लोकगत होता नहीं है। उसे हम दलगत शासन कह सकते हैं। क्योंकि उसमें दलों का शासन होता है नाकि लोक का। दलगत शासन में कई दल बन जाते हैं जोकि जनमत चुनाव की पद्धति से चुनकर शासन में आने लगते हैं। कभी कभी दलगत शासन से लोकगत शासन का भ्रम भी हो जाता है। इसमें प्रजा जनता हो जाती है। शासन वंश से निकलकर किसी एक समूह में चला जाता है। परंतु ध्यान से देखों तो दलगत में भी उपरोक्त दोनों बातें छुपे रूप में रहती हैं। दल में भी कोई एक

दल का प्रमुख होता है और यह व्यक्तिगत और वंशगत दोनों प्रकार से हो सकता है। दलों को जनता चुनती है इसलिए कोई कार्य जोकि जनता के

विपरीत परिणाम वाला हो उसे ये दल खुले तौर पर नहीं करते परंतु विपक्ष और दूसरे दलों के कारण असुरक्षा की भावना के चलते ये अपने दल को मजबूत बनाने में और दूसरे दलों को कमजोर करने में सारे सही और गलत तरीकों का प्रयोग करते हैं। ताकि दूसरा दल शासन में ना आ जाये। एक दल दूसरे दल को नीचा दिखाने के लिए हर संभव प्रयास करता रहता है। पहले दोनों प्रकार के शासन में जनता को कोई खास सुख नहीं मिलता पर दलगत शासन में दलों की आपसी प्रतिद्वंदिता के कारण जनता को सुखसुविधाएं बढ़ने लगती हैं। शिक्षा के स्तर में विशेष सुधार होने लगता है। तकनीकीरूप से ज्ञान विज्ञान अधिक होने लगता है। शिक्षा के कारण लोगों के सोचने समझने की क्षमता भी अधिक होने लगती है। कुछ समय के बाद जब दलगत शासन का उच्चतम बिंदु आ जाता है तो दलगत शासन की कमियां भी उजागर होने लगती है। दिखाई देने लगता है कि सारे दल अपने आप को ही शक्तिशाली बनाने में लगे रहते हैं। इस कारण जनता का लाभ दूसरे पायदान पर चला जाता है। एक समय आता है जबकि इस दलगत शासन व्यवस्था से जो विकास होना था, हो चुका होता है। अब विकास की धारा और आगे जाती हुई दिखाई नहीं पड़ती। क्योंकि हर शासन व्यवस्था में विकास का अपना एक चरम बिंदु होता है। उस व्यवस्था में उससे अधिक विकास सम्भव नहीं होता। उदाहरण के लिए कम्पयूटर में प्रत्येक आपरेटिंग सिस्टम और हार्डवेअर सिस्टम की अपनी एक क्षमता होती है कि वह किस सीमा तक के सॉफ्टवेअरस को सही से चला सकता है। इससे अधिक की मांग होने पर आपको अपने आपरेटिंग सिस्टम और हार्डवेअर सिस्टम को और अधिक विकसित करना होता है। तभी आप और अधिक जटिल कार्यों को सरलतापूर्वक कर पाते हैं। पूराने सिस्टम से वह सम्भव नहीं हो पाते। इसीप्रकार शासन व्यवस्था भी अधिक विकसित करनी होती है, तभी हम और अधिक बड़े स्तर के विकास कर पाने में सक्षम हो पाते हैं। हम सभी अधिक से अधिक सुखसुविधाएं ही तो चाहते हैं ना, ताकि हम अधिक से अधिक सुखी हो सकें। जिस प्रकार बाजार में कोई ज्यादा सुख देने वाली वस्तु आते ही हम उसे अपनी अपनी क्षमतानुसार बिना कोई हठधर्मिता दिखाते हुए तुरंत खरीद लेते हैं और प्रयोग में लाकर सुखी होते हैं। औरों को भी बताते है कि

अच्छी वस्तु है आप भी खरीदो और सुख प्राप्त करो। उसीप्रकार यदि हमें कोई विकसित शासन व्यवस्था देता है तो बिना कोई हठधर्मिता दिखाते हुए उसे लाने के लिए जरूरी कदम उठाने चाहिए। और सभी को इसमें अपनी क्षमतानुसार सहयोग देना चाहिए। अब इस समय दलगत शासन व्यवस्था चल रही है और यह अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। विकास बाधित सा दिखने लगा है। दलों के अधिकांश नेता भ्रष्ट दिखाई देने लगे हैं। अब इस व्यवस्था के द्वारा और अधिक विकास की सम्भावनाएं दिखाई नहीं पड़ रही है। अब निश्चितरूप से इससे आगे की लोकगत व्यवस्था लाने का समय आ गया है। मैं उसी व्यवस्था को लिपिबद्ध कर रहा हूं ताकि इस पर आप सभी सोच समझकर निर्णय कर सकें। यदि आपको लगता है कि हां मैं सही कह रहा हूं तो आगे बढ़कर अपनी क्षमतानुसार मेरा साथ दें ताकि हम सभी अधिकतम सुखी हो सकें बिना विलम्ब किये। लोकगत शासन व्यवस्था में कोई दल नहीं होते। वहां सबसे पहले आपकी वरीयता देखी जाती है, फिर आपकी वरीयता के आधार पर आपको कर्म निभाने का अवसर मिलता है। अधिकार सबके समान होते है। जहां ना कोई शिक्षा से वंचित होता है, ना कोई रोजगार से वंचित होता है, ना कोई सुविधाओं से वंचित होता है, और ना कोई सुरक्षा से वंचित होता है। लोकगत शासन व्यवस्था जब अपने चरम बिंदु पर पहुंचती है तब वहां जिसको जिस वस्तु की इच्छा होती है वह सहज ही उपलब्ध हो जाती है। जिस कारण वहां दुख नाम का शब्द केवल किताबों में ही रह जाता है। जीवन में कहीं दुख दिखाई नहीं पड़ता। 6 से 20 वर्ष तक की उम्र में सभी बच्चों को एकसमान शिक्षा प्रणाली के अनुसार उनके व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए बिना फेल किये पूर्ण शिक्षा मिलेगी। चार विषयों जिसमें भाषा, गणित, संज्ञान और दर्शन होंगे। और एकसमान शिक्षा होगी। जो बच्चा अपने व्यक्तित्व को जितना विकसित कर लेगा उसे उसकी वरीयता एवं उसकी रूचि के अनुसार किसी एक कर्म को निभाने के लिए 5 वर्ष का प्रशिक्षण मिलेगा। और जब वह 25 वर्ष का पूर्ण शिक्षित एवं प्रशिक्षित हो जायेगा तो उसे उसके विद्यालय के अंतिम दिन ही उसे एक रोजगार देकर भेजा जायेगा। ताकि अगले दिन से वह अपना रोजगार प्रारम्भ कर सके। सारी सुखसुविधाएं समानरूप से सभी के लिए विकसित की

जायेंगी। सारे क्षेत्र एक समानरूप से विकसित होंगे ताकि लोग एक जगह से दूसरी जगह सुखसुविधाओं के लिए भाग दोड़ ना करें और किसी एक स्थान पर जनसंख्या घनत्व ना बढ़ायें। सभी को समुचितरूप से सुरक्षा मिलेगी। इसप्रकार जीवन का कोई आयाम ऐसा नहीं रह जायेगा जोकि समाधान को प्राप्त नहीं हो जायेगा। मैंने लोकगत शासन व्यवस्था ही लिख रहा हूं। फिर इसके बाद किसी और प्रकार की शासन व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। शासन व्यवस्था का ये अंतिम प्रकार होता है। मेरा समझना है कि जितना मैं उपर समझा चुका हूं इतने से आपको ये समझ आ गया होगा कि सबको सुखी करना कोई कठिन कार्य नहीं है। ये केवल नीतियों की बात है। नीतियां जितनी सही होंगी उतना सुख बढ़ता जायेगा एवं आसान भी होता जायेगा। नीतियां यदि पूर्णरूप से सही हों तो पूर्ण सुख आ ही जायेगा और अधिकतम आसानी भी होती जायेगी। सही नीति से श्रम कम होता जाता है और आसान भी होता जाता है एवं भोग अधिक होते चले जाते हैं। और इन सभी कारणों से सुख अधिक से अधिकतम होता चला जाता है। जोकि इस व्यवस्था और हमारे जीवन का परम उद्देश्य है।

•••

अध्याय–11

लोकगत शासन के लाभ

इस लोकगत शासन में शक्ति का केंद्र सदैव ही जनता रहेगी। एवं व्यवस्था का नेत्रत्व सदैव ही योग्य लोगों के हाथ में रहेगा। क्योंकि यदि 10 प्रतिशत जनता भी किसी नेता के कार्य से संतुष्ट नहीं है तो जनता उस नेता को पुनः चुनाव में भेज सकती है। इस कारण सभी नेताओं को ये ध्यान रखना होगा कि सारी जनता उनके कार्य से संतुष्ट रहे। इस व्यवस्था में प्रति व्यक्ति का संतुष्टि का सूचकांक होगा जोकि सीधे जनता के द्वारा ही दिया जाता रहेगा। जिससे सदैव ही ये पता चलता रहेगा कि कितने लोग संतुष्ट हैं व्यवस्था से और कितने नहीं। नेताओं को कोई भी नीति बनाते समय ये ही ध्यान रखना होगा कि उस नीति से सभी का लाभ हो। दूसरा, नेता लोग जो भी निर्णय करेंगे वो सारे निर्णय और उनके कारण और उनकी व्याख्या सबकुछ इंटरनेट पर रहेगी। अर्थात जनता कभी भी इंटरनेट पर कोई भी जानकारी देख या पढ़ सकेगी। वो समझ सकेगी कि कौन सी नीति या निर्णय नेताओं ने लिये हैं और क्यों लिए हैं। उनसे सभी का क्या लाभ है आदि आदि। नेताओं की सभी नीतियां और निर्णय पारदर्शी रहेंगे जनता के लिए। सरकार और जनता के बीच कोई दीवार ना होने के कारण किसी भ्रम की स्थति उत्पन्न नहीं होगी। सबकुछ साफ साफ रहेगा। सारी सुख सुविधाएं तो सभी के लिए एक जैसी ही रहेंगी और अधिकतम रहेंगी। तो अलग से किसी को अपने लिए या अपने परिवार के लिए कुछ करने की आवश्यकता होगी नहीं। अर्थात कोई भ्रष्टाचार के लिए ना तो मजबूरी होगी और पारदर्शिता होने के कारण ना ही करना सम्भव होगा। तो इस व्यवस्था का सबसे बड़ा और मुख्य लाभ ये होगा कि नेता लोग कभी भी निरंकुश नहीं हो सकेंगे। वो कभी भी अपने उत्तरदायित्व में आलस्य नहीं दिखा सकेंगे। और इसीप्रकार कोई भी व्यक्ति अपने किसी कर्म में आलस्य नहीं दिखा सकेगा। यदि करने का प्रयास भी करेगा तो जनता को उसका पता साफ साफ चलेगा। क्योंकि सभी के कर्म इंटरनैट पर पड़े होंगे, जिन्हें कोई भी कभी भी देख सकेगा। ऐसा नहीं है कि उसके लिए आर टी आई लगानी होगी। कभी भी कोई

इंटरनैट पर देख सकेगा। सभी को चाहे वो नेता ही क्यों ना हो उनको उनकी रूचि का कार्य ही उनकी योग्यता आदि के आधार पर दिया जायेगा। जिस कारण उस कार्य को करने में उनको सुख की प्राप्ति होगी। इस कारण भी किसी को अपने कार्य में आलस्य स्वभाविकरूप से नहीं रहेगा। क्योंकि जिससे हमें सुख होता है, उस कार्य को तो हम सभी बिना वेतन के भी करने को तैयार रहते हैं।

रूचि का कार्य होने के कारण एवं उस कार्य से संबंधित शिक्षित एवं प्रशिक्षित होने के कारण उच्च गुणवत्ता के ही प्रोडक्टस, सेवाएं एवं सुख सुविधाओं का ही निर्माण होगा। जिन्हें सभी भोगकर सुखी एवं सुंतुष्टि को प्राप्त होंगे। जो व्यक्ति जो भी ज्ञान पाना चाहेगा अपनी रूचि से, वो पा सकेगा। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हम सभी अपनी इच्छा का ज्ञान, कर्म और भोग पा सकेंगे। इससे प्रत्येक स्तर पर सभी सुखी रहेंगे सदैव। चूंकि सभी का मान समान ही होगा तो ज्ञान और कर्म का चुनाव करते समय हमें केवल अपनी रूचि का ही ध्यान रखना होगा। नाकि आज की तरह ये सोचना पड़ेगा कि भाई मेरी रूचि तो वाहन का चालक बनने की है परंतु आज तो वाहन चालक का वेतन बहुत ही कम होता है, दूसरे रोजगारों की तुलना में। अब यदि मैं अपनी रूचि के अनुसार चलता हूं तो मैं सभी भोगों को भोग नहीं पाउंगा, वेतन कम होने के कारण। और यदि कोई अधिक वेतन के रोजगार के बारे में प्रयास करता हूं, तो उसमें रूचि ना होने के कारण उसमें मैं अपना सर्वाधिक योगदान नहीं कर पाउंगा। जिस कारण उसमें सफलता भी निश्चित नहीं होगी। और यदि बहुत दुख उठाकर या आरक्षण के कारण मैं उसमें कुछ स्तर तक सफल हो भी गया तो उस रोजगार को पाकर भी मैं प्रसन्न नहीं हो पाउंगा। क्योंकि उसमें मेरी रूचि नहीं है। उस रोजगार को अनमने ढंग से करूंगा जिससे दूसरे लोगों को संतुष्ट नहीं कर पाउंगा और उनके कोप का भाजन भी बनूंगा। इसप्रकार वेतन तो अधिक पा लूंगा और अधिक भोगों को भोग लूंगा, परंतु जीवन में पूर्ण संतुष्टि नहीं मिलेगी। क्योंकि मेरे पास मेरे रूचि का ज्ञान और कर्म नहीं होगा। क्योंकि अधिकतम लोग भी यही कर रहे होंगे तो वे भी उच्च गुणवत्ता के भोगों का निर्माण नहीं कर रहे होंगे मेरी तरह ही। इसप्रकार मुझे भी उच्च वेतन पाने

वावजूद उच्च गुणवत्ता के भोग नहीं मिल पायेंगे। तो उच्च गुणवत्ता के भोगों का सुख भी नहीं मिल पायेगा। यानिकि भोग सारे मिलावटी होंगे। सभी का वेतन एकसमान ना होने के कारण मेरे दूसरे सगे संबंधियों को भी जब मैं दुखी देखूंगा, तो उस कारण भी मैं दुख का ही अनुभव करूंगा। क्योंकि सभी अपने आस पास भी सबको सुखी ही देखना चाहते हैं। तो मेरा कहने का आशय यही है कि यदि किसी प्रकार कुछ लोग अधिक भोगों को पा भी लेंगे तो भी उनके दूसरे दुखों का कोई समाधान नहीं होगा इस असमान अर्थवाली व्यवस्था में। इसीलिए जबतक सभी का आर्थिक स्तर समान नहीं होगा, जबतक सभी का मान समान नहीं होगा, तब तक हमारे लिए सभी दुखों के दरवाजे खुले रहेंगे। इसी असमान आर्थिक स्तर वाली किसी भी व्यवस्था में सभी लोग दुखों को ही प्राप्त होते हैं चाहे वो धनी हो या निर्धन, अच्छा हो या बुरा, उंचे पद पर हो या नीचे पद पर या बिना पद का। यानिकि व्यवस्था यदि सही नहीं है तो सभी प्रकार के लोगों का दुखी रहना तय है। उसी प्रकार यदि व्यवस्था सही हो तो सभी प्रकार के लोगों का सुखी होना तय ही है। इसप्रकार कुल मिलाकर व्यावस्था ही मुख्य कारण हैं हमारे सुखी अथवा दुखी रहने का। इसलिए हम सभी लोगों को दुखों के लिए एक दूसरे पर आरोप प्रतियारोप लगाने के स्थान पर सही व्यवस्था को लाने के लिए प्रयास करना चाहिए। सबके पास उनकी इच्छा का ज्ञान, कर्म और भोग रहने से व्यक्तिगत रूप से सभी सुखी रहेंगे। आपस में लड़ाई झगड़े का कोई कारण नहीं रह जायेगा। इससे हमारे संबंध मधुर हो जायेंगे। पारिवारिक सुखों की प्राप्ति होती रहेगी। हमें एक दूसरे से असत्य बोलना भी नहीं होगा तो इससे सभी का सबमें भरोसा बना रहेगा। प्रतिद्वंदिता भी कभी हम लोगों के बीच उत्पन्न नहीं होगी क्योंकि उसके लिए कोई कारण नहीं रहेगा।

व्यक्तिगत सुखों की प्राप्ति

हमें हमारी रूचि के अनुसार ज्ञान, कर्म, भोग, विश्राम आदि सभी सुख सुविधाएं सदैव मिलती रहेंगी। और आवश्यकतानुसार सुरक्षा आदि भी मिलती रहेगी सदैव। सभी बच्चों का पूरा लालन–पालन, शिक्षण–प्रशिक्षण 25 वर्ष तक सरकार ही निर्वहन करेगी चाहे बच्चे अपने माता पिता के साथ रह रहे

हों या उनसे अलग सरकार के पास। इस नीति का लाभ ये होगा कि सभी बच्चों का जीवन एक ही मापदण्ड वाला होगा। कोई बच्चा अपने आपको ना तो किसी दूसरे बच्चे से महान अनुभव करेगा और ना ही तुच्छ क्योंकि सभी का जीवन समान आर्थिक स्तर वाला होगा। बचपन से ही कोई बच्चा अपनी तुलना किसी दूसरे बच्चे से कदापि नहीं कर सकेगा। और ना ही बड़े लोगों को भी तुलना करने का कोई कारण रहेगा। कोई भी बच्चा किसी भी विषय को चुने और उसमें कितना भी अध्ययन करे, सारी स्थतियों में उसका मान बराबर ही होगा। ना किसी का कम और ना किसी का अधिक मान होगा। सभी विषयों का मान समाज में बराबर ही होगा। इससे बच्चों के बीच प्रतिद्वंदिता उत्पन्न नहीं होगी, एक दूसरे से बड़ा होने का या छोटा होने का भाव नहीं उत्पन्न होगा, एक दूसरे से ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होगी, एक दूसरे में शत्रुभाव उत्पन्न नहीं होगा, किसी दूसरे की वस्तु को चुराने का भाव उत्पन्न नहीं होगा, अनावश्यक संग्रह करने का भाव उत्पन्न नहीं होगा, माता–पिता और दूसरे सगे संबंधियों के लिए हीन भावना या उच्च भावना उत्पन्न नहीं होगी आदि। जब कोई नकारात्मक भाव ही उत्पन्न नहीं होगा तो इन भावों से संबंधित विचार भी उत्पन्न नहीं होंगे और इसीप्रकार इन भावों और विचारों से संबंधित कर्मों का उदय भी नहीं होगा। क्योंकि नकारात्मक ईच्छाओं के उत्पन्न होने के लिए जो कारण होते हैं, वो इस नयी व्यवस्था में उत्पन्न ही नहीं होंगे। कुल मिलाकर सभी बच्चों में एक दूसरे के लिए समता का भाव स्वभाविकरूप से आजीवन रहेगा। जब वो शिक्षा और प्रशिक्षण लेकर 25 वर्ष के हो जायेंगे तो समाज में उनका मान रोजगार स्वरूप स्थापित हो जायेगा। क्योंकि उनकी योग्यता आदि और रूचि के अनुसार उनको एक रोजगार प्राप्त हो जायेगा। जिसका जो भी रोजगार होगा वो ही उनका मान होगा। उदाहरण यदि कोई बाल काटने का कार्य करेगा तो लोग उसे नाई के रूप में जानेंगे और जो कोई खेती का कार्य करेगा तो उसे लोग कृषक के रूप में जानेंगे, इसी प्रकार सभी रोजगार के बारे में समझ लेना चाहिए। लेकिन विभिन्न प्रकार के मान होते हुए भी सबका मूल्य समान ही होगा। अर्थात सभी विभिन्न प्रकार के मान एकसमान मूल्य वाले ही होंगे। यानिकि रोजगार कोई भी हो पर उससे सबको समान जीवन स्तर ही मिलेगा। तो विभिन्न

मान भी समान ही होंगे। तो हम कह सकते हैं कि सभी रोजगारों का मान समान ही होगा। और जो लोग रोजगार भी नहीं कर रहे होंगे वो भी समान मान ही पायेंगे जीवन में। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि हमारे पास कोई कारण नहीं होगा किसी पर क्रोध करने का, लोभ करने का या मोह करने का। क्योंकि क्रोध तो तब आता है, जब कोई हमारी ईच्छापूर्ति में बाध ाक बनता है, लोभ तब उत्पन्न होता है, जब समय से हमारी ईच्छापूर्ति नहीं होती या भविष्य के प्रति असुरक्षा की भावना होती है, कि पता नहीं हमारी ईच्छापूर्ति कब होगी याकि होगी भी कि नहीं। और मोह तब उत्पन्न होता है जब हम किसी पर आश्रित होते हैं और सोचते हैं कि ये मेरा पिता या मेरा भाई या मेरा बेटा या मेरा पति अभी या बुढ़ापे में मेरी सेवा करेंगे, इस कारण से उनसे हमें मोह उत्पन्न होता है। इस व्यवस्था में कोई भी किसी अपने सगे संबंधियों पर किसी भी व्यक्तिगत सुख के लिए आश्रित नहीं रहेंगे, समय से सभी को उनकी ईच्छापूर्ति होती रहेगी, किसी की ईच्छापूर्ति में कोई दूसरा बाधक नहीं बनेगा क्योंकि इन सबका कोई कारण ही नहीं है व्यवस्था में, ये हम सब समझ ही रहे होंगे।

शुद्ध एंव उच्च गुणवत्ता वाले भोजन की प्राप्ति

स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध और उच्च गुणवत्ता वाला भोजन बहुत ही महत्वपूर्ण है, ये तो हम सभी जानते ही हैं। यदि लगातार खराब भोजन मिले तो हमारा स्वास्थ और हमारी आयु बहुत तेजी से घटती जाती है। हमारा सारा धन और समय भी केवल बीमारियों से लड़ने में ही खर्च होने लगता है और बस फिर मौत का ही इंतजार होने लगता है। आसपास भी सभी लोग दुखी होने लगते हैं और वो भी डरने लगते हैं कि जल्दी ही उनकी भी ऐसी ही खराब स्थति होने वाली है। इस सबको समझने के लिए हमें ये समझना होगा कि भोजन में किन किन स्तरों पर मिलावट होती है और क्यों होती है। और इस नये सिस्टम में ऐसा क्या होगा जिससे ये मिलावट नहीं हो सकेगी। आओ समझें। आज के असमान आर्थिक स्थिति वाली आर्थिक व्यवस्था में अधिकतम लोगों को खुद ही अपना रोजगार करके धन की व्यवस्था करनी होती है। सभी की आय भी असमान ही रहती है। विशेष रूप से जो भोजन से संबंधित वस्तुओं का निर्माण या वितरण करते हैं। वे अपने लाभ के लिए

भोजन सामग्री में अशुद्धि मिलाते चले जाते हैं। जिससे उनको अधिक धन प्राप्त करने का अवसर मिलता है। इसप्रकार से भोजन में अशुद्धि की मिलावट प्रारम्भ होती है। क्योंकि उनका भी अपना परिवार है, जिनका जीवन वो बहुत अच्छा कर लेना चाहते हैं। क्योंकि सभी अपने परिवार को बहुत प्रेम करते हैं। परिवार के सुख के लिए उनको धन चाहिए होता है। और धन आने का तरीका उनके पास ये ही है कि वो कुछ मिलावट करें, कुछ भ्रष्टाचार करें या और कोई अपराध करें जिससे कि अधिक धन आ सके। उदाहरण के लिए जो लोग दूध का रोजगार करते हैं जोकि यदि वे गाय आदि से प्राप्त करें तो वो काफी महंगा पढ़ता है। और बाजार में प्रतियोगिता होने के कारण उसका अच्छा मूल्य भी उन्हें नहीं मिल पाता और जो मिलता है उससे उनके परिवार का जीवन बहुत ही कठिनाई से चलता है। अब जब वो देखते हैं कि दूसरे कुछ लोग बड़े अच्छे से जीवन जी रहे हैं, तो वो भी अधिक धन प्राप्त करने के लिए प्रयास करने लगते हैं। और इसी प्रयास में वो नकली दूध बनाकर बेचने लगते हैं। अपने परिवार के कुछ सदस्यों को सुख देने के लिए वो समाज के सदस्यों को दुखों में धकेल देते हैं। नकली दूध बहुत ही सस्ते में बन जाता है जिससे उन्हें कम समय में अधिक धन प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। इसी प्रकार हम दूसरे भोज्य पदार्थों के बारे में भी समझ सकते हैं।

एक दिन ऐसा आता है कि हमारा अधिकतम भोजन विषाक्त हो चुका होता है, जोकि हमारे स्वास्थ को खा जाता है। भोजन की श्रंखला में सभी स्तरों पर जो भी मिलावट हो सकती है, उसमें लगे अधिकतम लोग मिलावट से नहीं चूकते और इस कारण भोजन अधिक से अधिक विषाक्त होता चला जाता है। लेकिन जबतक हमारी आर्थिक व्यवस्था ऐसी रहेगी तकतक केवल कड़े नियम बनाने से इसे नहीं रोका जा सकता। सरकार यदि हर चीज में जांच बिठायेगी तो और भ्रष्टाचार ही बढ़ेगा क्योंकि जांच करने वाले भी तो मनुष्य ही हैं। उनका भी परिवार होता है और वो भी अधिक से अधिक धन चाहते हैं। वो केवल भ्रष्टाचार करके ही अधिक धन प्राप्त कर सकते हैं। जितना अधिक भ्रष्टाचार होगा उतनी अधिक मिलावट होगी। भ्रष्टाचार रोकने का ये तरीका सही नहीं है। इससे कभी भी भ्रष्टाचार नहीं रूक सकता।

कारण वही है कि जिन पर भ्रष्टाचार रोकने का जिम्मा होता है वो खुद भ्रष्टाचार करके ही उस पद तक पहुंचते हैं। उदाहरण के लिए चुनाव आयोग ने 28 लाख रूपेय की सीमा तय की है विधान सभा के चुनाव के लिए। अब आप ही बताओं कि यदि कोई आदमी 28 लाख जैसी बड़ी धनराशि से चुनाव जीतेगा वो भी केवल 5 वर्ष के लिए तो वो 1 करोड़ का भ्रष्टाचार क्यों नहीं करेगा? और यदि भ्रष्टाचार नहीं करेगा तो वो अपनी और अपने परिवार का जीवन सुखपूर्वक कैसे जीयेगा? 5 वर्ष के बाद उसे फिर से चुनाव में जाना है और उसमें जीत भी सुनिश्चित नहीं होती। इसप्रकार भ्रष्टाचार तो नेताओं से ही प्रारम्भ हो जाता है, जिन पर उसे रोकने का उत्तरदायित्व होता है। इसलिए बिना व्यवस्था सही किये तो कोई भी भ्रष्टाचार रहित समाज सम्भव नहीं है। वो कोई ना कोई तरीका निकाल ही लेंगे भ्रष्टाचार करने का। अब जो व्यवस्था उपर लिखी है, उसमें देखते हैं कि उसमें ना तो भ्रष्टाचार करने की कोई आवश्यकता होगी और ना ही कोई कर ही पायेगा। समझें कैसे। इस नयी व्यवस्था में सभी आर्थिकरूप से समान होंगे। जब सभी को उनकी रूचि और मांग के आधार पर प्राप्त करने का एकसमान अधिकार होगा। जिसको जब भी जो भी चाहिए वो उसकी मांग कर सकेगा और प्राप्त कर सकेगा। क्योंकि सरकार प्रत्येक वर्ष के प्रथम दिवस पर ही पूरे वर्ष के लिए मुद्रा आपके खाते में डाल देगी। मुद्रा केवल डिजिटल होगी और सरकार ही इसे आर्थिक गणनाओं को करने के लिए प्रयोग करेगी। लोग केवल अपने बैंक अकाउंट को देख सकेंगे। इस नयी व्यवस्था में मुद्रा का प्रयोग केवल आर्थिक गणनाओं के रूप में ही होगा और केवल सरकार के द्वारा ही होगा। लोग आपस में मुद्रा का लेन देन नहीं कर सकेंगे जिसके कारण किसी भी प्रकार का भ्रष्टाचार मुद्रा के लिए करना असम्भव होगा, मुद्रा के लिए कोई अपराध करना सम्भव नहीं हो सकेगा और पहले तो किसी को इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं होगी क्योंकि जिन भी कारणों से आज ये अपराध होते हैं, उन कारणों में से कोई भी कारण इस नयी व्यवस्था में उदय ही नहीं होंगे। सारे संसाधन सरकार के ही अंतर्गत रहेंगे। लोग केवल उनका अपनी रूचि आदि के आधार पर समानता से उपयोग करेंगे। और मुख्य बात तो उपयोग की ही होती है। कोई भी व्यक्तिगतरूप से किसी संसाधन का ना

तो मालिक होगा और ना कुछ भी करके मालिक हो सकेगा और मालिक होने का कोई औचित्य भी नही रहेगा। एक कहावत है यदि आपने सुनी होगी कि सारे झगड़े जर, जोरू और जमीन के लिए ही होते हैं। इसमें जर और जमीन के बारे में तो आप समझ ही गये होंग कि ये तो सब सरकारी ही होगा। जर और जमीन के झगड़े नयी व्यवस्था में होने का कोई कारण होगा नहीं। अब बचा जोरू के बारे में तो इसके भी लगभग सारे कारण समाप्त हो चुके होंगे। जोरू कहते हैं महिला जीवन साथी को। महिला के बारे में भी झगड़े का प्रमुख कारण यहीं मालकियत का भाव है। और मालकियत का भाव इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि आजतक की व्यवस्था में ऐसा करके ही हमारा सुख निश्चित होता है। आज की व्यवस्था में जिसके भी आप मालिक होते है उसका भोग आप अपनी इच्छा से जब चाहते हैं, कर लेते हैं। और उसका सुख प्राप्त कर लेते हैं बिना रूकावट के। हालांकि ये 100 प्रतिशत सत्य नहीं है। परंतु आज की व्यवस्था में मालिक होने से सुखी होने की सम्भावना बढ़ जाती है। जिसके आप मालिक नहीं होते तो कुछ पक्का नहीं होता कि उसका सुख आपको मिलेगा कि नहीं। इसलिए सब मालिक होने के लिए प्रयास करते हैं। चाहे उसके लिए युद्ध ही क्यों ना करना पड़े। पर इस नयी व्यवस्था में हम सब बिना किसी का मालिक बने भी वो सारा सुख प्राप्त करेंगे जोकि हम मालिक होकर भी प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि मालिक होने से उसकी देखरेख और सुरक्षा भी आपको ही करनी पड़ती है परंतु इस नयी व्यवस्था में ये सारी समस्याएं उत्पन्न ही नहीं होंगी और देखरेख और सुरक्षा का चक्कर भी नहीं रहेगा। भविष्य में असुरक्षा का भी कोई भाव नहीं रहेगा। क्योंकि जब आपको जो चाहिऐगा वो मिलता रहेगा। जब आप लगातार ऐसा अनुभव करेंगे कि हम जब भी, जोभी चाहते हैं वो हमें मिल जाता है तो इससे भविष्य के प्रति सुरक्षा का भाव उत्पन्न होगा और आप कुछ भी संग्रह करना नहीं चाहेंगे। और ये संग्रह करने से ही मालकियत प्रारम्भ होती है। संग्रह करना या मालकियत होना एक ही बात है दो नहीं है। संग्रह करना या मालिक होना एक बराबर है। तो सही शिक्षा और सही वातावरण के द्वारा महिला के उपर जो झगड़े होते हैं वो भी समाप्त हो जायेंगे। अर्थात आपसी रिस्तों में भी जो हम एक दूसरे के मालिक बनने

की कोशिश करते हैं, उसकी इस नयी व्यवस्था में ना तो कोई जरूरत होगी और ना ही कोई ऐसा चाहेगा। और यदि कोई ऐसा करने की कोशिश भी करेगा तो वह इसे व्यावहार में ला नहीं पायेगा क्योंकि ऐसा करना संभव नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार महिलाओं में पुरूषों का मालिक बनने के जो झगड़े होते हैं, वो भी नहीं होंगे। आपसी संबंध केवल और केवल तभी बनेंगे जबकि हम एक दूसरे से आकर्षण या प्रेम अनुभव करेंगे। स्त्री पुरूष सभी आर्थिक रूप से स्वतत्र ही होंगे, तो वो धन के लिए तो एक दूसरे पर मालकियत दिखायेंगे नहीं। अब तो एक दूसरे के पास रहने का केवल और केवल एक ही कारण होगा और एक ही आवश्यकता होगी, वो होगा वास्तविक प्रेम। और इसकी भी कोई समय सीमा नहीं होगी। जबतक प्रेम है, एक साथ रहो। जब प्रेम समाप्त तो संबंध समाप्त। संबंध समाप्त तो सहवास भी समाप्त। फिर जिसके साथ प्रेम अनुभव हो वहां जीवन जीयो। इसी प्रकार से जीवन सुखपूर्वक चलता रहेगा बिना कोई समस्या आये।

सभी प्रकार की गंदगी से मुक्ति

अभी क्या होता है कि सभी अपने निवास स्थान का निर्माण स्वयं ही करते हैं। वे स्वयं ही स्थान को खरीदते बेचते हैं। स्थान का क्षेत्रफल कितना होगा, ये भी सभी व्यक्तिगत तौर से तय करते हैं। वहां सड़क कितनी चौड़ी छोड़ेंगे ये भी व्यक्तिगत आधार से लोग ही तय करते हैं। वहां पार्क के लिए जगह छोड़ेंगे कि नहीं और यदि छोड़ेंगे तो कितनी छोड़ेंगे ये भी वे लोग व्यक्तिगत तौर से ही तय करते हैं। फिर उस घर बनाने के लिए क्या नक्शा होगा ये भी सभी व्यक्तिगत तौर से ही तय करते हैं। निवास के निर्माण में किस गुणवत्ता के सामान का प्रयोग करेंगे ये भी सभी अपने व्यक्तिगत तौर से ही तय करते हैं। और भी इसी प्रकार के निर्णय लोग व्यक्तिगत तौर से ही तय करते हैं। और इसके बाद सरकार वहां सामाजिक सुविधायें देने के लिए आती है और जो भी जगह वहां छूट गयी है सड़क और पार्क के रूप उसमें वो जो सुविधायें दे सकती है उन्हे देने का प्रयास करती है। वहीं से उन्हें मुख्य सड़क भी निकालनी होती है वहीं पार्किंग भी देनी होती है, वहीं उन्हें बाजार भी देना होता है, वहीं उन्हें और भी दूसरी सुख सुविधायें देनी

होती हैं जोकि सरकार के लिए बहुत कठिन हो जाता है। अब इस नयी व्यवस्था में क्या होगा कि आवास की सारी व्यवस्था सरकार ही करेगी। सरकार ही तय करेगी निवास के लिए कितना स्थान होगा, सरकार ही तय करेगी कि सड़क, पार्क, पार्किंग, पुस्तकालय, विद्यालय, स्टेडियम, सामाजिक स्थान, बाजार, नालियां, गंद निकासी की व्यवस्था आदि व्यवस्था सबकुछ सरकार ही तय करेगी। नक्सा, निवास स्थान में प्रयोग होने वाली सामग्री की गुणवत्ता आदि भी सरकार ही तय करेगी। इससे ये होगा कि सभी सुविधाओं के लिए पर्याप्त स्थान मिलेगा, हरियाली पर्याप्त रहेगी, मुख्य सड़क निवास के बीच में से नहीं निकलेगी, सीवरेज सिस्टम पर्याप्त बन पायेगा, निवास स्थान की उंचाई सही होने से पानी की निकासी सही होगी। जिससे पानी कहीं भी एकत्र नहीं होगा और गंदगी उत्पन्न नहीं करेगा। ध्वनि प्रदूषण भी नहीं होगा। पूरा सिस्टम तैयार करके ही सरकार लोगों को वहां निवास करने के लिए आमंत्रित करेगी, उससे पहले नहीं। तो कई बार कम गुणवत्ता के बिजली के तार हम लोग भवनों में उपयोग करते हैं जिससे भवनों में आग लगने का खतरा बहुत होता है। और हम सभी सुनते भी रहते हैं समाचारों में कि शार्ट सर्किट होने से वहां आग लग गई। इसी प्रकार की और भी सभी समस्याएं जोकि अभी गलत व्यवस्था के कारण उत्पन्न हो रही हैं, वो सब इस नयी व्यवस्था में उत्पन्न ही नहीं होंगी। इसप्रकार उन समस्याओं के समाधान में हम लोगों के द्वारा बहुत सारा समय और धन खर्च होता रहता है निरंतर। उससे भी मुक्ति मिलेगी और जीवन अधिक सुखमय होगा वो भी कम श्रम में। सुरक्षा के लिए ना के बराबर समय और श्रम खर्च करना पड़ेगा। इतना सारा मानव संसाधन और प्राकृतिक संसाधन की बचत होगी। समाज के उपयोगों के फलस्वरूप जो भी सामान बचेगा, जिसको लोग बाहर फैंक देते हैं, सरकार उसको उसको एकत्र करेगी और उसका या तो रिसाइकिल करेगी या उसका कम्पोस्ट खाद बना देगी और खेतों में प्रयोग करेगी। तो कहने का तात्पर्य ये है कि सरकार ही पूरी व्यवस्था को देखेगी। नाकि लोगों के उपर व्यक्तिगत या पारिवारिक स्तर से छोड़ेगी। सभी कार्यों के सरकार नियुक्तियां करेगी। सरकार ऐसा नहीं करेगी कि लोगों को बोलेगी शहर की सफाई स्वयं करो। कोई भी समस्या सरकार की ही मानी जायेगी और उसे

ही उसका समाधान करना होगा। सबलोग सरकार ही होंगे। सरकार से बाहर कुछ होगा ही नहीं।

संबंधों में वास्तविक प्रेम होगा

उपर आप समझ गये होंगे कि इस नई व्यवस्था में आपसी मनमुटाव के लिए कोई कारण उत्पन्न ही नहीं होगा। हमारे संबंध हमारी किसी बाध्यता के कारण नहीं होंगे बल्कि आपसी सहमति से ही बनेंगे। बिना बाध्यता वाला संबंध ही तो वास्तविक प्रेम होता है जोकि केवल और केवल आपसी सहमति पर आधारित हो। यदि संबंधों के विज्ञान को समझें तो हमें पता चलेगा कि सभी प्रकार के संबंध हम इसलिए बनाते हैं क्योंकि उन संबंधों से हमें विभिन्न प्रकार के सुख मिलते हैं। और ये सुख ऐसे परिवेष में ही अधिकतम रूप में हम प्राप्त कर सकते हैं, जिसमें कि किसी भी प्रकार की कोई बाध्यता ना रहे। हमारे संबंध केवल और केवल उन सुखों को प्राप्त करने के लिए ही बनें जिनके लिए हम वो संबंध बनाना चाहते हैं। उदाहरण के लिए पिता पुत्र के संबंध को ही लें। ये संबंध गोद लिए पिता पुत्र का या वास्तविक पिता पुत्र में से कोई भी हो सकता है। पिता को पुत्र की ओर से और पुत्र को पिता की ओर से जो भी सुख मिलते हैं, एक दूसरे के साथ रहने से, वो सुख अधिकतम हो जायेंगे यदि दोनों ही सदैव आर्थिकरूप से स्वतंत्र हों तो। जैसे पुत्र को पिता से वात्सल्य का सुख मिलता है। उसी प्रकार पिता को पुत्र से बाल सुलभ क्रीडाओं का सुख आदि मिलता है। दोनों आपस में सारे सुख तभी पा सकते हैं जबकि एक तो दोनों के पास समृद्धि हो और दूसरा दोनों ही आर्थिकरूप से स्वतंत्र हों। संबंधों में जितनी आर्थिकरूप से परतंत्रता अधिक होगी, उतने ही वो संबंध बाध्यता वाले होंगे और उन संबंधों से सुख की जगह दुख ही अधिक उत्पन्न होगा। अभी पिता पुत्र की ओर बहुत प्रेम से नहीं देख पाता और ना ही प्रेमपूर्ण व्यवहार ही कर पाता है क्योंकि यदि वो अधिक प्रेमपूर्ण व्यवहार करेगा तो कहीं पुत्र कोई ऐसी वस्तु की मांग ना कर बैठे जोकि पिता की आर्थिक स्थिति से बाहर हो। ऐसा होने पर पिता संकोच अनुभव करेगा और अधिक प्रेमपूर्ण होने से बचेगा। और जब पिता ही अधिक प्रेमपूर्ण होने से संकोच करेगा तो पुत्र भी कैसे अधिक प्रेमपूर्ण हो

सकेगा? दूसरा पुत्र से प्रेम होने के कारण सदैव ही पिता पुत्र का अच्छा भविष्य बनाने की ईच्छा से पुत्र को उस प्रकार की शिक्षा लेने के लिए बाध्य करता रहेगा जोकि हो सकता है कि पुत्र की रूचि में ना हो। इससे पिता और पुत्र के बीच संबंध में दूरी आने लगेगी, संकोच आने लगेगा और दोनों एक दूसरे से दूरी बनाकर रखने लगेंगे, कई बार बहाने बनायेंगे, कई बार झूंठ भी बोलेंगे, कई बार एक दूसरे पर क्रोधित भी होंगे क्योंकि पुत्र पिता के अनुसार नहीं चल रहा होगा। इसप्रकार यदि हम सभी संबंधों को समझने का प्रयास करें तो पायेंगे कि यदि पिता के पास पर्याप्त धन नहीं हैं तो भी और यदि पुत्र का भविष्य सुरक्षित नहीं है तो भी और यदि दोनों एक दूसरे पर आर्थिकरूप से आश्रित हैं तो भी संबंध अपनी पूर्ण गहराई तक नहीं जा पायेगा, उसमें दूरी बनी रहेगी, उसमें एक अलगाव भी बना रहेगा जबकि अंदर से दोनों एक दूसरे को चाहते हैं परंतु परस्थितियों में दोनों अपने आपको बाध्य अनुभव करेंगे और संबंधों में प्रेम की गहराई तक जा नहीं जा पायेंगे और ना ही उसे अभिव्यक्त कर पायेंगे। इसीप्रकार सभी संबंधों में हम समझ सकते हैं। ये अनुभव हम सभी को अपने जीवन में रहते ही हैं। ये सब समझने में कोई कठिनता नहीं है। तो इस नयी व्यवस्था में तो समृद्धि भी अपने चरम पर होगी और सभी अर्थिकरूप से स्वतंत्र भी होंगे। किसी भी प्रकार की ऐसी परतंत्रता नहीं होगी हमारे जीवन में जिसके कारण कोई दुख होता हो। आश्चर्य ये है कि संसाधनों का खर्चा उतना ही होता है चाहे आर्थिक स्वतंत्रता हो और चाहे आर्थिक परतंत्रता हो। केवल सही व्यवस्था के आने से ही इतना वड़ा अंतर आ जायेगा कि परतंत्रता नहीं रहेगी केवल स्वतंत्रता ही होगी। रोटी तो सब खा ही रहे हैं चाहे कैसे भी खा रहे हों, किसी ना किसी स्थान में तो रह ही रहे हैं चाहे वहां घर हो या ना हो, कपड़े भी तो पहन ही रहे हैं चाहे फटे पुराने ही क्यों ना हों, चाहे लोग भीख मांगकर जीवन जी रहे हों और चाहे अपराध के द्वारा धन प्राप्त करके जीवन जी रहे हों। परंतु जी तो रहे हैं। तो प्राकृतिक और मानव संसाधन का तो पूरा प्रयोग हो ही रहा है। केवल प्रयोग ही नहीं दुरपयोग भी हो रहा है। तो क्यों ना सही व्यवस्था लाकर इसे सुनियोजित तरीके से करें कि जिससे कोई भी प्रकार का दुख उत्पन्न ना हो और केवल सुख ही उत्पन्न हो। जिससे

प्राकृतिक संसाध न और मानव संसाधन का केवल सदुपयोग ही हो और परिणाम में केवल सुख ही आये।

छोटे बड़े सभी युद्धों की सदैव के लिए समाप्ति

सारे झगड़े, फसाद, छोटे बड़े युद्ध होने का मूल कारण यही हैं कि सबको सब कुछ समानता के आधार से नहीं मिल पा रहा है। व्यवस्था इस प्रकार की बना रखी है कि हमेंशा हर वस्तु की कमी ही प्रतीत होती रहती है। जिसके कारण सब कोई उन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए अपने आधार से प्रयास करते रहते हैं। और कल को मिलेगी कि नहीं, इस भय के कारण वो अधिक से अधिक संग्रह कर लेना चाहते हैं, चाहे सारी जिंदगी उन्हें उन संग्रहित की हुइ वस्तुओं की सुरक्षा में ही क्यों ना बितानी पड़े। और इस चक्कर में वस्तुओं का और अधिक अभाव होने लगता है समाज में। एक तो खराब व्यवस्था के कारण सबकी खरीदने की शक्ति नहीं होती, जिससे बाजार में मांग बहुत कम रहती है, जिस कारण वस्तुओं का निर्माण कम होता है। उसमें भी संग्रह करने की बाध्यता के कारण कुछ लोग ही सारा संग्रह कर लेते हैं। जिसके कारण हर वस्तु की कमी ही प्रतीत होती रहती है। हम सभी जानते हैं कि सारी दुनिया में 1 प्रतिशत लोगों के पास ही 80 प्रतिशत ध न रहता है। जिनके पास धन नहीं आता सीधे रास्तों से वो लगे रहते है ये सोचने में और उसे करने में लगे रहते है कि किन रास्तों से धन उनके पास आ सकता है। और बताने की आवश्यकता नहीं कि वो सब रास्ते कानून के विपरीत ही होते हैं। यानिकि अपराध के रास्ते। और ये अपराध ही जब एक सीमा से अधिक हो जाते हैं, तो छोटे बड़े युद्धों में परिवर्तित हो जाते हैं। जिस स्तर के अपराध होते हैं, उसी स्तर के युद्धों को जन्म देते हैं। व्यक्तिगत युद्ध, पारिवारिक युद्ध, सामाजिक युद्ध या सामष्टिक युद्ध ये चार स्तर के युद्ध संसार में पाये जाते हैं। इसप्रकार हम समझ सकते हैं कि मुख्य समस्या क्या है। और वो है असमान अर्थशास्त्र वाली गलत व्यवस्था।

हानिकारक उत्पादों से मुक्ति

जैसे पटाखे, युद्ध के लिए अस्त्र शस्त्र, मिलावटी खाद्य पदार्थ, धूम्रपान से संबंधित उत्पाद, नशे से संबंधित आदि ऐसे उत्पादन जोकि किसी भी प्रकार का प्रदूषण समाज में फैलाते हैं। उसका सरकार उत्पादन ही नहीं करेगी। और इनमें जो ऐसे उत्पाद हैं जोकि समाज के लिए जरूरी हैं तो उनका वितरण सामाजिक आधार से करेगी ताकि कम उत्पादन से ही सबका काम चल जाये। और उसके सही विकल्प के लिए सरकार वैज्ञानिको से खोजें करायेगी ताकि कम से कम प्रदूषण जोकि प्रकृति स्वयं ही उसे सम कर ले और बाकि बचे को सरकार वैज्ञानिक उपायों के द्वारा सम करेगी। क्योंकि इस नयी व्यवस्था में सभी प्रकार का उत्पादन सरकार के द्वारा ही होगा तो सब नियंत्रण में ही रहेगा। इसप्रकार या तो प्रदूषण होगा ही नहीं और या तो निम्नतम होगा जोकि वैज्ञानिक उपायों के द्वारा सम किया जाता रहेगा।

आयु एवं स्वास्थ्य में वृद्धि

ये तो हम सभी जानते हैं कि खराब व्यवस्था में मनुष्य सदैव ही कई प्रकार की चिंताओं में रहता है। अधिकतम लोगों के पास तो जीवन से संबंधित जरूरतों की इतनी कमी रहती है कि वो तो ठीक से जीवन जी ही नहीं पाते। खान पान भी दूषित रहता है, हवा पानी भी दूषित रहता है, आपसी संबंध भी दूषित रहते हैं। स्वास्थ्य संबंधित सेवाएं भी ठीक से उपलब्ध नहीं रहती। शिक्षा भी सभी को सही से उपलब्ध नहीं होती जिससे अधिकतम लोगों को ये ही ज्ञान नहीं होता कि आयु की वृद्धि और ह्रास किन कारणों से होता है। तो वो इन सब बातों का ध्यान नहीं रख पाते और कम आयु का जीवन ही उन्हें मिल पाता है वो भी बहुत सारी बीमारियों के साथ। नयी व्यवस्था में ना किसी भी प्रकार की चिंता रहेगी। स्वास्थ्य संबंधित सेवाएं उच्च गुणवत्ता की रहेंगी। वैज्ञानिक आयु बढ़ाने के लिए अनुसंधान भी करेंगे। भविष्य की कोई भी चिंता नहीं होंगी कि कल भोजन कहां से आयेगा, बच्चों की शिक्षा कैसे होगी व उनका लालन पालन कैसे होगा, बड़े होकर रोजगार मिलेगा कि नहीं आदि। सभी प्रकार से जीवन सुरक्षित और सभी सुखों से

भरपूर रहेगा। आर्थिकरूप से सभी स्वतंत्र होंगे। इस प्रकार की चिंतामुक्त व्यवस्था में जीवन की आयु और स्वास्थ्य स्वयं ही बढ़ने लगता है। इतिहास में आप देख सकते हैं कि जिन देशों में कुछ अधिक सुखकर व्यवस्था है उन देशों के औसत आयु बढ़ती गयी है। हमारी नयी व्यवस्था में तो ये बहुत तेजी से बढ़ेगी।

मानसिक सुखों की प्राप्ति

मानसिक सुखों की प्राप्ति के लिए सबसे पहले हमारे अंतःकरण का विकास होना आवश्यक है। और अंतःकरण का विकास होता है सही शिक्षा के द्वारा। अंतःकरण चतुष्टय यानिकि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का विकास या कहें कि इन्हें संस्कारित करना होता है। शिक्षा के माध्यम से ये बताना होता है कि ये जीवन किस लिए है और कैसे उस लक्ष्य को जीया जा सकता है आदि। उसके लिए एक भाषा, जिससे कि हम एक दूसरे से वार्तालाप कर सकें, और सारी शिक्षा को आसानी से ग्रहण कर सकें। गणित, जिससे हम गणनाएं कर सकें, सही निर्णण ले सकें वो भी समय रहते। संज्ञान, जिससे कि जीवन की आवश्यक सभी सूचनाओं को अपनी स्मृति में रख सकें और आवश्यकता होने पर उनका प्रयोग कर सकें उस लक्ष्य को जीने के लिए। और जीवन दर्शन, जिससे हमें जीवन के बारे में साररूप में सबकुछ पता चल सके, जीवन की दिशा का ज्ञान हम सबका हो सके आदि। इस प्रकार एक ही सही दिशा वाली शिक्षा से हम सब एक ही दिशा में एक दूसरे के सहयोग से गति करेंगे, तो आपस में कोई अंर्तविरोध उत्पन्न नहीं होगा जिस कारण से हम सभी को मानसिकरूप से शांति रहेगी। इस मानसिक शांति की स्थति में हम सभी सारे मानसिक सुखों को उत्पन्न कर पायेंगे और अपनी ईच्छानुसार उनका उपभोग कर सुखी होंगे। हमारे मन और बुद्धि एक दिशा में रहेंगे। भाषा से मन का विकास होता है, गणित से बुद्धि का विकास होता है, संज्ञान से चित्त का विकास होता है और दर्शन से अहंकार का विकास होता है। मानसिक सुखों में मन और बुद्धि ही प्रमुख होते हैं। वो सारे ज्ञान, कर्म और भोग जिनमें मन और बुद्धि का प्रमुख एवं

विशेष योगदान रहता है। मानसिक स्तर के खेल, ज्ञान, कर्म, भोग, विश्राम आदि का सुख प्राप्त कर सकते हैं अपनी अपनी रूचि अनुसार।

भविष्य के प्रति सुरक्षा का भाव

अभी तो आप देखते हैं ही कि सभी मनुष्य भविष्य के प्रति असुरक्षा के भाव से भरे ही रहते हैं कि पता नहीं कल को क्या हो जाये। कल को हमें कुछ मिलेगा कि नहीं और जिनके पास संग्रहीत है उनको भय रहता है कि कहीं कोई इसे चुरा ना ले या छीन ना ले। इस प्रकार बहुत प्रकार की भविष्य की असुरक्षाओं से मनुष्य डरा हुआ ही रहता है। परंतु जब ये ही मनुष्य इस नयी व्यवस्था में कुछ वर्ष जीकर ये अनुभव करेगा कि उसे जब जो चाहिए होता है वो आसानी से मिल जाता है तो धीरे धीरे वो भविष्य के प्रति सुरक्षा से भरने लगेगा या कहें कि वो निश्चिंत होने लगेगा कि चिंता की कोई बात नहीं है जब जो भी चाहिएगा उसे मिल ही जायेगा। तो जीवन में हाय तौवा समाप्त हो जायेगी और मनुष्य एक संतुष्टता के भाव को प्राप्त हो सकेगा। उसके जीवन में एक सुख से भरा हुआ ठहराव रहेगा। किसी के जीवन में किसी भी प्रकार की आपाधापी नहीं रहेगी। जिससे जीवन शांति वाला ही रहेगा।

आत्मिक सुखों की प्राप्ति

अंतःकरण चतुष्टय में से चित्त और अहंकार का प्रमुख एवं विशेष योगदान होता है आत्मिक सुखों के लिए। जीवन के बारे में ज्ञान सबकी ईच्छा के अनुरूप सभी को रहता है। और चारो ओर उसी ज्ञान के अनुरूप जीवन को हम अनुभव करते हैं। अर्थात सभी ओर जहां तक भी हम देख पाते हैं, सभी को सुखी ही देखते हैं। अपना जीवन सुखी है, अपनों का जीवन सुखी है और जहां तक भी हमारी नजर जाती है वहां तक सभी को सुखी अनुभव कर पाते हैं, तो इससे हमारे अंदर एक शांत और संतुष्ट अवस्था का उदय होता है, अपने लिए और बाकि भी सबके लिए। किसी भी प्रकार का कोई तनाव नहीं रहता। हमारी सबकी सभी ईच्छाएं समय से पूर्ण होती रहती हैं। भविष्य के लिए कोई समस्या दिखाई नहीं पड़ती। इस प्रकार की

अवस्था के कारण हम अपने को आत्मरूप से तृप्त पाते हैं। अपने होने में एक सार अनुभव होने लगता है। ऐसा नहीं लगता कि ये संसार दुख का सागर है। बल्कि ऐसा लगने लगता है कि ये संसार तो केवल और केवल सुख का ही सागर है। अभी तो अधिकतर लोग दुखी जीवन होने के कारण जीवन मरण के चक्र से छूटने का जिसको कि ये मोक्ष कहते हैं, उसका प्रयास ही पूरे जीवन करते दिखाई पड़ते हैं। इस जीवन में कोई सार नहीं दिखाई पड़ता। ऐसा लगता है, जैसेकि यहां जन्म लेकर कोई पाप कर दिया या किसी ने हमें यहां सजा देने के लिए जन्म दे दिया, जिसे हम पूरा कर रहे हैं, और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे ईश्वर हमें इस नरक से छुटकारा दिला दे। उसी आधार से संसार के सारे दर्शनों का निर्माण हमारे पूर्वजों ने किया है और तरह तरह के उपाय तलाशे हैं कि कैसे इस संसार चक्र से छुटकारा मिले। अभी इस समय पृथ्वी पर 10 से भी अधिक प्रमुख दर्शन प्रचलित हैं। जिनमें सभी ये ही कह रहे हैं कि मोक्ष कैसे मिले। इसी पर सारे आधारित हैं। इनमें 6 से अधिक तो केवल भारत में ही हैं। अब बताईये सब के सब नकारात्मक। सारे दर्शन किसी स्वर्ग नाम का स्थान या बैकुंठ नाम के स्थान की ही बात कर रहे हैं। जोकि यहां नहीं है, कहीं और है और उसकी लोकेशन भी नहीं पता, केवल वहां ही सुख, शांति और आनंद है। आपके मरने के बाद ही आप वहां जा सकते हैं। भय के लिए भी नरक नाम का एक स्थान बताते हैं, जहां पृथ्वी से भी अधिक घनघोर दुख है, परंतु वहां भी आप मृत्यु के बाद ही प्रस्थान कर सकते हैं। लेकिन वो स्वर्ग यहां पृथ्वी पर क्यों नहीं हो सकता इसके बारे में दर्शन कुछ नहीं कहते। जीवन का क्या उददेश्य है इसके बारे में कोई सटीक उत्तर कोई भी दर्शन नहीं देते। सारा जीवन मनुष्य का विरोधाभासो और अज्ञान में समाप्त हो जाता है। उसे सही से कुछ भी ज्ञात नहीं हो पाता।

यदि सही से चिंतन करके देखें तो दर्शन एक ही होना चाहिए। अनेक दर्शन होने से मनुष्य सदैव ही संदेह में रहता है कि कौनसा दर्शन सही है। और जब बहुत प्रयास से भी उसे सही दर्शन ज्ञात नहीं हो पाता तो कोई भी दर्शन को चुनकर जीने का असफल प्रयास ही करता है। सही दर्शन से इन सब अज्ञानों का निराकरण हो जाता है। जिससे मनुष्य के जीवन में विरोधाभास

नहीं रहते और मनुष्य एक सुखी और निश्चिंत जीवन जी पाने में सफल हो जाता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य पूर्णरूपेण सुख का अनुभव करने लगता है। जब हम अपने आपको अंदर और बाहर से, पूर्णरूप से सुखी अनुभव करने लगतें हैं। इसी को आत्मिक स्तर का सुख हम कह सकते हैं। सभी स्तरों के ज्ञान, कर्म, भोग और विश्राम तो होते ही हैं जिन्हें प्रत्येक स्तर का मनुष्य प्राप्त करके सुखी होता है।

प्रतिद्वंदिता की समाप्ति

लोगों में प्रतिद्वंदिता तब उत्पन्न होती है जब ज्ञान, कर्म, भोग और विश्राम की समाज में कमी होती है। अर्थात जितनी मात्रा में ज्ञान, कर्म, भोग और विश्राम की कमी होगी, उसे पाने के लिए हम सबमें, आपस में कड़ी टक्कर होगी। इस टक्कर को ही प्रतिद्वंदिता कहते हैं। जब ऐसा होता है तो इसमं अधिकांश जनता ऐसी होती है जोकि अपने आप को प्रतिद्वंदिता करने के लायक भी नहीं समझती और चुपचाप उन लोगों को आपस में छीना झपटी करते हुए निर्बलों की तरहा केवल देखती रहती है। कुछ लोग अपनी क्षमतानुसार कब्जा करके बैठ जाते हैं। इसका परिणाम ये होता है कि अधिकांश लोगों का जीवन इन कुछ लोगों के दासों की तरह हो जाता है। जो लोग संसाधनों पर कब्जा करक बैठ जाते है, वो इनको अपना दास बना लेते हैं। इन दासों को केवल जिंदा रहने के लिए खाना आदि देते हैं और बदले में सब तरह का शोषण करते हैं। और सारी प्रकार की सेवाएं भी इनसे लेते रहते हैं। शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आत्मिक सभी प्रकार का शोषण होता रहता है। और ये वर्ग अपना शोषण कराने के लिए बाध्य रहता है। सारा कार्य दास करते हैं और फल ये कुछ लोग भोगते रहते हैं। और कहते रहते हैं कि वीर भोग्या वसुंधरा, इसका अर्थ केवल वीर लोग ही सारी धरती का भोग कर सकते हैं और खराब व्यवस्था में ऐसा ही होता है। कभी कोई ताकतवर आदमी इन दासों में उत्पन्न हो जाता है, तो वो फिर इन तथाकथित वीरों से लड़ाइयां करता है। इसप्रकार के लोग अधि ाकतर तो मारे जाते हैं। क्योंकि उनके पास बहुत प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था हो जाती है, जिसे पार करना बहुत कठिन होता है। पर कभी कभी कोई जीत भी

जाता है। जिससे व्यवस्था में कुछ अंतर आ पाता है। नहीं तो ये शोषण परक व्यवस्था ऐसे ही चलती रहती है। इसी प्रकार समाज का जीवन चलता रहता है। प्रतिद्वंदिता में सबका ध्यान उन सीमित संसाधनों की छीना झपटी में ही लगा रहता है। वो ये सोचते समझते ही नहीं कि क्यों ना हम संसाधनो को विकसित कर लें अपनी आवश्यकतानुसार और इस प्रतिद्वंदिता, लड़ाई, झगड़े आदि से छुटकारा पा लें। और इस प्रकार सदैव संसाधन सीमित ही बने रहते हैं और प्रतिद्वंदिता लगातार हमारे जीवन में बनी रहती है। ऐसे ही हम सब नासमझी में परस्थतिवश दुखों को एक दूसरे के लिए उत्पन्न करते रहते हैं और उनसे ही जूझते रहते हैं। और ये तब तक चलता रहता है, जबतक कि हममें से कोई इतना समझदार नहीं हो जाता कि वो इस समस्या पर चिंतन करें और कोई समाधान निकाले। वो कोई समाधान निकालकर लोगों के बीच रखता है। यदि लोगों की समझ में वो समाधान आता है, और वो सब उसे स्वीकार करते हैं, तो फिर वो समाधान व्यवस्था का अंग बन जाता है। इसी प्रकार निरंतर व्यवस्थाएं बनती और सुधरती रहती हैं। और ये सुधार संसोधन तब तक चलता रहेगा जब तक कि संसाधन हमारी आवश्यकतानुसार पूरे नहीं हो जाते। नयी व्यवस्था में संसाधन आसानी से पूरे हो जायेंगे। इसप्रकार प्रतिद्वंदिता भी समाप्त हो जायेगी और फिर स्वभाविकरूप से सहयोगिता का जन्म होगा। एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि वो लोग जोकि संसधनों पर काबिज रहते हैं, वो भी ठीक से उन संसाधनों को सही से भोग नहीं पाते और उनका जीवन भी भययुक्त ही रहता है। हां उनका जीवन इन दासों से बहुत बहतर रहता है, परंतु इनके भी अपनी कई ऐसी समस्याएं रहती हैं जोकि दासों की नहीं होती। तो कुल मिलाकर सभी दुखी और असंतुष्ट जीवन जीते हैं। इसलिए एकमात्र उपाय व्यवस्था को सही करना ही है नाकि एक दूसरे पर आरोप लगाना। दो पक्ष एक दूसरे पर आरोप प्रत्योरोप लगाते रहते हैं, उससे क्या कुछ सही हो जाता है? कुछ भी सही नहीं होता। केवल समय ही नष्ट होता है। और आरोप लगाने के बाद भी तो व्यवस्था ही सही करनी होगी ना। सही व्यवस्था में प्रतिद्वंदिता का जन्म ही नहीं होगा।

सहयोगिता की स्थापना

जब सभी को सारी वस्तुएं, सेवाएं, सुख–सुविधाएं आदि ईच्छानुसार

उपलब्ध होती रहेंगी और इस व्यवस्था को समझेंगे तो लोगों को अनुभव भी होगा और समझ भी आयेगा कि ये सभी प्रकार के सुख तभी उपलब्ध हो सकते हैं, जबकि हम सब आपस में सहयोग करें। इससे लोगों को सहयोग की उपयोगिता और प्रतिद्वंदिता की हानि समझ में आयेगी जिससे वो स्वभाविकरूप से सहयोग की तरफ उन्मुख होंगे, प्रेरित होंगे। और व्यवस्था भी उन्हें उसी ओर प्रेरित कर रही होगी। क्योंकि मैंने व्यवस्था में वो सारे कारण समाप्त कर दिये हैं, जोकि लोगों को आपस में प्रतिद्वंदिता करने को बाध्य या प्रेरित करते हैं। और इस व्यवस्था का सांचा ढांचा मैंने ऐसा तैयार किया है, जिसमें प्रतिद्वंदिता करना संभव भी नहीं हो सकेगा। केवल सहयोग के लिए ही प्रेरित होगा और वो भी स्वेच्छा से। इसप्रकार सहयोग की स्थापना होगी जिससे विश्व वसुधैव कुटुम्बकम की उदघोषणा भी फलित होगी। अर्थात पूरा संसार ही एक कुटुम्ब है। हम सब एक ही वृक्ष के विभिन्न बीज हैं।

सारे अपराध जड़ से समाप्त

सभी अपराध सुख के संसाधनों को पाने के लिए ही होते हैं। और नयी व्यवस्था में तो सभी प्रकार के सुख आसानी से ही सभी को उनकी रूचि के

आधार से प्राप्त रहेंगे ही, तो सभी प्रकार के अपराधों का भी अभाव हो जायेगा संसार में। और व्यवस्था भी कुछ इस प्रकार की है कि कोई चाहकर किसी प्रकार का अपराध नहीं कर पायेगा। वैसा करके उसे कोई अतिरिक्त लाभ भी नहीं मिलेगा क्योंकि सारे संभव लाभ तो ऐसे ही सबको मिल रहे होंगे। अब जब कोई अतिरिक्त लाभ ही नहीं मिलेगा अपराध करने से बल्कि हानि ही होगी तो भला कोई मनुष्य सोचेगा भी क्यूं कोई अपराध करने के बारे में। अभी तो मनुष्य झूठ भी इसलिए बोलता है, क्योंकि उससे उसे कोई ना कोई तात्कालिक या दूरगामी लाभ हो रहा होता है या लाभ की संभावना उसे दिख रही होती है। बाकि बड़े अपराध तो बिना किसी लाभ की संभावना के संभव ही कैसे होंगे? इसप्रकार से हम समझ सकते हैं कि किसी भी अपराध का जन्म ही नहीं होगा इस नयी व्यवस्था में। सब निर्भय होकर जीयेंगे।

सभी प्रकार की नकारात्मकता की समाप्ति

उपर की चर्चा से हम समझ सकते हैं कि जीवन में सभी प्रकार की नकारात्मकता के लिए उन संसाधनों का सीमित होना ही मुख्य कारण है। और संसाधनां का विकसित ना कर पाने का कारण हमारे अंदर समझ का कम होना है। तो एक कारण बाहर और एक कारण अंदर है। अपने अंदर समझ और बाहर में संसाधनों का सीमित होना ही मुख्य कारणों में से हैं। जब हमारे अंदर में समझ उत्पन्न हो जाती है जिससे हम समझ पाते हैं कि प्रतिद्वंदिता में तो हम उन संसाधनों को भी अच्छे से भोग नहीं पाते जोकि हमारे पास उपलब्ध भी होते हैं, आपसी छीना झपटी के कारण। तो क्यों ना कोई ऐसी व्यवस्था कर ली जाये कि एक तो जो भी संसाधन हमारे पास उपलब्ध हैं उनका समान वितरण हो जाये और दूसरा यदि संसाधन कम है तो उसका भोग सामाजिक आधार से कर लिया जाये, बजाये व्यक्तिगत आधार के। इससे संसाधनां का उपयोग भी सभी कर सकेंगे और उनकी कमी भी नहीं अनुभव होगी। और जो संसाधन पर्याप्त हैं उनका उपयोग व्यक्तिगत आधार से भी कर सकते हैं। युद्धों में तो सभी प्रकार के संसाधनों का नाश ही होता है। सही व्यवस्था होने से सारी नकारात्मकता हमारे जीवन में उत्पन्न होनी बंद हो जायेगी। और एक सकारात्मक वातावरण का जन्म

होगा। एक नये प्रकार के जीवन का उदय होगा। एक नये युग का सूत्रपात होगा जो समभवतः पहले कभी नहीं हुआ।

सभी प्रकार के प्रचारों से मुक्ति

ये जो हम टेलीविजन में सारे प्रोग्राम्स के तहत प्रचार देखते हैं, या सड़को पर होर्डिग्स देखते हैं इन सबसे भी इस नयी व्यवस्था में मुक्ति मिल जायेगी। इस प्रचार के लिए इंटरनेट पर एक वेबसाइट होगी जिस पर आप अपनी आवश्यकतानुसार किसी भी प्रोडक्ट या सर्विस आदि के बारे सारी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। मैंने देखा है कि जब हम कोई प्रोग्राम टेलीविजन मं देखते हैं तो उसमें कई बार प्रचार बीच बीच में आते रहते हैं जिससे हम परेशानी महसूस करते हैं। और हम चाहते हैं कि सभी प्रोग्राम बिना किसी रूकावट के देंखे। दूसरा सड़को पर लगे प्रचार से कई बार विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाएं होती रहती हैं क्योंकि ये प्रचार कई बार लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं जिससे दुर्घटनाएं हो जाती हैं। तेज हवाओं में भी ये सड़को पर टूटकर लोगों के उपर गिर जाते हैं। जिससे जान और माल की बहुत हानि होती है। और फायदा ये होगा जैसे कागज और रंग की बचत होगी। इसमें जो मशीने प्रयोग होती है उनकी भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी, जिससे प्राकृतिक संसाधन की भी बचत होगी। जिसको हम किसी और आवश्यता में प्रयोग कर सकते हैं। इसमें लोगां का जो परिश्रम होता है, उससे भी मुक्ति मिलेगी और हमारे पास अधिक समय होगा अपनी रूचि के अनुसार जीवन जीने के लिए। और सबके पास उच्च गुणवत्ता वाले और बड़े टेजीविजन होंगे जिनसे हम और भी सुख प्राप्त कर सकेंगे बिना किसी अवरोध के।

सत्य, प्रेम, न्याय और पुण्य का उदय

सही व्यवस्था होने के बाद हम सभी आसानी से समझ सकते हैं कि जीवन में व्यक्ति सत्य पर आधारित जीवन ही जीयेगा, परिवार में एक दूसरे से प्रेम ही करेगा, समाज में न्याय पूर्वक ही जीयेगा और सारी समष्टि को संतुलित ही रखेगा वो भी स्वभाविकरूप से नाकि कोई जोर जबरदस्ती से। जीवन में सभी प्रकार की शांति अंदर और बाहर दोनों ओर बनी रहेगी सदैव।

लड़ाई झगड़े का कोई कारण ही नहीं रह जायेगा हमारे जीवन में। आप ही बताओं जब सबको सबकुछ की सुविधा रहेगी समानरूप से, सबका जीवन स्तर समान होगा, सब अपनी इच्छा से जो भी जानना चाहेंगे जान सकेंगे, जो भी करना चाहेंगे कर सकेंगे, जो भी भोगना चाहेंगे भोग सकेंगे, पारिवारिक कोई समस्या की सम्भावना नहीं रह जायेगी, सामाजिक समस्या की कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ेगी, कोई समस्या आ भी रही होगी तो बड़ी आसानी से और त्वरित गति से हल हो जायेगी। अब किस बात के लिए आपस में हम झगड़ेंगे? किसलिए आपस में प्रतिद्वंदिता करेंगे? किस लिए चोरी या अपहरण की बात सोचेंगे? किसलिए दूसरे को हमसे कष्ट होगा? मुझे तो कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता। परंतु यदि आपमें से किसी को कोई कारण दिखाई पड़े तो मेरा ज्ञान वर्धन अवश्य करें, इससे मुझे अत्यंत प्रसन्नता होगी। जिससे कि उस कारण को दूर कर इस व्यवस्था को और अधिक सुखकारक बनाया जा सके।

पारिवारिक सुखों की प्राप्ति

परिवार के अंदर भी सभी झगड़ों के मूल में आर्थिक कारण ही रहते हैं। वो चाहे गरीब हों या अमीर। दोनों भविष्य के प्रति इस भय से ही भयभीत रहते हैं कि पता नहीं भविष्य में कितना धन पर्याप्त होगा और अपनी अपनी संभावनाओं से अधिकतम धन एकत्रित कर लेना चाहते हैं। ऐसा लगता है कि उन्हें ये निश्चित नहीं होता कि कितना धन उनके लिए पर्याप्त होगा। लगातार एकत्रित करते ही चले जाते हैं बिना ये चिंतन किये कि आखिर कब इसका उपयोग करेंगे या केवल एकत्रित करना ही ध्येय था। परंतु नयी व्यवस्था को मैंने कुछ इस प्रकार से बनाया है कि धन को एकत्रित करने का कोई भी ना तो कारण होगा और ना ही कोई एकत्रित कर सकेगा। परिवार के अंदर सभी सदस्य एक दूसरे पर आर्थिकरूप से निर्भर नहीं होंगे। वो केवल तभी एक दूसरे के साथ रहेंगे यदि वो ऐसा अनुभव करते हैं कि उन्हें एक दूसरे के साथ रहने में सुख होता है। परिवार बनने के पीछे एकमात्र कारण प्रेम ही होगा। जिन लोगों को एक दूसरे को देखकर ये अनुभव होता है कि हम एक दूसरे के साथ रहकर सुख का अनुभव करेंगे, वे ही परिवार के रूप में रहेंगे। और यदि बाद में उन्हें लगे कि अब एकदूसरे के साथ सुख

अनुभव नहीं कर रहे हैं तो वे स्वेच्छा से अलग हो सकेंगे। और एक नया परिवार बनाने की खोज में लग सकेंगे। इससे सभी का पारिवारिक जीवन सदैव सुखी ही रहेगा। और ये अच्छा भी है जिन लोगों ने जिस ध्येय के लिए जो भी संबन्ध बनाया है वो उसी के लिए ही रहना चाहिए। तभी उसमें कोई सार्थकता अनुभव होती है। यदि जीवन में आर्थिक स्थिति सबकी समान हो और शिक्षा सही हो तो परिवार सुखी ही रहता है। परिवार का आधार प्रेम ही होना चाहिए ना कि कुछ और।

सामाजिक सुखों की प्राप्ति

जब सबकी आय समान होगी और सबके पास सभी कुछ होगा, उनकी इच्छानुसार। समाज सभी सुख सुविधाओं से भरपूर होगा और सभी प्रकार से सुरक्षित होगा। भविष्य के प्रति किसी को कोई चिंता नहीं होगी। ज्ञान विज्ञान सही दिशा में गति कर रहा होगा। जिससे नये नये सुख के साधन निरंतर उत्पन्न हो रहे होंगे। अब इसके अलावा कोई कारण ही नहीं रहता कि कोई भी सामाजिक दुख हो सके। समाज का आधार न्याय होता है जिसका अर्थ है सभी का समान अधिकार। इच्छानुसार और आवश्यकतानुसार जिनको जो चाहिए वो उनको मिलता रहे। सार्वजनिक सुख सुविधाएं सभी को समानरूप से मिलती रहेंगी सदैव। इस प्रकार समाज अपनी समरसता को उपलब्ध रहेगा। कोई भी हो चाहे स्त्री हो या पुरूष, बच्चे हों या वृद्ध हों, वो दिन रात में कहीं पर भी हो और अपने आपको प्रत्येक प्रकार से सुरक्षित अनुभव करते हों ये ही किसी समाज के सुख की आदर्श स्थिति होती है। इस नयी व्यवस्था में ये स्थिति बहुत ही शीघ्रता से आ जायेगी, ऐसा मेरा आकलन है। आपको क्या लगता है? यदि आपमें से किसी की राय भिन्न हो तो वे कारण सहित मुझे जरूर बतायें।

सामष्टिक सुखों की प्राप्ति

जब इस पृथ्वी पर सबकुछ सुखी और संतुलित अवस्था में रहता है तो समझों कि ये आदर्श स्थिति है। ना कोई दुख, ना कोई प्रदूषण हो इस समष्टि में। मनुष्य सुखी हो, पशु पक्षी सुखी हों, वृक्ष वनस्पति चारो तरफ लह लहा रही हो और पदार्थ प्रदूषित ना हों अर्थात हवा पानी भोजन सबकुछ

प्रदूषण रहित हो तो समझो कि हम सब समष्टिक सुखों से भरपूर हैं। समष्टिक सुखों का आधार पुण्य होता है।

प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग सुनिश्चित

अब कुछ लोग ये कहते रहते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता है। चलो थोड़ी देर के लिए ये मान लेते हैं और अब समझने का प्रयास करते हैं कि इस नयी व्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग सुनिश्चित कैसे होगा। कुछ उदाहरणों से ये जानने का प्रयास करते हैं कि आज कैसे प्राकृतिक संसाधनों का दुरपयोग हो रहा है। एक सड़क का उदाहरण लेते हैं, आज सड़क बनने के बाद मुश्किल से 6 माह या 1 वर्ष तक ठीक बनी रहती है और उसके बाद या तो उसे फिर से बनाना होता है और या तो उस टूटी हुई सड़क पर अपने बाहनों को चलाकर उन्हें जल्दी से नष्ट कर लेते हैं। टायर जल्दी से घिस जाते हैं, उन्हें जल्दी जल्दी बदलना पड़ता है, गड्ढ़ों से जो कष्ट होता है वो अलग। इंजन और दूसरे पार्टस भी जल्दी खराब हा जाते हैं। वाहन जोकि 25 वर्ष सही से चल सकता था, वो 10 वर्ष में ही प्रयोग करने लायक नहीं रहता। इसप्रकार या तो प्रत्येक वर्ष सड़क में प्राकृतिक संसाधनों को प्रयोग करते रहें या तो वाहनों में प्राकृतिक संसाधनों को प्रयोग करते रहें। दोनों ही अवस्थाओं में प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग अधिक होगा और प्रदूषण भी अधिक हागा। अब इस नयी व्यवस्था में क्या होगा सड़क और वाहनों के बाबत इसे समझने का प्रयास करते हैं, जिससे फिर अंतर करना आसान हो सकेगा। नयी व्यवस्था में सारे कार्य सरकार के द्वारा ही नियंत्रित होंगे और नया अर्थशास्त्र सामाजिक लाभ के आधार पर ही कार्य कर रहा होगा। ऐसे में गुणवत्ता वाली सड़क ही बन रही होगी।

जोकि अभी विभिन्न प्रकार भ्रष्टाचार के कारण नहीं बन पाती। यदि मेरे पास सूचना सही है तो हमारे पास अभी इतना तकनीकि ज्ञान विज्ञान है कि जिससे 20 वर्ष तक अच्छे से कार्य करने वाली सड़क का निर्माण कर सकते हैं। चलो इसको आधा भी मान लें तो 10 वर्ष तक तो दोबारा सड़क बनाने की जरूरत होगी नहीं। इससे 10 गुना प्राकृतिक संसाधन की बचत होगी। दूसरा इसमें 10 गुना समय भी बचेगा जिसमें हम या तो दूसरे कार्य कर सकते हैं और या तो जीवन के दूसरे सुख प्राप्त कर सकते हैं जोकि समय ना होने के कारण प्राप्त नहीं कर पाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों की और मानव संसाधन की भी बचत होगी। वाहन भी 25 वर्ष तक कार्य कर सकेंगे। सड़क बनाने में भी मशीने अधिक प्रयोग नहीं होंगी। इससे मानव संसाधन और प्राकृतिक संसाधन दोनों का ही दुरपयोग नहीं होगा। इस प्रकार इनका सदुपयोग सुनिश्चित होगा इस नयी व्यवस्था में। इसी प्रकार खाद्य पदार्थों के बारे में भी समझ सकते हैं। अभी की व्यवस्था में क्या होता है, कि किसी

को भी सही मांग का पता नहीं होता, कि किस खाद्य पदार्थ की कितनी मांग होने वाली है। सभी किसान अपने अपने अनुमान से फसलों की बुबाई करते

हैं और फसल पूरी होने पर पता चलता है कि कुछ फसलें अधिक उत्पन्न कर चुके जिससे उन फसलों की आपूर्ति मांग से अधिक होने के कारण फसल का मूल्य भी सही नहीं मिलता और उसे वो मंडी की सड़कों पर फेंक कर चले आये। अब ये प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन दोनों का दुरपयोग ही तो हो रहा है। इससे जो दुख उत्पन्न होता है वो अलग से। अब इसको नयी व्यवस्था में समझने का प्रयास करते हैं। नयी व्यवस्था में मुक्त मांग होने के कारण पर्याप्त मांग होगी और पहले से ही पता होगी, फिर सरकार के द्वारा ही कृषि में कार्य करने वालों को बताया जायेगा कि कहां कौनसी फसल और कितनी मात्रा में उत्पन्न करनी है। इससे मांग के आधार से आपूर्ति होने के कारण और पूरा कार्य सरकार के निरिक्षण में होने के कारण, ना तो कुछ अधिक या न्यून उत्पन्न होगा और ना ही इससे किसी को कोई व्यक्तिगत हानि ही होगी। इससे प्राकृतिक संसाधन और मानव संसाधन का दुरपयोग भी नहीं होगा और उच्च गुणवत्ता भी बनी रहेगी। इस प्रकार आप हजारों प्रोडक्टस में समझ सकते हैं कि खराब व्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों और मानव संसाधन का कितना दुरपयोग होता है। जिससे प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता और भी बढ़ जाती है। मानव संसाधन भी अनावश्यक रूप से सदैव लगा ही रहता है और फिर भी दुखी ही रहता है। इसप्रकार प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता की समस्या सही व्यवस्था में नहीं रहेगी और या तो बहुत ही न्यून रहेगी। उपर के चिंतन मनन से हम समझ सकते हैं कि यहां सबकुछ बहुत ही घनिष्टता से आपस में जुड़ा हुआ है कि यदि एक में खराबी होगी तो दूसरा भी खराब हुए बिना नहीं रहेगा। इसलिए हमें सारा ही ठीक रखना होगा। ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिसमें बुराई शुरू होने का कोई कारण ही ना रहे ताकि कोई खराबी उत्पन्न ही ना होने पाये। इसलिए सदैव कारणों पर कार्य होना चाहिए नाकि केवल प्रभावों पर। इसमें किसी को कोई बात गलत लगी हो तो वो मुझसे बात कर सकते हैं, आप सभी का सदैव स्वागत रहेगा। लेकिन यदि मेरी किसी बात से किसी को कोई ठेस लगी हो तो मैं क्षमा प्रार्थी हूं। खराब व्यवस्था में कितना भी सही क्यों ना बोला जाये, उससे भी किसी ना किसी को ठेस लग ही जाती है। ये खराब व्यवस्था का ही असर होता है। किसी को भी ठेस पहुंचाने का

मेरा कोई इरादा नहीं है। सभी का सुख कैसे सदैव बना रह सके इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही मैंने ये प्रयास किया है। यदि किसी को लगता है कि उसके पास इसमें कुछ जोड़ने से या इसमें से कुछ हटाने से लोगों का सुख और अधिक हो सकता है तो उनसे मेरी प्रार्थना है कि वो मेरे पास आयें और इस पुस्तक को और अच्छी बनाने में सहयोग करें। आपको आपकी बात रखने का पूरा मौका दिया जायेगा। अधिक अच्छा होगा कि यदि आप अच्छे से उसका पूरा डिराफ्ट बना कर लायें। इससे आपकी बात आसानी से समझ सकेंगे और आप भी आसानी से समझा सकेंग।

आपका दिल से धन्यबाद होगा।

•••

अध्याय–12

मनुष्यों का वर्गीकरण

सभी चारों प्रकार के लोगों का परीक्षण किया जा सकता है तथा उसी आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। इनके बारे में विस्तार से नीचे वर्णन कर रहा हूं। मैंने मनुष्यों का वर्गीकरण किया है ताकि आपस में व्यवहार करने में सहज और सरल हो सके। इस को पढ़कर आप आसानी से जान सकेंगे कि आप किस प्रकार के मनुष्य हैं, और आपको दूसरे मनुष्यों के साथ किस प्रकार व्यावहार करना चाहिए। ताकि आपका और दूसरों का अधिकतम सुख बना रह सके। आओ इसे जानने का प्रयास करते हैं। और इसे जानने का भी एक प्रयोजन है, जिसके कारण ये जानना जरूरी है। मानवसमाज में कर्मों का निर्धारण एवं उन कर्मों से आने वाले भोगों का वितरण करने के लिए मनुष्यों के प्रकार का निर्धारण करना परमआवश्यक है। क्योंकि सभी मनुस्य प्राकृतिक और सांकृतिक विभिन्नताओं के कारण विभिन्न प्रकार के होते हैं। और प्रत्येक कार्य को करने के लिए एक विशेष प्रकार की योग्यता, क्षमता, गुणवत्ता, कौशल और रूचि की आवश्यकता होती है। जिससे की उस कार्य को समाज के लिए भलीभांति संपन्न किया जा सके। ताकि कार्यों में तुर्टि होने की संभावना कम से कम रहे। मुख्य रूप से मनुष्य चार प्रकार क होते हैं। चारों वरीयताएं क्रमबद्ध होती हैं। शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और चेतनात्मक। यह मानवजीवन का प्रकार है, जो चार चरणों में क्रमशः फलीभूत होता है– शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और चेतनात्मक। लोगों को और समाज को इनसे चार प्रकार की शक्तियां प्राप्त होती हैं– क्रियाशक्ति, विचारशक्ति, भावशक्ति और चिद्शक्ति। जिनकी चार विशेषताएं हैं– बल, वाणी, संवेदना और विवेक। समाज में इनसे चार प्रकार की कर्म सामर्थ्य उत्पन्न होती है, जिससे समाज में चार प्रकार के कर्मों का सम्पादन होता है– कृषि, वाणिज्य, प्रशासन और नेतृत्व। बल से कृषि, वाणी से वाणिज्य, संवेदना से प्रशासनिक सेवा और विवेक से नेतृत्व होता है। चारों प्रकार की क्षमताओं से चारों प्रकार के कर्मों का सफलतापूर्वक सम्पादन होता है। जिससे समाज सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त करता है। चारों वरीयताओं में प्रवेष

की पात्रता सभी मनुस्यों को होती है। जन्म से केवल शरीरावस्था प्राप्त होती है। शरीर का ही जन्म होता है। किन्तु कोई भी मनुस्य अपनी रूचि अनुसार अपने प्रयत्नों द्वारा अपनी कोई भी वरीयता प्राप्त कर सकता है। शरीरावस्था से मनोवस्था, मनोवस्था से भावनावस्था, भावनावस्था से चेतनावस्था में प्रवेश संभव होता है। सभी वरीयताओं का मान या मूल्य समान ही होता है। शरीर का विकास होने पर बल की प्राप्ति होती है। मन का विकास होने पर बाणी की प्राप्ति होती है। भावना का विकास होने पर संवेदना की प्राप्ति होती है। और चेतना का विकास होने पर विवेक की प्राप्ति होती है। इसका अर्थ ये नहीं की इनमें कोई छोटा या कोई महान है। सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करने के लिए, सभी प्रकार के कर्मों का सम्पादित होना आवश्यक है। और इसके लिए प्रत्येक प्रकार की वरीयता का होना आवश्यक है। इसका तात्पर्य सभी को किसी ना किसी कर्म में वरीय होना ही चाहिए। तभी सभी एक दूसरे की सहायता से सभी प्रकार के भोगों का निर्माण कर पायेंगे। इस कारण ना कोई महान होता है और ना ही कोई तुच्छ होता है। समाज में सभी प्रकार के सुख उत्पन्न हो सकें, उस प्रयोजन के लिए मनुष्यों का ये वर्गीकरण है। इसका और कोई अर्थ नहीं लगाना चाहिए। नहीं तो यहां हर मनुष्य अपने आप में अद्वितिय है। एक मनुष्य का किसी दूसरे मनुष्य से तुलना करने का कोई और अर्थ ही नहीं है। उदाहरण के लिए जैसे यदि हम एक दुकानदार और एक सामान खरीदने वाले को लें कि इनका आपस का व्यवहार कब सुखकारक होगा, तब जब इनका वर्गीकरण हो, अर्थात इनकी एक पहचान हो या तब जब कोई वर्गीकरण ना हो अर्थात कोई पहचान ना हो? बिना वर्गीकरण के यानिकि बिना पहचान के कौन सामान बेचने वाला है और कौन समान खरीदने वाला है, ये ही किसी को पता नहीं चलेगा। यदि एक दूसरे को एक दूसरे की पहचान ना हो, तो उनका कितना ही समय एक दूसरे को खोजने में ही जायेगा। और हर बार खोजना पड़ेगा। और खोजने से भी तभी मिल पायेगा जब उसे कुछ लोग तो, जोकि उसके आसपास रहते हों, दुकानदार के रूप में जानते हों। ताकि जब खोजते हुए आप वहां पहुंचे, तो पूछने पर लोग आपको बता सकें कि हां यहां एक बेचने वाला रहता है। और उसी तरह से ये बेचने वाला भी तो तभी बेचेगा जब

पहले ये कहीं से खरीद कर लायेगा। तो कुल मिलाकर यदि आप देखें और समझें तो समाज में बिना पहचान के सही से व्यवहार करना कठिन ही नहीं नामुमकिन है। अब एक दूसरा उदाहरण लें तो आप और अधिक स्पष्टता से समझ पायेंगे। यदि समाज में ये बात साफ ना हो कि कौन डॉक्टर है। तो कितनी परेशानी हो सकती है किसी बिमार आदमी को। एक तो वो वैसे ही परेशान है अपनी बिमारी के कारण और इस हालत में उसको ये और खोजना पड़े कि डॉक्टर कौन है और कहां रहता है। जैसे यदि पिता को ना पता हो कि ये मेरा पुत्र है और पुत्र को ना पता हो कि ये मेरा पिता है तो कैसे उनके बीच पिता पुत्र का व्यवहार हो सकता है? पर इससे ये निर्णय लेना कि पिता महान है कि पुत्र, अब ये तुलना करना गलत हो जायेगा। तो हमें समझना होगा कि मनुष्य का वर्गीकरण किस प्रयोजन के लिए कर रहे हैं। उस वर्गीकरण को इस प्रयोजन के अर्थ में ही लेना चाहिए नाकि और दूसरे अर्थों में। यहीं सब समझाने के लिए तो संस्कृति या शिक्षा की आवश्यकता होती है। ताकि सभी लोग सही अर्थों में और सभी लोग एक बात का एक समान ही अर्थ लेते हों नाकि अपने अपने हिसाब से। तो अभी आपको ये बात साफ हो गई होगी कि मैं यहां मनुष्यों का वर्गीकरण क्यों कर रहा हूं। ये आपस के सभी प्रकार के व्यवहारों को पूर्ण स्पष्ट और सर्वाधिक आसान बनाता है। इससे हम सभी का जो जीवन का लक्ष्य है, उसको पाने में हमें सफल बनाता है। इसका अर्थ किसी को तुच्छ या किसी को महान बताना नहीं है। और कोई यहां तुच्छ या महान है भी नहीं। जब सब एक ही तत्व से अनेक हुए हैं तो सब तो समान ही हुए ना? यदि आप अपने अंदर झांक कर देखें तो क्या आपको ऐसा लगता है कि मैं कुछ कम हूं या कोई दूसरे का मैं कुछ अधिक है या मेरा मैं कुछ अधिक है दूसरे के मैं से? नहीं मित्रों सबका मैं एक बराबर ही है। हां एक समान होते हुए भी हम कई विभिन्नतायें भी रखते हैं। जैसे हमारी पसंद नापसंद भिन्न हैं, हमारे रूपाकार भिन्न हैं, हमारे नाम भिन्न हैं, हमारे कर्मों की रूचियां भिन्न हैं, समाज में हमारी उपयोगिता भिन्न है। और ये विभिन्नता का भी प्रयोजन है मित्रों, वो ये है कि यदि ये विभिन्नता ना होती तो हमसब विभिन्न प्रकार के पदार्थ और सेवाएं नहीं बना पाते और फिर ना ही उन्हें भोग पाते और ना ही विभिन्न

प्रकार से सुखी हो पाते। हमारे विभिन्न होने से हमारे पास विभिन्न प्रकार की सुखसुविधाएं होंने की सम्भावना बढ़ जाती है। जोकि हमारे सुखों को बढ़ाती है। तो विभिन्नता अच्छी बात है नाकि बुरी। तो अब हम बहुत स्पष्टता से समझ ही गये होंगे कि क्या प्रयोजन है मनुष्यों के वर्गीकरण का? मैं समाज की सुविधा को देखते हुए मनुष्य को चार वर्गों में विभाजित कर रहा हूं। सामान्यतौर पर इस संसार में हम लोगों को चार तरह का ही पाते हैं। जिन्हें हम निम्न शब्द दे सकते हैं।

1. शारीरिक स्तर के मनुष्य(Physical Quotient--PQ)
2. मानसिक स्तर के मनुष्य(Intelligence Quotient--IQ)
3. भावनाशील स्तर के मनुष्य(Emotional Quotient--EQ)
4. आत्मिक स्तर के मनुष्य(Conscious Quotient--CQ)

शारीरिक स्तर

वो लोग, जोकि पूरा शिक्षण पाने के बाद, उनका मानसिक स्तर का विकास निम्न स्तर का ही हो पाता है, अर्थात् उनकी शिक्षा में कम रूचि होती है। उनका केवल शारीरिक विकास ही ठीक से हो पाता है जोकि आहार विहार से ही हो जाता है। ऐसे लोग केवल शारीरिक श्रम सम्बन्धित कर्म, जैसे कृषि के अंतर्गत शारीरिक श्रम वाले कार्य ही कर पाते हैं। उनकी इच्छा भी बस खाने–पीने तथा निद्रा आदि की ही होती है। तनोरजंन ही इनकी ईच्छा और आवश्यकता होती है। इनका खान–पान भी मोटा मोटा ही होता है। चाट पकोड़ी की इनकी इच्छा कुछ खास नहीं होती। शारीरिक स्तर के लोग केवल अपने लिए ही जीते हैं, माता–पिता की ईच्छा से ही इनकी शादी हो जाती है। इनको परिवार आदि से ज्यादा अर्थ नहीं होता है। ये लोग बहुत सीधे–सादे होते है। इनका व्यवहार बहुत ही सामान्य होता है। इन्हें देखकर लगता है, जैसेकि इनको इस संसार से वैराग्य हो गया है। ना ये अधिक विषयभोगी होते हैं, ना ये बातुनी होते हैं, ना कोई खास इनके मित्र आपको मिलेंगे अर्थात् किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से इन्हें कुछ खास लेना देना नहीं होता। ऐसा लगेगा कि जैसे इनको कोई मोह, कोई वासना है ही नहीं। बाहर से देखने में ऐसे लगते हैं जैसेकि इन्हें किसी से कोई लेना देना

ही नहीं है। बस चुपचाप अपना निश्चित कर्म करते रहते हैं और तनोरंजन तक ही सीमित रहते हैं। ये लोग 6 घण्टे तक लगातार कर्म करते रह सकते हैं। इससे अधिक में इन्हें असुविधा होने लगती है।

मानसिक स्तर

ये लोग वो होते हैं, जिनका पूरा शिक्षण पाने के बाद मानसिक स्तर का विकास हो पाता है। ऐसे लोग केवल वाणिज्य से सम्बन्धित कार्य ही करना चाहते हैं। इसी के योग्य होते भी हैं। इनमें वाणी का विकास हो जाता है, जिससे कि ये कल्पनाशील हो जाते हैं। किसी वस्तु के आकार प्रकार की अच्छी कल्पना कर लेते हैं। इसलिए ये बहुत प्रकार के सामान आदि बना लेते हैं। इनमें बहुत सारी कलाओं का विकास हो जाता है। पर बहुत गहराई में नहीं हो पाता। ये भिन्न–भिन्न प्रकार के भोजन करते हैं, तरह–तरह के कपड़े पहनते हैं, खुद को एवं दूसरों को सुन्दर दिखाई दें, इस बात का ध्यान रखते हैं। एक बात और कहना चाहूंगा कि भोग विलास को गलत नहीं समझना चाहिए। क्योंकि भोग विलास का जीवन पूर्णरूप से जीने के बाद ही भावना का विकास होता है। जब कोई व्यक्ति भोगों को अच्छे से भोगता है, तो इससे उसकी संवेदनशीलता का विकास होता है। संवेदनशीलता के विकास से दूसरों के सुखों और दुखों को अच्छे से समझ पाता है। और फिर दूसरों के बारे में सोच पाता है, औरों के लिये जी पाता है। मानसिक अवस्था वाले लोग परिवार के लिए ही जीते हैं। किसी एक भोग से जल्दी ही मन भर जाता है एवं दूसरे भोग की तरफ स्वभाविक ही मनुष्य आकर्षित हो जाता है। ये पूरा संसार परिवर्तन के नियम के कारण ही एक से अनेक होने में सक्षम हो सका है, इसी नियम के कारण ही ये संसार स्थिर है। ये नियम हटाते ही सारा संसार समाप्त हो जायेगा। उसी प्रकार हमारी इंद्रियां भी इसी परिवर्तन के नियम के अनुसार ही बनी एवं स्थिर हैं। इसी नियम के कारण रूचि के अनुसार भोगों का परिवर्तन होता रहता है। और मनुस्य एक भोग से दूसरे भोग पर आता जाता रहता है। यदि कोई हठपूर्वक किसी एक भोग पर रहने की लम्बे समय कोशिश करेगा तो कुछ समय में ही सम्बंधित इंद्रि उस भोग के साथ सम हो जाती है। जिसके कारण उस इंद्रि को उस भोग

से सुख का अनुभव होना कम जाता है अथवा बंद हो जाता है। तो यदि पूरे जीवन सुख से रहना चाहते हैं तो हमें एक दूसरे को यह स्वतंत्रता देनी ही होगी। भोग विलास को बुरे रूप में देखना बंद करना होगा। नहीं तो हम सब एक दूसरे को दुखी ही करेंगे। और हम स्वयं भी दुखी होंगे। सभी प्रकार के भोगों के साथ ऐसा ही समझना चाहिए। ये मानसिक स्तर के मनुष्य स्वभाव से ही पूरे भोगी–विलासी होते हैं। भोगों में इनका प्रबल आकर्षण होता है। जिसके कारण भोगों लिए ये कुछ भी कर जाते हैं। इनका जीवन पारीवारिक होता है। अर्थात परिवार के दूसरे सदस्यों के सुख दुख से भी ये सुखी दुखी होते हैं। या दूसरे शब्दों में कहें तो इनकी संवेदशीलता परिवार के सदस्यों तक होती है। मनोरंजन ही इन्हें प्रिय होता है। ये लोग 12 घण्टे तक लगातार कर्म करते रह सकते हैं। इससे ज्यादा कार्य इनको असुविधा देता है।

भावनात्मक स्तर

ये लोग वो होते हैं, जोकि पूरा शिक्षण पाने के बाद मानसिक स्तर के साथ–साथ इनकी भावना का विकास भी हो जाता है। भाव ही सम्बन्ध है। ये साहसी होते हैं, अपयश और मृत्यु में से यदि इनको चुनाव करना हो तो ये मृत्यु का ही चुनाव करते हैं। ये जानबूझकर कभी कोई ऐसा कार्य नहीं करते जोकि इनके अपयश का कारण बने। इनसे अनजाने ही कोइे गलती हो सकती है जानकर कभी नहीं। गलती का पता चलते ही तुरंत ही क्षमा मांगते हैं एवं उसका पश्चाताप् भी खुशी से करते हैं। ये जिस चरित्र को स्वीकार कर लेते हैं, उसे पूर्णतया निभाने का प्रयास करते हैं। पहले दो तरह के लोगों के पास चरित्र नहीं होता है, चरित्र केवल भाव स्तर से ही शुरू होता है। चरित्र का यहां तात्पर्य है कि वो मनुष्य जो अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक लाभ हानि के लिए भी नैतिकता को नहीं छोड़ते। पहले दो प्रकार के लोग व्यक्तिगत या पारिवारिक लाभ और हानि के आधार से चलते हैं। परंतु बाद वाले दोनों प्रकार के मनुष्य व्यक्तिगत या पारिवारिक लाभ हानि के आधार से नहीं चलते बल्कि समाज और समष्टि के लाभ हानि के आधार से सारे निर्णय करते हैं। इसलिए ये जो कहते हैं, वो ही करते हैं मरतेदम

तक। इन्हें जो भी शपथ दिला दो ये सपने में भी उसे नहीं तोड़ते। भावनाशील होने के कारण ये दूसरों का दुख सुख ठीक से समझते हैं। दूसरों का दुख इन्हें सहन नहीं होता तथा उसका दुख दूर करने के लिए ये कुछ भी कर गुजरने को तैयार हो जाते है। ये बहुत ही संवेदनशील होते है। और ये किसी भी बात पर डट जाने की क्षमता रखते हैं। ये प्रशासन से सम्बन्धित कार्य ही करना चाहते हैं, और उसकी वरियता भी रखते हैं। इनमें भोगविलास की वृत्ति मानसिक अवस्था के मनुष्यों की तुलना में कुछ कम मात्रा में पायी जाती है। ये तभी सुख से जी पाते है जब उनके क्षेत्र में लोग सुख से जी रहे हों। तो ऐसे लोगों को पहचानकर प्रशासनिक पद पर उनकी योग्यतानुसार नियुक्ति करनी चाहिए। ये लोग भ्रष्टाचारी नहीं होते, क्योंकि उससे अपयश होता है, और ये जानते भी हैं कि भ्रष्टाचार से धीरे धीरे सबके सारे सुख समाप्त हो जाते हैं, जोकि ये कभी नहीं चाहते। ये सामाज के लिए ही जीते हैं। ये सामाजिक सम्बन्धों को बहुत महत्व देते हैं। ये स्वभाव से समाजप्रेमी होते हैं। समाज के लिए ही जीवन जीने में इन्हें अधिक सुख की प्राप्ति होती है। इन्हें अनुशासन प्रिय होता है। ये आत्मिक स्तर के लोगों से बहुत प्रभावित होते हैं अतः ये उनका शासन स्वभाव से, अपनी इच्छा से स्वीकार करते हैं। समाज के नीति नियमों को ही शासन कहते हैं। प्राणरंजन ही इन्हें प्रिय होता है। ये लोग 18 घण्टे तक लगातार कर्म करते रह सकते हैं। उससे अधिक में असुविधा अनुभव करते हैं।

चेतनात्मक स्तर

ये लोग वो होते हैं जोकि पूरा शिक्षण पाने के बाद मानसिक स्तर, भावनात्मक स्तर के साथ ही आत्मिक स्तर का विकास भी हो जाता है। ऐसे लोग सही तथा गलत को पूर्णरूप से जानने में सक्षम होते है। तथा सही के आधार पर ही कार्य करते हैं। केवल इसी स्तर के लोग ही सही नीतियों का निर्माण कर पाते हैं। क्योंकि ये किसी भी समस्या का सही मूल कारण जान लेते हैं तथा उसका सही समाधान कर पाते हैं। और चूंकि ये लोग सारी समष्टि के लिए ही जीते हैं, इसलिए ये केवल सही का ही पक्ष लेते हैं। ना तो परिवार का पक्ष लेते हैं और ना ही किसी समाज का पक्ष लेते हैं। ये

सभी के अन्दर अपने आपको ही देखते हैं तथा अपने अन्दर सभी को देखते हैं। ये विवेकी होने के कारण सबकुछ साफ–साफ देखपाते हैं, जान पाते हैं। और दूरदर्शिता के कारण सही नीतियां जान पाते हैं और सबके हित में नीतियां बना पाते हैं। केवल इन्हीं में नेत्रत्व करने की क्षमता होती है। सामान्यतः इनका जीवन बहुत ही सादा पाया जाता है। इन्हें आत्मरंजन प्रिय है। ये स्वयं से स्वयं में ही संतुष्ट रहते हैं। इनका अपना कोई स्वभाव नहीं होता, आवश्यकता के आधार से ये कोई भी भाव को धारण करने की क्षमता रखते हैं। क्योंकि सभी भावों पर इनका नियंत्रण होता है। ये हमेंशा समष्टि के हित में ही कार्य करते हैं। जब समष्टि की सम्पन्नता अतिरेक में होती है तब ये भी अच्छे प्रकार से सारे स्वस्थवर्धक भोगों का सुख लेते हैं। ये लोग 24 घण्टे तक लगातार कर्म करते रह सकते हैं। इन्हें कोई असुविधा नहीं होती 24 घंटे कार्य करने में।

मानवजीवन की विकास यात्रा

सृष्टि की उत्पत्ति एक ही परमतत्त्व का क्रमिक विकासमात्र है। वह परमतत्त्व ही सम्पूर्ण जगत की अभिव्यक्ति का आधार है। परमतत्व ही प्राण हो जाता है। प्राण ही प्रकृति को धारण करके प्रकृति के अनुसार ये पदार्थ यानिकि ये संसार हो जाता है। प्रकृति और कुछ नहीं बल्कि प्राण की कल्पना ही होती है। विस्तार ही परमात्मा है। ऊर्जा ही प्राण है। इच्छा ही प्रकृति है। अस्तित्व ही पदार्थ है। ये पदार्थ पाँच प्रकार के होते हैं– आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी। ये पंचपदार्थ ही पंचतत्त्व कहलाते हैं। इन्हीं पंचतत्त्वों से सभी वस्तुओं का निर्माण हुआ है। संसार की प्रत्येक रचना में इन्हीं पंचतत्त्वों का समावेश है। इस शरीर में जो कुछ भी ठोस तत्त्व है, वही पृथ्वी है। इस शरीर में जो कुछ भी द्रव तत्त्व है, वही जल है। इस शरीर में जो कुछ भी ताप है, वही अग्नि है। इस शरीर में जो कुछ भी बल या शक्ति है, वही वायु है। इस शरीर में जो कुछ भी पोला भाग है, वही आकाश है। सृष्टि की प्रत्येक इकाई के निर्माण में इन्हीं पंचतत्त्वों की मूल सामग्री प्रयुक्त होती है। पंचतत्त्वों द्वारा निर्मित यह शरीर चार आयामों वाला है, क्योंकि इसमें आदि, मध्य, अन्त और इन तीनों का संयुक्त अस्तित्व स्थित रहता है। दूसरे शब्दों में इसे ही

जन्म, जीवन, मृत्यु और इन तीनों का आधार ही क्रमशः चार आयाम कहलाता है। किसी भी रचना की अभिव्यक्ति इन्हीं चार आयामों से ओत–प्रोत होती है, जिसे लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और इन तीनों का संयुक्त केन्द्र समाहित होता है। इन चारों आयामों के आधार पर ही जीवनचेतना चार आयामों वाली है– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय। इन चारों आयामों से ही चार शक्तियां उदित होती हैं– क्रियाशक्ति, वाक्शक्ति, भावशक्ति, चिद्शक्ति। इन चारों शक्तियों का विकास ही मानवजीवन का समग्र विकास कहलाता है। तन में क्रिया शक्ति, मन में वाक्शक्ति, प्राण में भावशक्ति, आत्मा में चिद्शक्ति समाहित होती है। तन से कर्म, मन से वाणी, प्राण से संकल्प, आत्मा से साक्षी का उदय होता है। ये ही मानवजीवनविकास के फल हैं। मानवजीवन का विकास फलीभूत होने के कारण ही मानव वरीय सिद्ध होता है। ये चारों केन्द्र उत्तरोत्तर उच्च वरीयता वाले केन्द्र हैं। शरीरिक क्षमता से कृषिकर्म, मानसिक क्षमता से वाणिज्यकर्म, भावनात्मक क्षमता से प्रशासनकर्म एवं चेतनात्मक क्षमता से नेतृत्वकर्म संभव होता है। इन्हीं क्षमताओं के कारण ही शरीरावस्था, मानसिक अवस्था, भावनावस्था, चेतनावस्था का निर्धारण होता है। जिसमें जैसी क्षमता विकसित होती है, वह वैसे कर्म का संपादन करेगा। एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी अवस्था का विकास हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं है। क्रियाशक्ति से कृषिकर्म, वाक्शक्ति से वाणिज्यकर्म, संकल्पशक्ति से प्रशासनकर्म और विवेकशक्ति से नेतृत्वकर्म संपादित होता है। मानवजीवन विकासयात्रा का विस्तृत परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

•••

अध्याय–13

मानवजीवनविकास के चार आयाम

तन, मन, प्राण, आत्मा ही जीवन के चार आयाम हैं। इन चारों के संयोग से ही जैविक अस्तित्व प्रकट होता है। पदार्थ से तन निर्मित है, प्रकृति से

मन निर्मित है। ऊर्जा से प्राण निर्मित है। अस्तित्व से आत्मा निर्मित है। तन, मन, प्राण, आत्मा का विकास ही मानवजीवन का समग्र विकास है।

1. तन :– क्रियाशक्ति ही तन है।
2. मन :– वाक्शक्ति ही मन है।
3. प्राण :– भावशक्ति ही प्राण है।
4. आत्मा :– चिद्शक्ति ही आत्मा है।

मानवजीवनविकास के लक्षण

1.शारीरिक विकास के लक्षण :– मनुष्यों का भौतिक अस्तित्व ही शरीर कहलाता है। अंग, इन्द्रियाँ, आवेग, बल आदि का समुचित विकास ही शारीरिक विकास कहलाता है, जिसके निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं।

क) अंग विकास :– पाँचों अंगों का विकास।

ख) इन्द्रिय विकास :– पाँचों इन्द्रियों का विकास।

ग) आवेग विकास :– पाँचों आवेगों का विकास।

घ) बल विकास :– पाँचों बलों का विकास।

2.मानसिक विकास के लक्षण :– मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार मानवीय अन्तःकरण चतुष्टय का प्रकाशन अथवा परिष्कार ही मानसिक विकास कहलाता है। मननशक्ति ही मन है। बोधशक्ति ही बुद्धि है। स्मरणशक्ति ही चित्त है। आत्मशक्ति ही अहंकार है। इन चारों का परिष्कार ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

क) मननशक्ति का विकास :– विचारशीलता, तर्कशीलता, वाक्पटुता का विकास।

ख) बोधशक्ति का विकास :– अर्थ, आशय, विषय, निर्णय का विकास।

ग) स्मरणशक्ति का विकास :– ग्रहणशीलता, विषयासक्ति, विलासिता का विकास।

घ) स्वाभिमान का विकास :– ज्ञान करने की ईच्छा, कर्म करने की ईच्छा, भोग करने की ईच्छा आदि ईश्वरीयता का विकास।

3.भावनात्मक विकास के लक्षण :– भावनात्मक विकास ही प्राणिक विकास है। प्राणऊर्जा ही भावतरंगों के रूप में हृदय के भीतर अनुभव होती है।

क) संवेदनशक्ति का विकास :– सरलता, विनम्रता, उदारता, दयालुता का विकास।

ख) श्रद्धाशक्ति का विकास :– स्वीकारिता, आज्ञाकारिता, अनुशासिता का विकास।

ग) संकल्पशक्ति का विकास :– व्रत, प्रण, प्रतिज्ञा, शपथ का विकास।

घ) संयोजनशक्ति का विकास :– एकता, बन्धुता, मित्रता, सहयोगिता का विकास।

4.चेतनात्मक विकास के लक्षण :– आत्मचेतना का समुचित विकास ही आत्मिक विकास कहलाता है। आत्मिक विकास के प्रभाव से आत्मा में ब्रह्मत्व, साक्षित्व, ईश्वरत्व, चिदत्व का उदय होता है, जिसके निम्नलिखित लक्षण दिखाई पड़ते हैं :–

क) ब्रह्मत्व का विकास :– समदर्शिता, सर्वव्यापकता, सर्वात्मकता, सर्वहितकारिता का विकास।

ख) साक्षित्व का विकास :– निष्पक्षता, निरीक्षता, निर्लिप्तता, न्यायशीलता का विकास।

ग) ईश्वरत्व का विकास :– स्वावलम्बिता, स्व पर नियंत्रण, स्वतन्त्रता, स्वस्थता का विकास।

घ) चिदत्व का विकास :– एकाग्रता, स्थिरता, शून्यता, समाधिता का विकास।

मानवजीवनविकास के उपाय

1.शारीरिक विकास के उपाय :– आहार–विहार को शारीरिक विकास का प्रमुख उपाय जानना चाहिए। सन्तुलित आहार–विहार ही शारीरिक विकास का आधार है। आहार–विहार के असन्तुलित होते ही शारीरिक विकास कुण्ठित होने लगता है, रुग्णता घेर लेती है। भोजन और खेलना ही शारीरिक विकास के प्रमुख उपाय हैं।

2.मानसिक विकास के उपाय :– शिक्षा ही मानसिक विकास का प्रमुख उपाय है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का परिष्कार ही मानसिक विकास है। भाषा, गणित, संज्ञान, दर्शन आदि चारों विषयों का शिक्षण देकर सभी मनुष्यों के मानसिक विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जाता है।

3.भावनात्मक विकास के उपाय :– समुचित सम्बन्ध–व्यवहार ही प्राणिक विकास का प्रमुख उपाय है। प्रेमपूर्ण सम्बन्ध–व्यवहार अपनाकर प्राणिक विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जाता है।

4.चेतनात्मक विकास के उपाय :– सम्यक् ज्ञान–ध्यान ही आत्मिक विकास का प्रमुख उपाय है।

मानवजीवनविकास के लाभ

1.शारीरिक विकास के लाभ :– शारीरिक विकास का प्रमुख लाभ है– क्रियाशक्ति। बल ही क्रियाशक्ति है। कर्मसामर्थ्य ही बल है। मनुष्य कर्माधिकारी जीव है। कर्म ही मानवशरीर की विशेषता है।

2.मानसिक विकास के लाभ :– मानसिक विकास का प्रमुख लाभ है– वाक्शक्ति। वाणी ही वाक्शक्ति है। तर्कसामर्थ्य ही वाणी है। मनुष्य में तर्क करने की क्षमता होती है। तार्किकता मानवीय मन की विशेषता है। विचार ही तर्क है। किसी भी वस्तु के पक्ष–विपक्ष में चिन्तन करना ही तर्क कहलाता है। भले–बुरे, सही–गलत, उचित–अनुचित, न्याय–अन्याय, वरेण्य–त्याज्य, सत्–असत् का निर्णय इस तर्कशक्ति के द्वारा ही होता है।

3.भावनात्मक विकास के लाभ :– भावनात्मक विकास का अभिप्राय प्राणिक विकास से है। भावनात्मक विकास का प्रमुख लाभ है– संकल्पशक्ति। व्रत, प्रण, प्रतिज्ञा, शपथ ही संकल्पशक्ति है। प्राण ही भावनात्मक तरंगों के रूप में क्रियाशील होता है। प्राण में संकल्प को धारण करने की क्षमता होती है। इस संकल्प को ही प्रण कहते हैं। प्राण द्वारा संकल्प वरेण्य होने के कारण यह व्रत कहलाता है।

4.चेतनात्मक विकास के लाभ :– चेतनात्मक विकास का प्रमुख लाभ है– विवेकशीलता। आत्मचेतना का विकास ही आत्मिक विकास है। अब और विस्तृतरूप से जानने के लिए नीचे दिया जा रहा है।

शरीरिक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय

1.अंगों, इन्द्रियों, आवेगों, बलों का परिष्कार करें। ये ही शारीरिक क्षमता है। 6 घण्टे लगातार कर्म करने की स्थिति रहती है।

2.आहार, विहार, व्यायाम, विश्राम का सन्तुलित प्रयोग करने से ये विकसित होती है।

3.सुपुष्टता और बलिष्ठता ही शारीरिक क्षमता है।

4.क्रियाशील बनें, श्रमशक्ति बढ़ाएं।

5.शरीर से ही श्रम होता है। श्रमशीलता से शरीर सबल बनता है।

6.क्रियाशक्ति से ही कृषि होती है। बल के बिना कृषिकर्म संभव नहीं है। इसलिए बलवान बनें।

7.अन्न, फल, दुग्ध का उत्पादन ही कृषिकर्म का उद्देश्य है।

8.खेती, उद्यान और पशुपालन ही कृषिकर्म है।

9.इन्द्रियों का समुच्चय ही शरीर है। तो कर्मेन्द्रियों को प्रबल बनाएं।

10. आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ही पंचपदार्थ हैं। पंचपदाथों से ही शरीर का निर्माण होता है।

11. अन्न में ही पांचों पदार्थ निहित हैं। अन्न द्वारा ही शरीर का निर्माण होता है। अन्नवान् बनें अतः भोगी बनें।

12. अन्न के उपभोग से ही शरीर में पांचों तत्वों की पूर्ति होती है। पोषकतत्वों को ही अन्न कहते हैं। अन्न, फल और दुग्ध आदि ही पोषकतत्व हैं, जो शरीर को पुष्ट बनाते हैं। अन्न का संतुलित उपभोग करें।

13. शरीर की प्राकृतिक प्रेरणा से ही क्षुधा, पिपासा, निद्रा आदि के आवेग उत्पन्न होते हैं। इन आवेगों को संतुलित करें।

14. अन्न से क्षुधा शान्त होती है। जल से पिपासा शान्त होती है। विश्राम से थकान शान्त होती है। अन्न–जल और विश्राम ही शरीर के प्रमुख भोग हैं। तीनों का संतुलित उपभोग करें।

15. खेती, उद्यान और पशुपालन ही कृषिकर्म है। कृषिकर्म से ही अन्न प्राप्त होता है। कृषिकर्म करके अन्नोत्पादन करें। जिससे अपने और दूसरों के शरीर का विकास करें।

16. अन्न का उपभोग किए बिना पहली वरीयता अर्थात शरीरावस्था पूर्ण नहीं होती। विविधप्रकार के उपभोग ही इन्द्रियों को सक्रिय बनाते हैं।

17. उपभोग से ही कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां क्रियाशील होती हैं। इन्द्रियों की क्रियाशीलता से मन सक्रिय होता है। इन्द्रियों को सक्रिय बनाए बिना मानसिक विकास सम्भव नहीं।

18. शरीरावस्था से उपर उठने के लिए मानसिक विकास आवश्यक है। अतः उपभोग में सदैव संलग्न रहें।

19. तनोरंजक बनें। इन्द्रियां ही तन हैं। इन्द्रियों के प्रयोग से ही तनोरंजन होता है।

20. तन की प्रसन्नता से ही मन के विकास का द्वार खुलता है, तन को प्रसन्न करें। इन्द्रियों को प्रदीप्त करें।

21. जिनका तन पुष्ट नहीं है, उनका मन विकसित नहीं होता। इन्द्रियों का विकास ही मानसिक विकास का द्वार खोलता है। तन और इन्द्रियों को सक्रिय बनाएं। अन्न से ही शरीर की महिमा है। अन्नवान बनें।

22. अन्न ही पदार्थ है। पदार्थ ही तन है।

23. अन्नादि पोषकतत्वों का सन्तुलित उपभोग करें। अपनी भोगसामर्थ्य के अनुकूल पोषकतत्वों का उपभोग कल्याणकारी होता है।

24. पोषकतत्वों से सुन्दर इन्द्रियों का विकास होता है। अंग सुन्दर हो जाते हैं। आवेग शुद्ध हो जाते हैं। बल शुभ हो जाता है।

25. भूख प्यास शरीर के प्रमुख प्राकृतिक आवेग है। भूख प्यास को तृप्त किए विना कोई शरीर पुष्ट नहीं हो सकता। शरीर की आवश्यकताओं

की अभिव्यक्ति ही भूख प्यास है। भूख प्यास को अन्न और जल से तृप्त करें।

26. तामस् अन्न का त्याग करें। तामस् अन्न के सेवन से शरीर में रोगों की वृद्धि होती है। बासी, उच्छिष्ट, मलिन, दूषित अन्न ही तामस् अन्न है। 27. अंगों, इन्द्रियों, आवेगों, बलों के विकास से ही अन्तःकरण के विकास की संभावनाएं बढ़ेंगी। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ही अन्तःकरण है।

28. भाषा, गणित, संज्ञान, दर्शन के द्वारा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का परिष्कार होता है। अतः अपनी क्षमतानुसार चारों विषयों का अध्ययन करके मानवीय अन्तःकरण का परिष्कार करें।

मानसिक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय

1. मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का परिष्कार करें। तर्क, बोध, स्मृति और स्वाभिमान ही अन्तःकरण के परिष्कार की देन है। इस स्तर के मनुष्यों की 12 घण्टे लगातार कर्म करने की स्थिति रहती है।

2. विचारशील बनें, कल्पनाशक्ति बढ़ाएं। वाक्शक्ति का उदय होगा। वाक्शक्ति से ही मानसिक क्षमता प्रखर होगी। बोधशक्ति ही बुद्धि है। किसी विषय के बोध की सामर्थ्य ही बुद्धि है।

3. वाणी से ही तर्क व्यक्त होता है। तार्किक बनें, वाक्शक्ति का संवर्धन करें। वाणी से ही वाणिज्य होता है। वाक्पटुता का अभ्यास करें।

4. विषयों का समुच्चय ही मन है। इन्द्रियों द्वारा विषयों के सेवन से मन का विकास होता है। विषयबोध बढ़ाएं, मानसिक क्षमता का जागरण होगा।

5. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ही पंचविषय हैं।

6. मानसिक क्षमता वाला मनुष्य विषयात्मक होता है। विषयवासना ही मानसिक मनुष्य का प्रधान लक्षण है। विषयलिप्सा को जगाए।

7. शब्दबोध, स्पर्शबोध, रूपबोध, रसबोध, गन्धबोध से ही मन प्रखर होता है। मन को प्रखर बनाने के लिए विषयों का उपभोग करें।

8. कर्ण से शब्द, त्वचा से स्पर्श, नेत्र से रूप, जिह्वा से रस, नासिका से गन्ध को अनुभव करें। विषयों की विविधता का ज्ञान बढ़ाएं।

9. वाणिज्य के तीन प्रकार हैं– मृदू, मध्यम और उच्च। ये तीनों उत्तरोत्तर उच्च कर्म हैं। अपनी पात्रतानुसार और रूचि अनुसार वाणिज्यिक कर्म का चयन करें।

10. वाणी से ही वाणिज्य होता है। वाक्पटुता के विना वाणिज्य सफल नहीं होता। विचारशीलता के विना वाक्पटुता सिद्ध नहीं होती। भाषाज्ञान को प्रखर बनाकर वाक्पटु बनें।

11. वाकपटु का अर्थ है कि आप विषयों के बारे में दूसरों को अच्छे से विस्तारपूर्वक समझा सकें।

12. विषयभोग से ही प्राण झंकृत होते हैं। प्राणों के जागरण से ही संवेदनशीलता बढ़ती है। संवेदनशीलता से ही सम्बन्ध बढ़ते हैं। अतः विषयभोग का त्याग ना करें बल्कि सम्यकपूर्वक ग्रहण करें।

13. मनोरंजक बनें। विषय ही मन है, विषयभोग ही मनोरंजन है।

14. मन को विकसित करने के लिए तन को पुष्ट बनाएं। सुपुष्ट तन में ही सुन्दर मन का विकास होता है।

15. जिनकी इन्द्रियां विकसित नहीं हैं, उनके मन का समुचित विकास नहीं होता। मन विकसित हुए विना विषयबोध नहीं होता। विषयबोध के विना मानसिक क्षमता प्राप्त नहीं होती।

16. सुख ही जीवन का अर्थ है। और सुख विषयों से होता है। और विषयों का ज्ञान मन के द्वारा ही होता है। मन की सहायता से ही विषयों के अर्थ का बोध होता है। तो मनस्वी बनें।

17. निषिद्ध विषयों के सेवन से मन कुंठित हो जाता है। मन का विषयबोध क्षीण हो जाता है। मन कुंठित होने से वरीयता का पतन होने लगता है।

18. तामस् विषय ही निषिद्ध होते हैं। कुशब्द, कुस्पर्श, कुरूप, कुरस, कुगन्ध ही निषिद्ध विषय हैं। इनसे बचें।

19. सुशब्द, सुस्पर्श, सुरूप, सुरस, सुगन्ध ही प्रशस्त विषय हैं। इनमें रमें। सुन्दर विषयों में रमण करने से मन प्रतिभावान होता है।

20. विषयसेवन ही मानसिक वरीयता के तीनों चरणों में प्रवेश कराता है। निम्न, मध्यम, उच्च– तीन प्रकार के मानसिकस्तर हैं।

21. उच्च मानसिक अवस्था तक पहुंचने के लिए विषयसेवन में संलग्न
रहें।

22. विषयभोग के विना मन की रक्षा नहीं की जा सकती। विषयभोग के प्रति सदैव सजग रहें। विषयों का अभाव उत्पन्न न होने दें। इसके लिए पर्याप्त प्रयास करें। ईच्छानुसार भोग के लिए सदैव तत्पर रहें।

23. क्षमतानुसार उपार्जन और क्षमतानुसार उपभोग ही कल्याणकारी होता है। हित और अहित को ध्यान में रखते हुए ही विषयभोग करें।

24. अपनी क्षमता से न्यून अथवा क्षमता से अधिक विषयभोग हानिकारक है। संतुलित विषयभोग सदैव हितकारी होता है। अतः विषयभोग में संतुलन बनाए रखें।

25. उपभोग के विना उपार्जन व्यर्थ है।

26. वासना ही मानसिक अवस्था का लक्ष्ण है। विषयवासना ही मानसिक मनुष्य का प्रधान लक्षण है। विषयों की लालसा उत्पन्न करें। मानसिक क्षमता का विकास होगा।

27. भोगों से ही वासना की पूर्ति होती है। वासना से ही मानसिक क्षमता की सिद्धि होती है।

28. वासना के जागरण से ही वासस्थान बनते हैं। सुन्दर आवास होना मानसिक क्षमता का परिचायक है।

29. मानसिक क्षमता के विकास से ही विश्व वसता है। मानसिक क्षमता के विना विश्व स्थित नहीं रह सकता।

30. मनुष्य के विकास के लिए मानसिक क्षमता का विकास करना आवश्यक है। वस्तियों का विकास मानसिक क्षमता का ही प्रतिफलन है।

31. मनुष्य ही वस्तियों का निर्माता है। आवासीय भवनों का निर्माण प्रखर मनुष्य का लक्ष्ण है।

32. वासनाकेन्द्र ही आवास है। वासस्थान को ही आवास या निवास कहते हैं।

33. वसने की इच्छा ही वासना है। रमना ही वसना है। रमण की आकांक्षा ही वासना है। विश्व में रममाण होनेवाला ही मनुष्य कहलाता है। वासना का विकास करें, मानसिक क्षमता की प्राप्ति होगी।

34. वासना से ही वस्त्रों का विकास होता है। सुन्दर वस्त्रों का प्रयोग करें।

35. वस्त्र से रूप निखरता है। सुरूप पाने के लिए सुन्दर वस्त्रों का सृजन और संग्रह करें।

36. समयानुसार अनेक प्रकार के वस्त्र धारण करके अपने रूप पर दूसरे रूपवानों को आकर्षित करें। इससे वासना की वृद्धि होगी, मानसिक क्षमता का जागरण होगा।

37. विविध रंग और विविध ढंग वाले वस्त्रों का प्रयोग करें।

38. विभिन्न प्रकार के साहित्य का अध्ययन करने से मानसिक विकास
होता है।

39. प्रवेश करना, जाना, गमन करना, ईच्छा करना, चाहना, कामुक होना, विस्तृत होना, व्यापक होना, विकसित होना, फैलना ही मानसिक अवस्था है, जो विश्व को बनाए रखती है।

40. अपने शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को परिष्कृत करें। उन्हें सुन्दर एवं मधुर बनाएं। मन का विकास होगा, मन की उच्चता प्राप्त होगी।

41. अपने सौन्दर्य अभिवर्धन पर विशेष ध्यान केन्द्रित करें। अपने चारों ओर सुन्दर वातावरण निर्मित करें। सुन्दर विषयों का ही सेवन करें।

42. अपनी त्वचा, अपने नाखून, अपने केश, अपने वस्त्र, अपनी इन्द्रियों और अंगों को सुपुष्ट, सुन्दर, सुखद एवं शुभ बनाएं, समुन्नत करें, मानसिक क्षमता की वृद्धि होगी।

43. विषयभोग और साजसज्जा में अनाचार और अत्याचार न करें। सम्यक आचार ही सदाचार है। सौन्दर्य अभिवर्धन, विषयार्जन एवं विषयभोग सम्बन्धी समुचित शिक्षा–प्रशिक्षण भी प्राप्त करें।

44. विषयों के उपार्जन और उपभोग सम्बन्धी सम्यक् पुस्तकों का अध्ययन करें एवं सम्यक् जनों से परिचर्चा करते हुए उनकी सूक्ष्मता का बोध प्राप्त करें।

45. विषयों के उपार्जन एवं उपभोग के बारे में जो कुछ जानते हैं, वे दूसरों द्वारा पूछे जाने पर उन्हें अवश्य बताएं और जो कुछ नहीं जानते हैं, उसके बारे में दूसरों से विनम्रतापूर्वक अवश्य पूछें।

46. सभी विषयों का एक ही अयन है– स्पर्श। विषयभोग करते हुए अन्ततः सभी विषय इस एक ही अयन में लीन हो जाते हैं। विषयों के स्पर्श अयन में लीन होने पर ही संवेदनशीलता जाग्रत होती है, जिससे सम्बन्धों का उदय होता है। अतः विषयपरायण बने रहें।

47. विषयों का त्याग न करें। विषय त्याग से मानवता का विकास रुक
जाता है। अवरुद्ध हुआ विकास जगत् के विनाश का कारण बनता है।

48. संस्पर्श विषय से ही शुद्ध प्राण का जागरण होता है। जाग्रत प्राण संवेदनशील होता है। संस्पर्श से सम्पर्क और सम्पर्क से ही सम्बन्ध बनते हैं। सम्बन्ध से सभ्यता उत्पन्न होती है। विषयसेवन से ही मानवीय सभ्यता प्राप्त होगी। तो विषयसेवी बनें।

49. मन को कुंठित करनेवाले तामसिक विषयों का सेवन न करें। सात्विक विषयों के सेवन से ही मन प्रदीप्त होता है, प्राण जाग्रत होता है।

50. जब विषयभोग निवृत होने लगे और सभी विषय एकीकृत होकर संस्पर्श में समाहित होने लगें, तभी संवेदनशीलता या भावनावस्था के लक्षण प्रकट होते हैं।

भावनात्मक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय

1. प्राण ही उर्जा है। उर्जावान् बनो।
2. प्राण में धारणाशक्ति है, जिसे श्रद्धा कहते हैं।
3. प्राणतरंग ही भाव है, जिसे संवेदना कहते हैं।

4.प्राण में जो धारण किया जाता है, उसे प्रण कहते हैं। व्रत या संकल्प ही प्रण है।

5.प्रण ही शपथ है, प्रण ही वचनबद्धता है।

6.हठवादी नहीं, व्रतवादी बनो। हठ दुष्टता है, व्रत वीरता है।

7.विवेकपूर्वक वरण किया गया संकल्प ही व्रत है। अज्ञानपूर्वक ठाना गया संकल्प ही हठ है। सद्विवेक द्वारा सद्व्रती बनो, भावनावस्था प्राप्त होगी।

8.शूर नहीं वीर बनो। दुस्साहस ही शूरता है, सत्साहस ही वीरता है।

9.सत्ज्ञानपूर्वक धारण किया गया व्रत ही वीरता का लक्षण है। मूर्खता पूर्वक धारण किया गया हठ ही शूरता का लक्षण है। सज्जन बनो, वीर बनो।

10. प्राण ही भाव है। प्राण ही वेदना है। प्राण ही सूत्र है। प्राण ही सम्बन्ध है। प्राण जाग्रत हुए विना संवेदनशील सम्बन्धों का उदय नहीं होता। तो प्राण को जाग्रत करें।

11. प्राण हृदय में निवास करता है। हृदय ही वक्ष है, वक्ष ही रक्षक है।

अपने प्राणकेन्द्र का विकास करो।

12. संवेदनशीलता ही प्राणकेन्द्र के विकास का लक्षण है। भावप्रवणता ही संवेदनशीलता है। हृदय को संवेदनशील बनाएं। भावप्रवण बनें, भावनावस्था प्राप्त होगी।

13. सरलता, विनम्रता, उदारता और दया ही संवेदनशीलता के परिचायक हैं।

14. समान वेदना की अनुभूति ही संवेदना है। परपीड़ा की अनुभूति ही संवेदना है। परहित और परपीड़ा को अनुभव करें, भावनावस्था प्राप्त होगी।

15. वासना जब संवेदना में परिवर्तित होती है, तभी भावनावस्था का उदय होता है।

16. विषयात्मकता ही वासना है। सम्बद्धता ही संवेदना है। वासना में विषयत्व और संवेदना में अपनत्व होता है।

17. वसने की इच्छा ही वासना है, वसाने का भाव ही संवेदना है। दूसरों को वसाएं, उनके हितों की रक्षा करें। यही भावनावस्था है।

18. पररक्षक बनें, परोपकारी बनें, परहितकारी बनें, परसेवक बनें, परपालक बनें, यही भावनावस्था है।

19. स्वहित का परहित में रूपान्तरण ही भावनावस्था है। स्वार्थ का परमार्थ में परिर्वतन ही भावनावस्था है। 'स्व' को 'पर' के साथ सम्बद्ध करें, भावनावस्था प्राप्त होगी।

20. प्राण ही सूत्र है, जो एक को दूसरे से जोड़ता है। पारस्परिक सम्बन्धों की अनुभूति ही संवेदना है। जाग्रत प्राण ही संवेदनशील बनाता है। सम्बद्ध बनें। भावनाशील बनें। पारस्परिक सम्बन्धों का विकास करें। बन्धुत्व ही भावनावस्था है।

21. व्रत, संवेदना, संकल्प, शपथ, सम्बन्ध, श्रद्धा, सहिष्णुता, सहजीविता, सहकारिता, सम्बद्धता, सहयोगिता ही भावनावस्था के प्रमुख लक्षण हैं। इन लक्षणों का विकास करें।

22. जाग्रत प्राण को ही सुख दुख का अनुभव होता है। सुख दुख का अनुभव ही वेदना है। जाग्रतप्राण ही संवेदनशील होते हैं।

23. प्राण के कारण ही सभी जीव प्राणी कहलाते हैं। जाग्रत प्राण वाले संवेदनशील मनुष्यों को सभी प्राणियों के साथ सम्बन्ध अनुभव होता है। यही प्रेम है। प्रेमपूर्ण बनें, भावनावस्था प्राप्त होगी।

24. प्रेम ही भावनावस्था है। संवेदनशीलता ही प्रेम है। प्रेम का विकास करें, भावनावस्था प्राप्त होगी।

25. प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ही पंचप्राणों का समुच्चय है। ये पांचों प्राण ही देह का पालन करते हैं। देह और देश समान हैं। प्राणवान व्यक्ति ही देश का पालन करते हैं। देश ही समाज है, लोक है, राष्ट है। सामाजिक बनें।

26. संवेदना से ही सेवा होती है। लोकपालन ही लोकसेवा है। सेवा करने के लिए ही सेना का गठन होता है। सेनेवालों को ही सैनिक कहते हैं। सेवक अथवा सैनिक समानान्तर शब्द हैं। सेवाभाव का विकास करें।

भावनावस्था प्राप्त होगी।

27. लोकसेवा या प्रशासनिक आयोग द्वारा सेवकों की ही नियुक्ति की जानी चाहिए। संवेदनशील सेवाएं ही भावनावस्था का धर्म है।

28. सभी प्राणियों की रक्षा करनेवाला ही सेवक है। प्राण ही प्राणियों का रक्षक है। संरक्षकत्व का विकास करें।

29. प्राणवान व्यक्ति ही प्राणियों की रक्षा कर सकता है। प्राण ही साहसी है, धैर्यवान है, धार्मिक है, नियमशील है, अनुशासनशील है। प्राणवान बनें।

30. प्राण को यश प्रिय है। यश ही कीर्ति है। प्राण से ही सक्रियता और संवेदना उत्पन्न होती है। निष्क्रिय वस्तुएं प्राणहीन होती हैं। इसीलिए प्राण ही कार्यपालक है। कार्यपालक बनें, भावनावस्था प्राप्त होगी।

31. नियम, नीति, निर्णय ही किसी सुराष्ट का मूल है। उनका पालन करने के लिए गठित कार्यपालिका में सेवकों की ही नियुक्ति होनी चाहिए। भावनावस्था प्राप्त करें, कार्यपालक बनें।

32. जनसेवा ही भावनावस्था है। लोकरक्षण ही भावनावस्था है। भावनावस्था के विना सेवकधर्म का पालन असंभव है। भावनावस्था प्राप्त करें।

33. प्रशासन ही सेवक का धर्म है। जनता को शिक्षा, जीविका, सुविधा, संरक्षण प्रदान करना ही प्रशासन है। भावनावस्था प्राप्त करें, अच्छे प्रशासक बनें।

34. प्रशासन के तीन धर्म हैं– नियमपालन, नीतिपालन, निर्णयपालन। इन तीनों कार्यों के लिए ही प्रशासनिक पदों का सृजन होता है। अपने उत्तरदायित्व का पालन करें। प्रशासन ही राज्य है। राज्य ही रक्षणकर्म है। भावनावस्था प्राप्त करें।

35. जिसकी इन्द्रियां क्षीण हैं, जिसका मन क्षीण हैं, उसका प्राण विकसित नहीं हो सकता। अतः प्राण का विकास करने के लिए मन और इन्द्रियों का विकास करें। अर्थात् तन और मन का विकास करें।

36. यश से ही सेवक की महिमा है। कीर्ति से ही सेवक की महिमा है। सत्कर्मों से सुयश और सुकीर्ति मिलती है। दुष्कर्मों से अपयश और अपकीर्ति मिलती है। सत्कर्मी बनें।

37. पद का अपहरण कदापि न करें। जनपदों का अपहर्ता जनता के बीच कभी सुयश और सुकीर्ति को प्राप्त नहीं कर सकता।

38. जनपदों, राजपदों, लोकपदों पर नियुक्ति हेतु अपनी न्यायोचित पात्रता का विकास करें। पात्रता से ही पदभार वहन किया जा सकता है, अन्यथा पद की गौरव–गरिमा नष्ट हो जाती है। सुपात्र बनें।

39. यश का उपभोग न करनेवाला मनुष्य ही सेवकपद से च्युत हो जाता है।

40. सद्भावी ही संवेदनशील होते हैं। दुर्भावी ही कठोर होते हैं। सद्भाव से उत्थान, दुर्भाव से पतन होता है। सद्भाव का विकास करें, भावनावस्था प्राप्त होगी।

41. संस्पर्श से ही संवेदनशीलता बढ़ती है। प्राणियों के साथ निकट सम्बन्धों से ही व्यक्ति संस्पर्श को प्राप्त होता है, संवेदनशील बनता है। सम्बन्धों का संवर्धन करें, संस्पर्शवान् बनें।

42. संस्पर्श, संगम, सम्बन्ध, संपर्क और संभोग भी प्राणों के जागरण में सहायक है, यदि यह पारस्परिक सहमति पर आधारित हो। सहमत संस्पर्शवान् बनें।

चेतनात्मक क्षमता एवं उसकी प्राप्ति के उपाय

1.एक ही तत्व से सम्पूर्ण संसार की रचना सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करने के लिए हुई है। इस सत्य के ज्ञान से, समझ से सत्य प्राप्त होता है। सत्य को जानकर उसमें पूर्णतः स्थित हो जाने पर आत्मावस्था सिद्ध होती है।

2.आत्मावस्था ही विवेक है। आत्मिक विकास करें, उससे विवेक प्राप्त होगा।

3.चेतना की अवस्था ही आत्मावस्था है। चिद् को जगाएं।

4.क्रियाओं, विचारों, भावनाओं का अध्यक्ष ही विवेक है। विवेक ही आत्मावस्था का प्रमुख लक्षण है।

5.वृत्तियों का साक्षी ही विवेक है। जो वृत्तियों को अपने अनुकूल रखता है, वही विवेकशील है। विवेकशीलता ही आत्मावस्था है। विवेकशील बनें, उससे साक्षीचेतना का विकास होगा।

6.संस्कार ही वृत्ति है, स्वभाव ही वृत्ति है, प्रकृति ही वृत्ति है। वृत्ति पर विवेक का इच्छानुसार नियंत्रण ही आत्मावस्था है।

7.प्रज्ञा ही विवेक है। ज्ञान में प्रतिष्ठित होना ही प्रज्ञता है। प्रज्ञा में स्थित व्यक्ति ही स्थितप्रज्ञ है। प्रज्ञावान बनें, विवेकशील बनें, आत्मावस्था प्राप्त होगी।

8.समदर्शिता ही विवेकशीलता है। समदर्शी ही साक्षी हो सकता है। सही का पक्ष लेना ही समदर्शिता है। समदर्शी बनें, आत्मावस्था सिद्ध होगी।

9.सही का पक्ष लेना ही न्यायशीलता है। गलत पक्ष का साथ देने वाले न्यायशील नहीं हो सकते। न्यायशीलता के विना नियम, नीति, निर्णय सम्यक् नहीं हो सकते। न्यायशील बनें, आत्मावस्था सिद्ध होगी।

10. नियम ही विधान है, नीति ही मन्त्रणा है, निर्णय ही न्याय है। नियम, नीति, निर्णय ही नेतृत्व है। समदर्शी नयन ही नेत्र हैं। नेत्रवान बनें, नेतृत्व की क्षमता प्राप्त होगी।

11. ज्ञानचक्षु ही नयन है। नयन ही न्यायकारी नेत्र है। सत्ज्ञान में स्थित होकर न्यायकारी नेत्र प्राप्त होता है, जो समदर्शी और न्यायकारी होता है। ज्ञानवान बनें, ज्ञानचक्षु खोलें, आत्मावस्था सिद्ध होगी।

12. नेत्र से ही नेतृत्व होता है। लोकनेतृत्व करने के लिए लोकनेत्र की आवश्यकता है। सार्वजनिकता ही लोक है। सर्वात्मक नयन ही न्यायकारी नेत्र है। सर्वात्मकता प्राप्त करें, ज्ञानचक्षु खुलने लगेगा।

13. ईच्छा का अधिपति ही ईश्वर है। अपनी ईच्छाओं का स्वामी ही ईश्वर है। ईच्छा ही प्रकृति है, स्वामी ही ईश्वर है। ईश्वरत्व प्राप्त करें, आत्मावस्था सिद्ध होगी।

14. इश् ही इच्छा है, वर ही पति है। इश् का वर ही ईश्वर है। ईच्छाओं के स्वामी बने, ईश्वरत्व प्राप्त होगा।

15. अल्पवरीय ही शरीरावस्था है, अर्धवरीय ही मानसिक अवस्था है, अधिवरीय ही भावनावस्था है, पूर्णवरीय ही आत्मावस्था है। ईश्वरीयता की वृद्धि करें।

16. सर्वत्व के विना साक्षित्व प्राप्त नहीं होता। संकुचन में साक्षी उत्पन्न नहीं होता। सर्वव्यापकता में ही साक्षी उदित होता है। आत्मसंकोच से आत्मविस्तार की ओर चलें, आत्मावान बनें।

17. उदासीन ही आत्मावस्था है। उद्+आसीन मिलकर उदासीन बनता है, जिसका अर्थ होता है आज्ञाचक्र में प्रतिष्ठित होना। ऐसा व्यक्ति ही आत्मावस्था वाला होता है। आज्ञाचक्र ही तृतीयनेत्र है। तृतीयनेत्र ही नायक है। सत्–असत् का विवेक ही तृतीय नेत्र का कार्य है। नीर–क्षीर का विवेक रखनेवाला हंसतुल्य व्यक्ति ही आत्मावस्था को प्राप्त होता है। विवेकशील बनें, आत्मावस्था सिद्ध होगी।

18. शरीरावस्था से मानसिक अवस्था, मानसिक अवस्था से भावनावस्था और भावनावस्था से आत्मावस्था प्रकट होती है।

19. भूख प्यास से वासना, वासना से संवेदना, संवेदना से सद्विवेक का जागरण होता है।

20. तन में भूख प्यास, मन में वासना, प्राण में संवेदना, आत्मा में सद्विवेक होता है।

21. तन में अन्नलिप्सा, मन में विषयलिप्सा, प्राण में यशलिप्सा, आत्मा में श्रेयलिप्सा होती है।

22. जीवात्मा सुखों का उपभोग करने के लिए इस संसार में बार–बार
शरीर धारण करती है। सुखों का उपभोग ही जीवात्मा का परमलक्ष्य है।

23. आत्मावस्था में ही कोई सही प्रकार का नेता, वैज्ञानिक, योगी या संत हो सकता है। आत्मावस्था का विकास करें। लोकनायक, लोकवैज्ञानिक, लोक उद्धारक या लोकमार्गदर्शक बनें।

24. आत्मज्ञ का योग सहज ही सिद्ध हो जाता है।

25. आत्मरंजन ही आत्मावस्था का लक्षण है। आत्मरंजन करें, आत्मावस्था प्राप्त होगी।

28. जैसे शरीरावस्था वाले मनुष्य को अन्न प्रिय है, जैसे मानसिक अवस्था वाले मनुष्य को विषय प्रिय है, जैसे भावनावस्था वाले मनुष्य को यश प्रिय है, वैसे ही आत्मावस्था वाले मनुष्य को श्रेय प्रिय होता है। प्रियता की प्राप्ति से ही सुख, संतुष्टि, शांति, मोक्ष होता है। नहीं तो दुख, असंतुष्टि, अशांति और बंधन बना रहता है। यही इस संसार का सार है। इसके अलावा और कुछ नहीं।

•••

अध्याय–14

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1:– क्या मनुष्य बिना व्यवस्था के नहीं रह सकता? क्या कोई भी व्यवस्था मनुष्य की स्वतंत्रता, निजता और आत्मनिर्भरता आदि का हनन नहीं करती?

उत्तरः– मनुष्य बिना व्यवस्था के भी रह सकता है, लेकिन उस अवस्था में इसका जीवन परमदुखों से भर जायेगा, जोकि कोई मनुष्य नहीं चाहता। इसलिए मनुष्य बिना व्यवस्था के नहीं रहता। उसके अंदर अंतःकरण जाग्रत होने के कारण वो अपने दुखों का कारण और निवारण की खोज करता रहता है निरंतर। और जो भी कारण उसे समझ आता है उसका वो निवारण करके देखता है। यदि निवारण हो जाता है तो उस निवारण को वो लगातार अपने जीवन में बनाये रखने का प्रयत्न करता है, जबतक कि उससे अच्छा और कोई निवारण दिखाई नहीं पड़ता। इसी को ही व्यवस्था करना कहते है। इसी प्रकार वो निरंतर अपने सभी अनुभूतिक दुखों को और भविष्य में संभावित दुखों का उपाय या निवारण खोजता रहता है और उन्हें करके देखता रहता है। इसी प्रकार उसकी व्यवस्था का विकास होता रहता है। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि मनुष्य बिना व्यवस्था के नहीं रहना चाहता। अंतःकरण के स्वभाविक चेतन होने के कारण उसके लिए बिना व्यवस्था के सुखी जीवन संभव नहीं है। फिर भी कोई बिना व्यवस्था के रहकर देखना चाहे तो देख सकता है कि मैं जो कह रहा हूं वैसा ही है। बिना व्यवस्था के कैसे हम दुखों से भर जायेंगे आओ इसका चिंतन करते हैं। यदि हम इस प्रकृति का अध्ययन करें तो पाते हैं कि यहां कुछ भी हमें ऐसा नहीं मिलता जिसको कि हम सीधे अपने उपयोग में ला सकें यदि केवल भोजन को छोड़ दिया जाये तो। भोजन भी फल फूल पत्तियां आदि बस वो भी कोई बहुत स्वदिष्ट नहीं, पर ये है कि इनके सहारे जीवित रहा जा सकता है। लेकिन जीवन का उददेश्य तो केवल जीवित रहना नहीं है। हम सब तो बहुत प्रकार के सुखों को लेना चाहते हैं, जोकि प्रकृति से हमें नहीं मिलते। उन्हें हमें सृजित करना

पड़ता है। जिसके लिए ज्ञान, कर्म आदि का विकास भी करना होता है। इस प्रकार एक पूरी श्रंखला का निर्माण हो जाता है। ज्ञान, कर्म और भोग। ज्ञान के बिना कर्म की सार्थकता नहीं है। यदि बिना ज्ञान के कोई कर्म करते हैं तो उसका कुछ भी परिणाम आ सकता है यानिकि दुख या सुख कुछ भी आ सकता है। इसी लिए हमें पहले ज्ञान की आवश्यकता होती है। जिससे हम जान पाते हैं कि यदि इस प्रकार से कर्म किया जायेगा तो ये निश्चित ही हमें हमारा ईच्छित फल देगा, जिसको भोगकर हम ईच्छित सुख की प्राप्ति करेंगे। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ज्ञान के बिना कर्म की कोई सार्थकता नहीं होती और बिना कर्म के कोई भोग तैयार नहीं होता, और बिना भोग के हम सुखी नहीं हो सकते। अर्थात इस ज्ञान, कर्म और भोग के अनुसार हमें व्यवस्था करनी होगी। क्योंकि बिना व्यवस्था के जो खोजा जायेगा वो आगे आने वाली पीड़ी में हम नहीं दे सकेंगे। फिर सभी को वहीं ज्ञान बार बार खोजना होगा। तो बार बार खोजना ना पड़े इसलिए शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार कर्म का वितरण करने के लिए रोजगार वितरण की व्यवस्था होती है। और उसी प्रकार रोजगार के फलस्वरूप जिन भोगों का निर्माण होता है, उसके वितरण की व्यवस्था होती है। मुझे आशा है कि अब तक हम समझ चुके होंगे कि मनुष्य को व्यवस्था की आवश्यकता क्यों है। बिना व्यवस्था के हम ईच्छित जीवन नहीं जी पायेंगे। बिना किसी व्यवस्था के कोई भी सुख सुविधाएं पैदा कर पाना कठिन ही नहीं लगभग असंभव है। और बिना सुख सुविधाओं के जीवन में कोई निजता, कोई स्वतंत्रता, कोई आत्मनिर्भरता फलित नहीं होती। जब जीवन के उददेश्य की प्राप्ति ही नहीं होती बिना व्यवस्था के तो फिर भला निजता, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता आदि का तो प्रश्न ही कहां उठता है? हम पहले इन शब्दों को समझने का प्रयास करते हैं। निजता का अर्थ होता है, व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्रता यानिकि कौन मनुष्य क्या खाना चाहता है, क्या पहनना चाहता है, क्या सीखना चाहता है, क्या कार्य करना चाहता है, कैसे रहना चाहता है आदि आदि ऐसे क्रियाकलाप जिनका समाज के दूसरे व्यक्तियों पर सीधे सीधे किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं होता। वो प्रत्येक व्यक्ति का निजी जीवन होता है जिसमें वो किसी का कोई अवरोध नहीं चाहता। दूसरा शब्द

स्वतंत्रता है। इसका अर्थ होता है कि सभी तलों पर क्या आपको वो सब करने का अधिकार है, जिससे कि आपको सुख मिलता हो और दूसरों को दुख भी ना होता हो। निजता भी इसके अंतर्गत ही आ जाती है। और अब तीसरा शब्द है आत्मनिर्भरता। इसका अर्थ होता है हम जब भी जोभी चाहें उसे समय रहते प्राप्त कर सकें बिना किसी अड़चन के, तो ऐसा होने से हमें आत्मनिर्भता का भाव अनुभव होता है। अब देखें कि क्या बिना व्यवस्था के ये सम्भव है?

एक कहावत प्रचलित है कि नंगा नहायेगा क्या और निचोड़ेगा क्या। बिना व्यवस्था के एक तो कोई सुख सुविधा समाज में उत्पन्न ही नहीं होती जिसे कि आप व्यक्तिगत रूप से भोगना चाहोगे दूसरा जो भी हल्की सुख सुविधा हम अपने बल से प्राप्त भी कर लें तो कोई भी दूसरा व्यक्ति या समूह हमसे आकर उस सुविधा को लूट कर ले जा सकता है, क्योंकि जब कोई व्यवस्था ही नहीं होगी तो उन्हें रोकेगा कौन और वो किसका भय खाकर लूटने नहीं आयेंगे। कबीला संस्कृति या उससे भी पहले की बात मैं कर रहा हूं जबकि लोग जंगलों में अकेले या बहुत ही छोटे समूह में रहते थे। हालांकि छोटा समूह बोलना भी एक व्यवस्था को स्वीकार करना ही है। क्योंकि जब मनुष्य एक से अधिक की संख्या में एकसाथ रहता है तो वे बिना किसी नीति नियमों के सम्भव नहीं है। पर चलो कबीला तक हम मान लेते हैं कि कोई विशेष नीति नियम नहीं होते। तो आप इतिहास में सुनते होंगे कि पहले एक कबीला दूसरे कबीले को लूट लेते थे या दास बना लेते थे। तो अब हम इस निष्कर्ष तक पहुंच गये हैं कि बिना व्यवस्था के तो कोई निजता, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता आदि होती ही नहीं। अब देखते हैं कि क्या व्यवस्था में इनके होने की कोई संभावना है कि नहीं। अब व्यवस्था दो प्रकार की हो सकती है पर्याप्त व्यवस्था और अपर्याप्त व्यवस्था या खराब व्यवस्था। तो खराब या अपर्याप्त व्यवस्था में तो ये सभी स्वतंत्रताएं आदि कुछ सीमा तक होंगी और उस सीमा के बाद लगेगा कि जैसे कोई स्वतंत्रता नहीं है। जैसे आजकी व्यवस्था जोकि एक अपर्याप्त या खराब व्यवस्था में से एक है।

एक उदाहरण लेते हैं। इस व्यवस्था के संविधान में लिखा है कि सभी को शिक्षा पाने का एक समान अधिकार है। पर वास्तविक धरातल पर क्या

ये अधिकार मिल रहा है? हम सभी जानते हैं कि नहीं मिल रहा है। तो आओ जानने का प्रयास करते हैं कि जब संविधान में लिखा है तो फिर वास्तविक धरातल पर ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा। तो इसका एक पहला कारण धरातल पर दिखाई पड़ता है कि सरकार ने ना तो पर्याप्त स्कूल ही बनायें हैं जिसमें कि ये अधिकार सभी को समानरूप से प्राप्त हो सके। दूसरा सभी की आय सुनिश्चित नहीं है जिसके कारण जनता प्राइवेट स्कूलों में भी इस अधिकार को प्राप्त करने में अक्षम है। अब सरकार से पूछों कि भाई आप पर्याप्त स्कूल और अध्यापक आदि क्यों नहीं बना रहे हैं? तो सरकार कहती है कि हमारे पास पर्याप्त धन नहीं है ये सारी सुविधाएं देने के लिए। अब ये संविधान का अक्षम होना ही है। इसका अर्थ सारी सुख सुविधाएं धन से ही मिलती हैं। तो आप ही बताइये कि जब तक सारी जनता आर्थिकरूप से एक समान नहीं हो जायेगी तो उसे एकसमान रूप से ये अधिकार कैसे प्राप्त हो जायेंगे? दूसरा सरकार जब है कि धन से होते हैं तो वो ऐसी कोई नीति क्यों नहीं बना रही जिससे कि धन ही कमी ना होने पाये? और वर्तमान में तो अमीरी और गरीबी विद्यमान है समाज में तो ये आर्थिक असमानता के चलते कभी कोई भी अधिकार एक समान रूप से सभी को प्राप्त हो नही सकता। और संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे ये सुनिश्चित किया जा सके कि सभी आर्थिकरूप से एक समान हों। संविधान ये तो कह रहा है कि सबको एक समानरूप से शिक्षा मिलनी चाहिए पर ये नहीं बता पा रहा कि ये अधिकार या सुविधा पैदा कैसे की जाये और फिर कैसे वितरित की जाये ताकि सभी को समानरूप से प्राप्त हो सके। इसीलिए मैं इसको अपर्याप्त व्यवस्था या अपर्याप्त संविधान या विषमविधान कह रहा हूं। जोकि कहती तो है कि सभी को सभी कुछ प्राप्त करने का अधिकार है, परंतु ये नहीं बताती कि किस प्रकार से ये हो सकता है। और जो प्रकार बता रही है उससे हो नहीं पा रहा है। उससे उल्टा ही हो रहा है। विषमता ही उत्पन्न हो रही है, समता का उदय नहीं हो रहा। इसलिए मैं इसको खराब व्यवस्था कह रहा हूं। इसलिए सभी को निजता, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता आदि किसी सीमा तक ही मिल पा रहे हैं और ये सीमा भी सभी लोगों की एक समान नहीं है। अब बात करें कि ये निजता, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भता आदि किसी सही या पर्याप्त

व्यवस्था में क्या प्राप्त की जा सकती हैं? या कि ये एक कल्पना मात्र ही है। लेकिन जब अपर्याप्त व्यवस्था में कुछ सीमा तक ये अधिकार प्राप्त किया जा सकता है भले ही कुछ लोगों को ही प्राप्त हो रही हो पर हो तो रही है। केवल कल्पना तो नहीं दिखाई पड़ती। उपर नयी व्यवस्था आपने पढ़ी है उसमें ये भी बताया गया है कि ये सारे अधिकार किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं वास्तविक धरातल पर, वो भी समानरूप से। और कैसे सभी लोग आर्थिकरूप से एक समान होंगे, इसका भी पूरा व्यवहारिक समाधान दिया है। अब हम समझ सकते हैं कि कोई भी व्यवस्था का उददेश्य ये सारे अधिकार देना ही होता है। अब ये बात अलग है कि कौनसी व्यवस्था कितने अधिकार कितने लोगों को किस सीमा तक उपलब्ध करा पाती है। और बिना व्यवस्था के तो ये असंभव ही है। तो व्यवस्था तो चाहिए।

प्रश्न 2:– व्यवस्था की कसौटी क्या होनी चाहिए?

उत्तरः– जैसाकि उपर हम लोग चर्चा कर चुके हैं कि जीवन का मुख्य उददेश्य सभी प्रकार के ईच्छित सुखों को पूरा करने के लिए ही ये सारी व्यवस्था की आवश्यकता होती है। और यही कसौटी भी होगी। हम जो भी करें यदि उससे सर्वतोभावेन सुख ही आ रहा है तो उसे हम सही व्यवस्था कहेंगे नहीं तो वो खराब या अपर्याप्त व्यवस्था ही होगी। और उसमें तबतक सुधार किया जाता रहेगा जबतक कि ये उददेश्य प्राप्त नहीं हो जाता। तो किसी का उददेश्य ही उसकी कसौटी होता है। तो सुख ही कसौटी होगा सही और गलत को जानने का। यदि कुछ करने से हमारा उददेश्य पूरा होता है तो सही कहा जायेगा अन्यथा तो उसे गलत कहा जायेगा।

प्रश्न 3:– व्यवस्था का मूल आधार क्या है?

उत्तरः– व्यवस्था का मूल आधार होता है वो, जहां से व्यवस्था का प्रारम्भ होता है। व्यवस्था का प्रारम्भ हो रहा ये जानने के बाद कि जीवन का परमउददेश्य क्या है। परमउददेश्य जान लिया कि सभी प्रकार के ईच्छित सुख ही जीवन का परमउददेश्य है। और ये भी जान लिया कि तीनो प्रकार के सुख ज्ञान, कर्म और भोग से आ रहे हैं। तो ज्ञान, कर्म और भोग का

लोगों की ईच्छानुसार वितरण। ये ज्ञान दर्शन के द्वारा होता है। ये निर्माण और वितरण का कार्य अर्थशास्त्र के द्वारा सरलता से हो जाता है। वो भी सही प्रकार का अर्थशास्त्र जिसमें उपरोक्त प्रकार से निर्माण और वितरण हो सके। इस अर्थशास्त्र का उपर आप अध्ययन कर चुके हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि दर्शन शास्त्र और अर्थशास्त्र से ही प्रारम्भ किया जा सकता है। सही दर्शन शास्त्र और अर्थशास्त्र के बिना ये सम्भव नहीं है, चाहे हम संविधानों में या पुस्तकों में कितना भी मधुर मधुर क्यों ना लिख दें। सही अर्थशास्त्र ही वास्तविक जीवन में उस धरातल का निर्माण कर पाता है जिसमें हमारे सारे सुखों का निर्माण हो पाता है और उनका यथोचित वितरण भी हो पाता है। तो हम कह सकते हैं कि किसी भी व्यवस्था का मूल उसका दर्शन शास्त्र और अर्थशास्त्र ही होता है। जहां दर्शन शास्त्र और अर्थशास्त्र सही है, वहां हमें ईच्छित जीवन की प्राप्ति हो जाती है। तो ये ही दोनों मूल है। या कहें दर्शन ही मूल है। क्योंकि जैसा दर्शन होगा वैसा ही अर्थशास्त्र भी हो ही जायेगा।

प्रश्न 4:– व्यवस्था में दर्शनशास्त्र का क्या महत्व है? लोगों के लिए दर्शनशास्त्र का व्यवहारिक जीवन में क्या उपयोग है?

उत्तरः– किसी भी व्यवस्था में जीवन दर्शन का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। जीवन का क्या परमउददेश्य है, ये बात जीवन दर्शन के बिना नहीं जानी जा सकती। जीवन दर्शन ही हमें ये निश्चित कर पाता है कि जीवन का परमउददेश्य क्या है। कुछ उददेश्य है भी कि नहीं और यदि है तो क्या है। जीवन दर्शन का अध्ययन किये बिना किसी भी व्यवस्था के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता। जब दिशा का ही ज्ञान नहीं होगा तो गति करेंगे किधर? एक सटीक जीवन दर्शन होने से सदैव ही ये जानने में सरलता और सुलभता रहती है कि हम जिस प्रकार का जीवन जी रहे हैं, उसका क्या परिणाम आयेगा। परिणाम का ज्ञान पहले से ज्ञात रहता है। और जैसा परिणाम हमें चाहिए होता है, उस प्रकार का जीवन हम जी लेते हैं। और अपेक्षित परिणाम को प्राप्त कर सखी होते हैं। इससे जीवन में एक निश्चितता रहती है। जीवन

की दिशा को निश्चित करने के लिए ही जीवन दर्शन का हमारे जीवन में सबसे प्रथम स्थान रहता है। हमने सुना ही है अपने सभी ग्रंथों में कि हमारे सभी दुखों का कारण मूल में अज्ञान ही होता है। इसी अज्ञान का उन्मूलन ये जीवन दर्शन करता है। दूसरे शब्दों में ये कह सकते हैं कि यदि कोई समाज दुखी है तो इसका अर्थ ये कर सकते हैं, कि उस समाज के पास सही जीवन दर्शन का अभाव है। जैसा दर्शन शास्त्र होगा, वैसी दिशा होगी, जैसी दिशा होगी वैसी दशा होगी। इसलिए हमारी किसी भी दशा के लिए हमारे दर्शनशास्त्र ही आधार बनते हैं। सही दर्शनशास्त्र तो सही दशा, गलत दर्शनशास्त्र तो खराब दशा। जीवन की दशा ही कसौटी है ये जानने के लिए कि हमारे पास जो दर्शनशास्त्र हैं वो सही है कि गलत हैं।

प्रश्न 5:– वर्तमान अर्थव्यवस्था यानिकि पूंजीवाद में क्या दोष है?

उत्तरः– पूंजीवाद के दोष तो जगजाहिर हो ही चुके हैं। जिसमें आर्थिक असमानता सबसे बड़ा दोष है। जिससे फिर बाकि सारे दोष भी अपने आप आने लगते हैं। इस आर्थिक असमानता के कारण सारा समाज निर्धन और धनवान दो भागों में विभाजित हो जाता है। निर्धन बाजार में अपनी ईच्छा से कुछ भी खरीद नहीं पाता जिससे बाजार में सदैव ही मांग की कमी बनी रहती है। मांग की कमी के कारण निर्माण में भी कमी रहती है जिसके परिणाम स्वरूप रोजगार का सृजन नहीं हो पाता और समाज में बेरोजगारी पैदा हो जाती है। बेरोजगारी होने से श्रम का मूल्य कम हो जाता है जिससे निर्धन और अधिक निर्धन हो जाता है और धनवान और अधिक धनी। और धनियो की संख्या में भी कमी हो जाती है और निर्धनों की संख्या में वृद्धि हो जाती ह। जैसे कि अभी आप देख सकते हैं कि 80 प्रतिशत समृद्धि पर केवल 1 प्रतिशत लोगों का कब्जा है और बाकि 99 प्रतिशत लोग केवल 20 प्रतिशत समृद्धि पर ही जैसे तैसे जीवन यापन कर पाते हैं। हम सब अपने जीवन के अनुभवों से देख ही रहे हैं कि इस पूंजीवाद में ना तो गरीब ही सुखी है और ना अमीर ही। गरीबी के अपने प्रकार के दुख हैं और अमीरी के भी अपने प्रकार के दुख। जैसाकि इस वाद के नाम से ही आप जान रहे होंगे कि

पूंजीवादी व्यवस्था में जिसके पास जितनी अधिक पूंजी होती है उसको ही उस सीमा तक कुछ भी करने की स्वतंत्रता होती है। कुछ भी खरीदना है तो पूंजी चाहिए, कुछ भी कार्य करना हो तो पूंजी चाहिए, कुछ भी ज्ञान लेना हो तो पूंजी चाहिए, चिकित्सा करवानी हो तो पूंजी चाहिए। अब जिनके पास ये पूंजी नहीं हो तो वो कुछ भी पाने के लिए स्वतंत्र नहीं है। ना वो कुछ खरीद सकते हैं, ना वो कुछ कर सकते हैं और ना वो कुछ ज्ञान पा सकते हैं, ना स्वास्थ्य को ही प्राप्त कर सकते हैं। और जैसे तैसे कोई कुछ ज्ञान पा भी ले तो आय का साधन नहीं पा पाते। थोड़ी सी आय का साधन भी पा लें तो उस थोड़ी से आय से थोड़े से भोग ही खरीद पाते हैं और जैसे तैसे केवल जीवित ही बने रहते हैं। जैसे ये मनुष्य ना हों कोई मशीन हों, जिसे केवल ईधन चाहिए होता है काम करने के लिए। मशीन और इन थोड़ी आय वाले मनुष्य में अंतर करना कठिन हो जाता है, कि दोनों के जीवन में कोई मूलभूत अंतर है कि नहीं। इस पूंजीवादी व्यवस्था में प्रतिद्वंदिता अपने पूरे यौवन पर होती है। क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्था में जिनके हाथ में ये पूंजी होती है, उनके हाथ में सारे संसाधनों का नियंत्रण चला जाता है। केवल प्राकृतिक संसाधन ही नहीं मानव संसाधन का भी नियंत्रण उन थोड़े से मनुष्यों के पास चला जाता है। वो ही उसको अपनी ईच्छा से उपयोग कर पाते हैं। और जिनके पास कम पूंजी होती है या नहीं होती है, वे कोई ना कोई सही या गलत मार्ग खोजने में लग जाते हैं। जिसके कारण प्रतिद्वंदिता और विभिन्न प्रकार के अपराधों का सृजन होने लगता है। ये धीरे धीरे ये अपराध सामूहिक रूप धारण कर लेते हैं। जिसके कारण ये समाज के लिए नासूर बनने लगते हैं जिसके कारण समाज की स्थिति बद से बदतर होने लगती है और ये समाज का स्थाई अंग बन जाती है। जब इसकी अति होती है तो लोग इसके खिलाफ आंदोलन आदि करते है, और जैसे तैसे अपराधों में कुछ कमी कर पाते हैं। परंतु उसे समाप्त नहीं कर पाते और इसी प्रकार जीवन चलने लगता है। पूंजीवादी व्यवस्था में कभी भी सही मांग का पता नहीं चल पाता क्योंकि किसके पास कितनी पूंजी है और वो उस पूंजी को किस मद में खर्च करना चाहता है, ये पता नहीं चल पाता। जिसके कारण अन्दाजे से ही मांग के बारे में पूर्वानुमान लगाया जाता है और उत्पादन कर

दिया जाता है। फिर क्षेत्रिय व्यापारी भी अपना अंदाजा लगाता है और वस्तुएं लाकर अपने गोदाम में भर लेता है। सामान को दुकान में रखकर प्रतीक्षा करता है ग्राहक की। कभी तो दुकानदार सारे दिन बैठा रहता है दुकान पर और कोई ग्राहक ही नहीं आ पाता। इसप्रकार कई व्यापारी तो कुछ माह में अपनी सारी जमा पुंजी को खर्च कर जाता है दुकान के किराये आदि में और घाटा उठाकर अपने घर बैठ जाता है। इस प्रकार आप कितने ही लोगों को अपनी पूंजी खोते हुए देखते होंगे। जैसेकि हम सब समाचारों में सुनते रहते हैं कि किसान आत्महत्या कर रहे हैं। किसान लोग अपनी सारी पूंजी खेती में लगा बैठते हैं। कई कारणों से उन्हें नुकसान हो जाता है। जैसेकि सूखा पड़ जाये या बाढ़ आ जाये या फसल में कोई कीड़ा लग जाये, या बाजार में उन्हें अपनी फसल का सही मूल्य ना मिले आदि आदि। अब और पूंजी उनके पास नहीं होती और आत्महत्या ही उन्हें एकमात्र उपाय दीखाई पड़ता है, आने वाले दुखों से बचने का जोकि बिना पूंजी के उनको और उनके परिवार को उठाने पड़ेंगे। फिर या तो मनुष्य चोरी, ठगी, भ्रष्टाचार, अपहरण आदि के माध्यम से धन पाने के उपाय करने में लग जाता है जोकि समाज में विभिन्न प्रकार की दूसरी समस्याओं को जन्म देने लगता है। सरकार अपना पूरा बल लगाकर भी इनको नहीं रोक पाती। सरकार इनको तो क्या खुद को भी भ्रष्टाचार करने से नहीं रोक पाती है क्योंकि उन्हें भी तो प्रत्येक 5 वर्ष में चुनावों में जाना होता है, और भारी धन खर्च करना होता है। अब वो धन कानूनन तो आना लगभग असम्भव होता है। अब सरकार जिनसे धन लेगी तो उनके लाभ के लिए, उन्हें नीतियां बनानी होती है, जिसका परिणाम ये होता है कि धनवान और धनवान हो जाता है, और निर्धन और निर्धन हो जाता है। और ये दुष्चक्र ही अपनी गति से चलता रहता है। लोग बदल जाते हैं, सरकारे बदल जाती है। परंतु व्यवस्था नहीं बदलती क्योंकि अथशास्त्र नहीं बदलता। तो ये पूंजीवादी अथशास्त्र के कारण ऐसा होता है। जो नया अथशास्त्र मैंने उपर लिखा है वो तो आपने अध्यन कर लिया होगा। और आप समझ गये होंगे कि केवल सही अथशास्त्र ही सही व्यवस्था की आधारशिला रखता है और संसाधनो का निर्माण और उनका वितरण उचित रूप से संभव कर पाता है। पूंजीवाद के दोषों पर बहुत सारी पुस्तकें भी हैं

जिनका अध्ययन कर आप और गहरे में इसके दोषों के बारे में जान सकते हैं। पर ये संसार में अभी तक बना हुआ है क्योंकि अभीतक सहीं अर्थशास्त्र का सृजन किसी ने नहीं किया था। पर अब सही अर्थशास्त्र का सृजन मैंने कर दिया है। अब हम सबको इस पूंजीवाद पर आधारित अर्थशास्त्र से मुक्ति मिल सकेगी और सुखी जीवन की प्राप्ति हो सकेगी।

प्रश्न 6:– आपने सबको समान आय पर क्यो रखा है?

उत्तरः– न्याय के अनुसार पूरे समाज में आय का एक ही मापदण्ड होना चाहिए। क्योंकि आय ही हमारे जीवन के मूल्यों को साकार करना निश्चित करती है। जिन मनुष्यों की आय कम होगी तो उससे उनके जीवन का मूल्य कम साकार होगा। समाज में असमान आय होने से सभी प्रकार की समस्याएं पैदा हो जाती है और समाज विभिन्न प्रकार से दुखी होने लगता है। यदि इसके अलावा हम और कोई भी उपाय करते हैं तो उससे कम या अधिक आर्थिक असमानता ही सृजित होगी। जिससे समाज में उसी मात्रा में सारे दोष उत्पन्न हो जायेंगे और जीवन दुखों से भर जायेगा जोकि कोई नहीं चाहेगा। इसलिय इस नयी व्यवस्था में सभी को समान आय पर रखा गया है। किसी के पास इससे अच्छा उपाय हो तो उसका स्वागत रहेगा।

प्रश्न 7:– जो लोग बहुत कठिन महनत करेंगे क्या उनके साथ अन्याय नहीं होगा कि उनको भी उनके बराबर ही आय दिया जाये जोकि साधारण कार्य करेंगे?

उत्तरः– आपने उपर पढ़ा होगा कि आर्थिक असमानता से समाज में बहुत सारे प्रकार के दोष उत्पन्न होने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप गरीबी, दासता, भ्रष्टाचार, प्रतिद्वंदिता, चोरी और सभी प्रकार के अपराध पैदा होने लगते हैं जिनके परिणामस्वरूप हम सबका जीवन विभिन्न प्रकार के दुखों से भर जाता है। और जीवन में ऐसी दुखों से भरी अवस्था तो कोई नहीं चाहता है। इस कारण से सभी की आय समान रखी गयी है। इससे सभी आर्थिकरूप

से समान होंगे। जिससे सभी के जीवन का मूल्य समान होगा। सभी को सभी सुख सुविधाएं समानरूप से उपलब्ध रहेंगी। जिससे जिसको उसमें से जो भी सुख सुविधाएं चाहिए वो उसे प्राप्त कर सुखी हो सकेगा। तो समाज में सहयोगिता, सत्य, प्रेम, न्याय, पूण्य आदि स्वभाविकरूप से उत्पन्न हो जायेंगे। जिसके परिणामस्वरूप सभी को सभी प्रकार के भौतिक, दैविक और आध्यत्मिक सुखों की प्राप्ति हो सकेगी जोकि जीवन का परमउददेश्य है, जोकि सभी चाहते हैं। आय असमान होने से जिनकी आय कम रहेगी वो कभी भी उन सुख सुविधाओं को प्राप्त नहीं कर पायेंगे जोकि अधिक आय प्राप्त करने वाले मनुष्यों के द्वारा निर्मित की जायेंगी क्योंकि वो सभी अधिक मूल्य वाली होंगी। और वैसे भी ये समान आय या सुख सुविधाओं का मूल्य तय करना केवल व्यवस्था के प्रयोग के लिए की गई गणनाएं ही होंगी, जोकि इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सहायता करेंगी। इन गणनाओं का व्यक्तिगत रूप से कोई अर्थ नहीं होगा। लोगों को तो जो चाहिए वो मिल ही जायेगा। जिस मनुष्य को जो चाहिए वो उसे समानता के आधार से सदैव मिलता रहेगा, हां इन गणनाओं के होने से कोई व्यक्तिगतरूप से सख सुविधाओं का दुरपयोग नहीं कर सकेगा। तो ये समान आय या सुख सुविधाओं का मुल्यांकन केवल व्यवस्थात्मक गणनाओं के रूप में ही रहेगा। व्यक्तिगतरूप से इस मुल्यांकन का कोई विशेष महत्व नहीं होगा। ये केवल व्यवस्था को सरलता, सहजता, स्पष्टता और दुरपयोगमुक्तता देगा और कुछ नहीं। और जीवन में सभी सुख सुविधाओं का महत्व समान ही होता है। कोई मनुष्य ये नहीं चाहता कि उसके जीवन में किसी भी प्रकार की सुख सुविधा की कमी रहे और उसके फलस्वरूप वो दुख उठाये। तो महत्व की दृष्टि सारे रोजगार समान ही होंगे क्योंकि हम ये नहीं कह सकते कि जीवन में भोजन का महत्व अधिक है या आवास का या वस्त्रों का या कि दूसरे किसी भी वस्तु या सर्विस का, सभी से हमें सुख ही मिलता है। और दूसरी बात कि इससे किसी के साथ कोई अन्याय नहीं होता। सभी तो ये ही चाहते हैं ना कि उनका जीवन संपूर्ण रूप से सुखी हों, और यदि इस व्यवस्था से ये होता है तो हम कैसे कह सकते हैं उसके साथ कोई अन्याय हो रहा है। क्योंकि उसकी ईच्छानुसार ही उसे रोजगार मिल रहा है, तो ये तो न्याय की बात है। दूसरा

एक ही रोजगार किसी के लिए सरल और किसी के लिए कठिन हो सकता है। इंजिनियरिंग किसी के लिए बहुत कठिन हो सकती है और किसी के लिए बायें हाथ का कार्य यानिकि बहुत सरल। जब सभी को उनके जीवन में उनको सभी प्रकार की सुख सुविधाएं समानता से उपलब्ध रहेंगी तो भला किसी को ऐसा क्यों लगेगा कि उसके साथ कोई अन्याय हो रहा है। बल्कि अन्याय तो आज हो रहा है कि कितना ही धन होने के बाद भी ऐसा जीवन नहीं मिल रहा जिसे संपूर्ण सुखी कहा जा सके। जिससे जीवन में संतुष्टि प्राप्त होती हो। तो अन्याय तो आजतक होता रहा सभी के साथ।

प्रश्न 8:– ऐसी व्यवस्था जोकि सबको सबकुछ आसानी से प्राप्त करायेगी तो ऐसी व्यवस्था में मनुष्य आलसी क्यों नहीं हो जायेगा? कोई भी मनुष्य कठिन महनत क्यों करना चाहेगा?

उत्तरः– इस व्यवस्था में जो मनुष्य अपने कर्म उचितरूप से नहीं करेगा तो वो मनुष्य इस व्यवस्था का कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकेगा। इस नयी व्यवस्था में ये शर्त के होने से आलसी होने का कोई स्थान नहीं रहता। दूसरा सभी को उनका प्रथम या द्वितीय पसन्द के आधार से रोजगार या कर्म करने को मिलेगा वो भी लगभग 5 घंटे प्रतिदिन के आधार से, और सप्ताह में 5 दिन, जिससे सभी को अपनी पसन्द का कर्म होने के कारण उस कार्य को करने में सुख ही मिलेगा। जिस प्रकार भोगों का सुख होता है उसी प्रकार कर्म व ज्ञान का भी अपना सुख होता है, यदि वो हमारी पसंद का हो तो। इस कारण से भी आलस्य का कोई स्थान जीवन में नहीं आयेगा। तीसरी बात ये कि उस समय सभी जानते होंगे कि यदि सब अपना रोजगार सही से नहीं करेंगे तो हमें आपस में ही वो सारे भोग नहीं मिल पायेंगे जोकि हम पाना चाहते हैं। तो इस ज्ञान के कारण भी लोग अपने कर्म में आलस्य नहीं करेंगे। और एक बात आपको मैं भी अपनी ओर से बताना चाहता हूं जोकि मेरे अध्ययन में आयी है कि इस संसार में कोई भी मनुष्य आलसी नहीं होता। गलत व्यवस्था के कारण ही आलस्य हमारे जीवन में पैदा होता है। उदाहरण के लिए मान लो कि आपको रसगुल्ला पसंद नहीं है परंतु रस

मलाई पसंद है। अब यदि आपको रसगुल्ला खाने को दिया जाये तो क्या आप रसगुल्ला खायोगे? कोई भी इसका उत्तर दे सकता है कि भाई नहीं खायेंगे। तो क्या इस बात को इस तरह भी कहा जा सकता है कि आप रसगुल्ला खाने में बहुत आलसी हैं? बिल्कुल कह सकते हैं। लेकिन यदि आपको रस मलाई खाने को दी जाये तो क्या हमें आपको कहना पड़ेगा कि भाई रस मलाई खा लो? नहीं कहना पड़ेगा बल्कि आप तो खुशी से रसमलाई खा लोगे और हमें धन्यवाद भी करोगे। तो इस कथन में आप क्या कहेंगे कि आप बहुत कर्मठ हैं रस मलाई खाने में? नहीं कहेंगे। मुख्य बात पसंद की है नाकि आलस्य की। यदि कोई व्यवस्था हमारी पसंद का रोजगार हमें देती है और वो भी समान श्रममूल्य का तो आलस्य का कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होगा। आलस्य केवल नापसंद वाले रोजगार में ही पैदा होता है। और स्वभाव से कोई मनुष्य आलसी नहीं होता। सभी लोग सुख चाहते हैं और कर्म का भी अपना सुख होता है जिसको सभी लोगा लेना चाहेंगे ही। कोई भी कार्य कठिन या सरल नहीं होता बस बात पसंद और योग्यता, क्षमता आदि की ही होती है। एक ही कार्य किसी के लिए कठिन हो सकता है और वो ही कार्य किसी के लिए अत्यंत सरल। जिस कार्य के लिए यदि हमारे अंदर रूचि, योग्यता, क्षमता आदि होती है तो वो कार्य हमारे लिए सरल होता है, सुख देने वाला होता है और इसके विपरीत वही कार्य कठिन हो जाता है और दुख देने वाला हो जाता है। तो इस नयी व्यवस्था में सबकुछ सरल ही होगा।

प्रश्न 9:– क्या मनुष्य सुख के अतिरेक में अपनी संवेदनशीलता नहीं खो देगा?

उत्तरः– आओ पहले समझें कि ये संवेदनशीलता का क्या अर्थ है। एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। भूख का उदाहरण लेते हैं। जैसे हर कोई अपनी भूख के प्रति संवेदनशील होता है वैसे ही जव वो भोजन करते समय इन बातों से संवेदित रहता है कि भोजन स्वादिष्ट है कि नहीं, स्वास्यवर्धक है कि नहीं, उचित मात्रा में है कि नहीं आदि। तो एक तो

संवेदनशीलता ये है। और दूसरी संवेदनशीलता है दूसरों के प्रति जैसे इस बात को जान लेना कि दूसरा मनुष्य भूखा है कि नहीं, जो भोजन उसको दिया है वो उससे सुखी हो रहा है कि नहीं या कि उल्टा दुखी हो रहा है। किस अवस्था में दूसरा मनुष्य कैसा अनुभव कर रहा होगा आदि आदि का ज्ञान कर लेने को संवेदनशीलता कहते हैं। और ये सुख और दुख दोनों में होता है नाकि केवल दुखों मं। जैसे यदि आपकी आंख स्वस्थ है वो सभी प्रकार के दृश्यों को उतनी ही स्पष्टता से देखेगी चाहे वो दृश्य सुख वाला हो या दुख वाला। तो संवेदनशीलता का सीधा संबंध सुख दुख से नहीं है बल्कि उस अंग की स्वस्थता से है जिससे हमें उसका ज्ञान या अनुभव हो रहा है। और अच्छी व्यवस्था में तो आप सर्वाधिक स्वस्थ होंगे तो सुखी मनुष्य अधिक स्वस्थ होता है और अधिक संवेदनशील भी। नयी व्यवस्था में सभी का स्वास्थ्य बढ़ेगा और परिणामस्वरूप संवेदनशीलता भी बढ़ेगी। अस्वस्थ मनुष्य अपने प्रति भी सही से संवेदित नहीं रह पाता क्योंकि उसके अंग सही से कार्य नहीं कर रहे होते हैं जैसेकि ज्वर से पीड़ित मनुस्य की जिभ्या स्वाद के प्रति संवेदिन नहीं रहती। वो सही से किसी व्यंजन का स्वाद नहीं बता सकता। संवेदनशीलता का सीधा संबंध बाहय करण के स्वास्थय और अंतःकरण के विकास से है नाकि सुख दुख से। मनुष्य अपने इन करणों के माध्यम से विषयों को धारण करके सुख अथवा दुख का अनुभव करते हैं। तो संवेदनशीलता हमारे करणों पर आश्रित है ना कि सुखों और दुखों पर। अब जैसे छोटा बच्चा है जोकि अंतःकरण का विकास ना होने के कारण दूसरों की अवस्था के प्रति संवेदित नहीं होता। वो केवल अपने प्रति ही संवेदित होता है क्योंकि उसके वाहय करण ही कार्य कर रहे होते हैं। और उपर आप पढ़ ही चुके हैं कि अंतःकरण के विकास के लिए शिक्षा उत्तरदायी है। जो मनुष्य दूसरे मनुष्यों के सुख से जितना सुखी होता है और दूसरों के दुख से जितना दुखी होता है वो उतना ही संवेदनशील कहलायेगा। तो सुख और दुख तो संवेदनशीलता की कसौटी हैं नाकि कारण। ऐसा नहीं है कि मनुष्य सुख में कम संवेदनशील होता है और दुख में अधिक। बल्कि मनुष्य दूसरे मनुष्यों के सुखों और दुखों को कितनी गहराई से अनुभव करता है, इसी को उसकी संवेदनशीलता की गहराई कहेंगे।

प्रश्न 10:– हमारे जीवन में केवल और केवल सुख होने से क्या हमारा जीवन नीरस नहीं हो जायेगा? और सबकुछ मिल जाने से मनुष्य आने वाले भविष्य में किस लिए उत्सुक होगा, भविष्य में किस बात की आशा करेगा?

उत्तरः– ये भी समझने जैसा है कि ये नीरस क्या है और किन कारणों से नीरसता उत्पन्न होती है हमारे अंदर। जब कोई भोग हमें सुख नहीं देता तो हम उस भोग से नीरस हो जाते हैं। अर्थात उस भोग को पुनः भोगने की ईच्छा नहीं होती। इस बात को या ऐसी अवस्था को नीरस होना कहते हैं। नीरस का अर्थ माने अब उस विषय में कोई रस नहीं आता। रस यानिकि सुख। यानिकि अब उस विषय में कोई सुख प्राप्त नहीं होता है अब हम उससे उब चुके हैं। और यदि ये बात सम्पूर्ण भोगों पर आ जाये अर्थात यदि हमें जीवन में ना तो कोई ज्ञान या ना तो कोई कर्म और ना तो कोई भोग ही रस दे रहा हो या सुख दे रहा हो तो ऐसी अवस्था में हम जीवित बने रहना ही नहीं चाहेंगे। और उसी समय हमारी चेतना समाप्त हो जायेगी अर्थात हम वर्तमान शरीर में जीवित बने नहीं रहेंगे। बिना ईच्छा के कोई चेतनता सम्भव नहीं है। हम निद्रा के बाद केवल इसीलिए जाग जाते हैं क्योंकि हमारे अन्दर ईच्छाएं होती हैं। यदि कोई ईच्छा ना रहे तो इस शरीर में कोई व्यक्तित्व या कोई जीव नहीं रहेगा और ये शरीर निर्जीव हो जायेगा अर्थात निर–व्यक्तित्व हो जायेगा या कहे मृत हो जायेगा अमृत नहीं रह जायेगा। ये जीव या कहें व्यक्तित्व ही इस शरीर को दिशा प्रदान करता है, जिससे प्रेरित होकर इस शरीर की चेतन और अचेतन प्रक्रियाएं चलती रहती हैं। जब किसी भी प्रकार की कोई ईच्छा ही हमारे अंदर उत्पन्न नहीं हो रही हो चेतन या अचेतन रूप से तो भला हम जीयेंगे किस लिए? और जब हम शरीर में होंगे ही नहीं तो हमारे अंदर अगली स्वांस ही क्यों आयेगी? कोई भी अंग क्रियाशील ही क्यों रहेगा? किसी भी प्रकार की गति ही क्यों होगी? यानिकि हम तो मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। तो इसमें समस्या क्या है? जीवन का उददेश्य था कि हम अपने सभी प्रकार के ईच्छित सुखों को प्राप्त कर लें और वो कर लिये और अब और कोई ईच्छा उत्पन्न नहीं हो रही है तो

हम ना होने में चले जायेंगे। अर्थात एक लम्बे विश्राम में चले जायेंगे जब तक कि हमारे अंदर पुनः किसी प्रकार के सुख की ईच्छा नहीं होती। ये इसी प्रकार होता है जैसे कि हम भोजन कर रहे हैं और वो भोजन करने की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि वो हमें सुख देती रहती है। जैसे ही उसका सुख देना समाप्त हो जाता है हम भोजन करना स्थगित कर देते है अगले समय तक के लिए। उसी प्रकार यदि हम सभी सुखों से उपराम हो जाते हैं तो एक लम्बे विश्राम में चले जाते हैं नींद के जैसे। इसमें तो हमें कोई दुख नहीं होता बल्कि ये सब तो सुखी सुखी होता रहता है। जब हम अपना भोजन पूर्ण करके उसे अगले समय तक के लिए स्थगित करते हैं तो क्या इस प्रक्रिया में हमें कोई दुख होता है? कोई दुख नहीं होता। और यदि आप ये कहना चाह रहे हैं कि दुख हमारे जीवन में रस पैदा करते हैं तो इसका भी निरीक्षण करके देख लेते हैं। क्या हमारे जीवन में किसी दुख के कारण कोई रस पैदा होता है या रस पैदा होने का कोई और कारण है? आओ रस पैदा होने की पूरी प्रक्रिया को देखते है और समझने का प्रयास करते हैं। स्वाद के उदाहरण से लेते हैं। सबसे पहले हमें कुछ खाने की इच्छा होती है और फिर हम कुछ स्वादिष्ट व्यंजन की खोज में लगते हैं। और विभिन्न व्यंजनों को स्वाद करते हैं। जिस व्यंजन में हमें ईच्छित संतुष्टि प्राप्त होती है उसे हम खाना स्वीकार कर लेते हैं या कहें कि उसमें हमें रस प्राप्त होता है या कहें कि उसमें हमें सुख प्राप्त होता है। तो यहां आप देखेंगे कि रस या सुख एक ही बात लग रही है। क्योंकि सुख ही तो जीवन का रस है। सुख ही तो जीवन का लक्ष्य है। क्या दुख के समय भी ऐसा होता है? आप कहेंगे कि नहीं होता। दुख को देखें कि दुख कब होता है। जब भूख के कारण कुछ खाने की ईच्छा होती है तब हम कुछ खाने की खोज करते हैं। और फिर वैसे ही चख चख कर देखते हैं कि हमें क्या खाना है। परंतु यदि हमें कुछ भी ऐसा ना मिले जिससे कि हमें खाने पर सुख या संतुष्टि होती हो तो हमें दुख होने लगता है। या खाने को ही कुछ ना हो हमारे पास, तो भी दुख होने लगता है। तो तब क्या हम कहते हैं कि देखों इस दुख से जीवन का रस प्राप्त हो गया या अब जीवन में रस बढ़ जायेगा? कभी नहीं कहते। तो उपर के उदाहरण से हम समझ गये होंगे कि जब भी

हमारी ईच्छाओं के अनुरूप गति होती रहती है, उसमें हमें सुख और संतुष्टि का या कहे कि रस की प्राप्ति होती रहती है। और अगर हमारी ईच्छाओं के अनुरूप गति नहीं होती या विपरीत गति होती है तो हमें दुख होता है और असंतुष्टि होती है या कहें कि रस पैदा नहीं होता। दुख की अवस्था ही नीरसता पैदा करती है। जिस भी भोग से हमें दुख पैदा होता है तो भविष्य में उसकी ईच्छा ही पैदा नहीं होती हमारे अंदर। बल्कि उससे तो बचने की ईच्छा ही पैदा होती है। तो रस का सीधा संबंध सुख से है, ईच्छा के अनुरूप गति से है नाकि दुखों से। तो अब हम समझ सकते हैं कि दुख तो ईच्छा के प्रतिकूल गति के कारण पैदा होती है जोकि हम कभी नहीं चाहते। दुख एक अवांछित अवस्था हैं हमारे जीवन की जिससे कोई रस पैदा नहीं होता बल्कि नीरसता ही पैदा होती है। उदाहरण के लिए आप किसी सुख की ईच्छा में कोई कार्य बार बार करते हैं और यदि परिणाम हमारी ईच्छानुसार नहीं आता तो उस कार्य में हमारा रस खोने लगता है और हम उस कार्य में नीरसता अनुभव करते हैं और शीघ्र ही उस कार्य को करना हम बंद कर देते हैं। जैसे जिस व्यवसाय से हमको कोई आय ना होती हो या हानि हो रही हो तो हम उसे करना बंद कर देते हैं जैसे ही हमें ये समझ आती है कि इससे हमारी ईच्छाएं पूरी नहीं होंगी। उसी प्रकार यदि उस व्यवसाय से हमें लाभ हो रहा हो तो उसमें हमें रस रहता है। इसप्रकार हम समझ गये होंगे कि जीवन में रस सुख से बना रहता है और दुख से तो रस में कमी आती है। बल्कि सुख को रस और दुख को नीरस कह सकते हैं।

भविष्य में और अधिक सुख पा सके उसकी आशा रहेगी मनुष्य को। ये तबतक रहेगी जबतक कि हम एक संतुष्टि का स्तर नहीं पा लेते। प्रत्येक मनुष्य का अपना अपना संतुष्टि का स्तर होता है। ऐसी कोई समस्या इस नयी व्यवस्था में नहीं रहेगी। जीवन में दुख रहने से तो भविष्य के प्रति भय रहता है हमारे अंदर कि कहीं भविष्य में ये दुख फिर से ना आ जाये। दुख से तो वर्तमान और भविष्य में भय का ही सृजन होता है नाकि किसी प्रकार के रस का।

प्रश्न 11:– साधू संत कहते रहते हैं कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलु हैं। यदि एक को चाहेंगे तो दूसरा भी रहेगा ही जीवन में। इस बारे में आपका क्या कहना है। क्योंकि यदि ये सही है तो फिर आपकी व्यवस्था में भी दुख बने ही रहेंगे?

उत्तरः– जी हां यदि ये कथन सही है तब तो सुख के साथ दुख बना ही रहेगा। और जितना गहरा सुख होगा उतना ही गहरा दुख लिये होगा। परंतु मेरी खोज के अनुसार ये कथन सत्य नहीं है। सुख दुख एक ही सिक्के के दो पहलु नहीं है बल्कि ये दो अलग अलग सिक्के हैं। इसे समझने का प्रयास करते हैं। आओ देखें कि ये सुख और दुख हमें किस प्रक्रिया में आते हैं। उदाहरण लेते हैं मान लो कि किसी ने हमें कोई सम्मानजनक शब्द कहे और किसी ने हमें असम्मानजनक शब्द कहे। ये दो घटनाएं हमारे साथ हुई। पहली घटना में हमें सुख प्राप्त हुआ और दूसरी घटना में हमें दुख प्राप्त हुआ। ये दोनों अलग अलग घटनाएं हैं। एक और उदाहरण लेते हैं कि मान लो आपको रसगुल्ला बहुत पसंद है यानिकि आपको रसगुल्ला खाने में बहुत सुख मिलता है। लेकिन यदि रसगुल्ला आपको भरे पेट खाने को दिया जाये तब क्या होगा? माने रसगुल्ला खाने में तो आपको सुख दे रहा है क्योंकि स्वादिष्ट लग रहा है परंतु पेट में जगह ना होने के कारण आपको पेट में दर्द अनुभव होने लगा है अर्थात पेट में दुख हो रहा है। यानिकि जीभ से सुख मिल रहा है और पेट से दुख मिल रहा है। ये दोनों घटनाएं लगभग साथ साथ हो रही हैं। लेकिन यदि हम इस घटना का सही से अवलोकन करें तो ये एक धटना नहीं है बल्कि दो अलग अलग घटनाएं हैं। चूंकि रसगुल्ला स्वदिष्ट लग रहा हैं इसलिए तो सुख हो रहा है और चूंकि पेट में स्थान रिक्त नहीं है तो उसमें रसगुल्ला जाने से पेट को फूलना पड़ रहा है जिसके कारण उसमें दर्द हो रहा है, इसलिए तो दुख हो रहा है। तो अब हम समझ गये होंगे के ये सुख और दुख दो अलग अलग घटनाओं के कारण हो रहा है। क्योकि रसगुल्ला अपने आप में तो ना सुख है और ना दुख ही है। वो तो एक वस्तु है जोकि विभिन्न परिस्थतियों में सुख और दुख के रूप में हमें परिणाम देती है। एक उदाहरण

और लेते हैं जैसे मानाकि आपको रसगुल्ला बहुत अधिक पसंद है और आपको 10 किलो रसगुल्ला खाने को दिया जाता है। आप रसगुल्ला खाना प्रारम्भ करते हैं जिससे आपको सुख मिल रहा होता है। कुछ देर के बाद आपकों अब और रसगुल्ला खाने की इच्छा नहीं रहती और अब आप नहीं खाना चाहते। परंतु यदि अब आपको मजबूर किया जाये कि आपको बचा हुआ सारा रसगुल्ला खाना होगा, क्योंकि ये तो आपको बहुत पसंद है। तो फिर क्या होगा, वहीं वस्तु आपको दुख देने लगेगी जोकि अभी तक आपको बहुत सुख दे रही थी बहुत संतुष्टि दे रही थी। अब इसमें लोग कहने लगते हैं कि देखो वहीं वस्तु आपको कभी सुख देती है और कभी दुख देती है इसलिए सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो समझने का प्रयास करते हैं कि क्या ऐसा है इस घटना में या कि कुछ और ही है। हुआ ये कि जबतक रसगुल्लों के खाने की ईच्छा रही तबतक सुख मिलता रहा और फिर एक समय ऐसा आया कि अब और रसगुल्ला खाने की ईच्छा नहीं हो रही। यदि बिना ईच्छा के अब और रसगुल्ला वो भी किसी दबाब में खाया गया तो उससे दुख पैदा हुआ। अब इस घटना से कुछ लोग कह रहे हैं कि देखो वही वस्तु कभी सुख तो कभी दुख देती है इसलिए सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलु है। जबकि ऐसा तो हो नहीं रहा। हो तो ये रहा है कि जबतक उसकी खाने की ईच्छा थी तकतक उसे सुख हो रहा था और जब वह बिना ईच्छा के किसी दबाब में या किसी मजबूरी खाने लगा तो उसे दुख हो रहा था। तो ये तो दो अलग अलग घटना हो गई। एक में वो अपनी ईच्छा से खा रहा है और दूसरी में वो बिना ईच्छा के और दबाब में खा रहा है। तो सुख का कारण अलग है और दुख का कारण अलग है। ऐसा तो कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा कि सुख दुख का या दुख सुख का कारण है। सुख और दुख तो परिणाम हैं नाकि एक दूसरे के कारण। कुछ लोग कहते हैं कि बिना दुख के अनुभव के हम किसी सुख का अनुभव नहीं कर सकते। यानिकि दूसरे शब्दों में इस बात को ऐसे कह सकते हैं कि दुख ही आधार है किसी सुख को अनुभव करने का। उपर के वार्तालाप आप समझ तो गये होंगे कि ये बात बहुत ही बचकानी है कि दुख के बिना हम सुख का अनुभव नहीं कर सकते। जबकि होता ये है कि हम अपनी ज्ञान इंद्रियों के माध्यम

से किसी भी वस्तु आदि का अनुभव करते हैं और यदि ये अनुभव हमें सुविधाजनक लगता है तो हमें इससे सुख प्राप्त होता है और यदि ये अनुभव हमें दुविधाजनक लगता है तो इससे हमें दुख प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए माना कि एक व्यक्ति को रसगुल्ला पसंद है और दूसरे को रसगुल्ला पसंद नहीं है। अब जब दोनों को एक साथ रसगुल्ला खाने को दिया जाता है तो एक को तो ये सुख देता है और दूसरे को ये दुख देता है। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि दुख सुख का आधार नहीं है बल्कि सुविधाजनक लगना ही सुख का आधार है। जब हमें किसी भोग के सम्पर्क में आने पर सुविधा अनुभव होती है तो इससे हमें सुख होता हैं नाकि इसलिए कि हमें दुखों का अनुभव है। दूसरा यदि ऐसा होता तो गरीब लोग सबसे अधिक सुखी पाये जाते, क्योंकि गरीबों ने तो बहुत दुखों का अनुभव किया होता है अपने जीवन में। और गरीब बनने की प्रतिद्वंदिता हो रही होती। प्रत्येक मनुष्य गरीब होने के लिए जुगाड़ लगा रहा होता। दुखी होने के प्रयास कर रहा होता। परंतु ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। और अमीरों को कम सुखी होना चाहिए क्योंकि उनके जीवन में तो गहरे दुख होते नहीं। एक और उदाहरण है इतिहास में बुद्ध का जिन्होंने 30 वर्ष की आयु तक किसी भी दुख का अनुभव नहीं किया था अर्थात उनका जीवन सुखी था क्योंकि उनके पिता ने उनकी ऐसी व्यवस्था की हुई थी जिसके कारण उन्हें 30 वर्ष तक कोई दुख अनुभव नहीं हुआ। एसा उनके पिता ने इसलिए किया क्योंकि उनको उनके साधू होने का भय था जोकि उनके पिता नहीं चाहते थे, कि उनका पुत्र साधू हो जाये। तो इस उदाहरण से भी हम कह सकते हैं कि सुखों का अनुभव करने के लिए दुख के अनुभव का होना कोई अनिवार्यता नहीं है। हम सीधे ही सुख या दुख दोनों अनुभव कर सकते हैं। उसके लिए केवल अनुभव करने की क्षमता होनी चाहिए हमारे पास। जोकि जन्म से ही हमारे पास होती है। ये पांच ज्ञान इंद्रियां और अंतःकरण चतुष्टय ही हमारे पास मूल अंग है विभिन्न प्रकार के अनुभवों को करने के लिए। जिनके ये स्वस्थ है तो कोई भी अनुभव किया जा सकता है।

प्रश्न 12:– परिवर्तनशीलता संसार का नियम है और साधू संतों आदि का कहना हैं कि इस परिवर्तनशील संसार में सुख संभव ही नहीं है। यदि ये कथन सत्य है तो फिर किसी भी व्यवस्था में सुख संभव ही नहीं होगा। तो आप कैसे कह रहे हैं कि आपकी व्यवस्था में सुख ही होंगे?

उत्तरः– साथियों मेरी खोज के अनुसार ये कथन भी असत्य ही है। इसे समझने का प्रयास करते हैं। परिवर्तनशीलता का अर्थ है कि इस संसार में सभी कुछ सदैव परिवर्तित होता रहता है। यहां कोई भी वस्तु या स्थिति सदैव एकसमान नहीं बनी रहती बल्कि निरंतर परिवर्तित होती रहती है। उदाहरण के लिए जैसे पानी वाष्प बनता रहता है, वाष्प बर्फ बनती रहती है और बर्फ पानी बनता रहता है, ये एक वृत्त है जल का। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु किसी छोटे या बड़े वृत्त में निरंतर परिवर्तित होती रहती है। इसी प्रकार से इस पूरे संसार का अस्तित्व बना रहता है और परवर्तित भी होता रहता है। परिवर्तन और अस्तित्व दोनों एक साथ ही बने रहते हैं। यदि ये परिवर्तनशीलता का नियम इस संसार में ना हो तो इस संसार का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। ये जिस आदि तत्व से बना है, तो इस नियम के अभाव में उसमें कोई गति ही नहीं होगी अर्थात वो आदि तत्व सदैव एक ही अवस्था में बना रहेगा और कभी भी परिवर्तित होकर संसार नहीं बनेगा। तो ये नियम इस संसार में ही नहीं बल्कि आदि तत्व में ही है और आदि तत्व में होने के कारण ही ये नियम इस संसार में भी सर्वत्र ही हमें अनुभव होता है। इसी नियम के कारण इतनी विभिन्नता इस संसार में उत्पन्न हो पाती है। इतने सारे पदार्थों की रचना हो पाती है। या दूसरे शब्दों में कहें तो इतने सारे सुख के साधन उत्पन्न हो पाते हैं। अगर ये परिवर्तनशीलता का नियम उस आदि तत्व में ना होता तो कुछ भी ना होता। और उस आदि तत्व का होना भी किसी प्रयोजन का ना होता। वो सदैव ही आदि तत्व रहता उससे आगे कुछ नहीं। फिर उसकी कोई महिमा भी नहीं होती ना ही उसका कोई महत्व होता अर्थात वो कुछ भी ना होता। परिवर्तनशीलता एक बहुत ही आधारभूत और बड़ा ही महत्वपूर्ण गुण है उस आदि तत्व में जिसे हम सब आत्मा या

परमात्मा के नाम से जानते हैं। तो ये नियम या ये गुण परमात्मा में ही है और इसीलिए इस संसार की उत्पत्ति में भी इस नियम का सर्वाधिक महत्व है। इतनी चर्चा से हम समझ सकते हैं कि ये परिवर्तनशीलता किसी दुख या सुख के लिए उत्तरदायी नहीं है। ये तो केवल पदार्थों में परिवर्तन करते हुए विभिन्न प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति करने में सहायक है और फिर वृत्त के आधार से सारे पदार्थ हमें कहीं ना कहीं सदैव ही प्राप्त रहते हैं। उदाहरण के लिए जल तीनों रूपों में सदैव ही हमें प्राप्त रहता है जबकि तीनों रूपों में भी निरंतर परिवर्तन होता रहता है। तो ये तो एक सुख देने वाला सदगुण है परमात्मा में या प्रकृति में। नाकि कोई दुख देने वाला अवगुण। ये परिवर्तनशीलता का गुण किसी भी दुख के लिए कारण नहीं है। और सुख दुख कैसे हमारे जीवन में उत्पन्न होते हैं वो आप उपर के प्रश्नों में पढ़ ही चुके हैं। और भी अधिक विस्तार से समझने के लिए मेरी पुस्तक जीवनदर्शन को पढ़ें।

प्रश्न 13:– समाजवाद और कम्युनिष्ट व्यवस्था देखने में आदर्श लगती है परंतु वह असफल हुई, आपको क्या कारण लगता है?

उत्तरः– समाजवाद और कम्युनिष्ट वाद ही नहीं बल्कि बाकि भी सारी व्यवस्थाओं में तो यही लिखा है कि सबको सबकुछ समानता के आधार से प्राप्त होना चाहिए। चारों ओर सुख ही सुख होना चाहिए। दुख कहीं पर भी ना हो। सभी लोग रामराज्य की आशा करते हैं जोकि एक राजाओं पर आधारित व्यवस्था थी या किसी स्वर्ग की कामना करते हैं जहां कि सभी प्रकार के सुख सरलता से ही प्राप्त हो जाते है, वो भी बिना किसी दुख के। तो सारे ही वाद इसलिए ही लाये गये कि यहां सर्वत्र सुख ही सुख हो जाये। परंतु जब भी इस सुख वाली अवस्था को लाने के लिए कोई संविधान बनाये गये तो उनसे आज तक ऐसा हो नहीं पाया है, इसीलिए वो असफल हुए। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि कुछ भी नहीं हुआ हो। कई विभाग में स्थिति पहले से कुछ अच्छी हुई तो कुछ में खराब भी हुई है। कई प्रकार की

व्यवस्थाएं अब तक प्रयोग में ले चुके हैं। परंतु अभी तक वो सुंतुष्टि वाली स्थिति प्राप्त नहीं हुई है जोकि हम चाहते हैं। मेरी समझ में सभी व्यवस्थाओं के असफल होने का बड़ा और मूल कारण ये है कि सभी कारकों पर मूल स्थिति से विचार विमर्श नहीं किया गया। जैसे कि मनुष्य को नहीं समझा गया जिसके लिए हम ये व्यवस्था लाना चाहते हैं। इस संसार को भी मूल से नहीं समझा गया जिसमें कि व्यवस्था करनी है। जीवन का क्या उददेश्य है, इस पर बहुत पहले से विचार विमर्श चलता आ रहा था, परंतु कोई ऐसा निष्कर्ष नहीं आया जिसपर सभी लोग सहमत हो पाते। आपने पूर्व में देखा होगा कि हर बार व्यवस्था परिवर्तन में बहुत लड़ाइयां हुईं क्योंकि सभी लोग उन समाधानों पर सहमत नहीं थे। वो सारी व्यवस्थाएं मनुष्य को दो वर्गों में बांट देती थी अच्छे और बुरे के रूप में। और परिणाम ये हुआ कि सारा समय हम लोग आपस में एक अपने को अच्छा और दूसरों को बुरा बोलकर लड़ते ही आये हैं। और इस समाजवादी व्यवस्था में भी लोगों को ये ही बता कर ये व्यवस्था लायी गयी थी कि आपके सारे दुख दूर हो जायेंगे आपको वो सबकुछ मिलेगा जोकि अभी केवल धनवान लोग भोग रहे हैं। परंतु रूस में 30 या 40 वर्षों तक लोगों ने देखा कि ऐसा तो कुछ हुआ नहीं। अब और वो कितनी प्रतीक्षा करते अच्छे दिन आने की। अभी भी आर्थिक आधार से कई वर्ग थे। गरीब अभी भी गरीब ही था और उसका शोषण जारी था। एक कमरे में ही अभी भी कई कामगारों को रखा जाता था। उनके पास कोई स्वतंत्रता नहीं थी। अपनी कुछ भी समस्या को कहीं रखने के लिए कोई स्वतंत्र स्थान नहीं था। यदि व्यवस्था की कमियों के बारे कोई कुछ कहता तो उसे मार दिया जाता। ऐसी भयग्रस्त व्यवस्था के रूप में ये समाजवाद आने लगा था। नाम तो समाजवाद था पर अभी भी एक वर्ग का ही शासन था, समाजवाद जैसा कुछ भी नहीं था। और शासक वर्ग ऐसे ही व्यवहार कर रहा था जैसा कि राजा लोग करते थे। और ये अमीरों की तरह ही सारी सुख सुविधाओं का भोग कर रहे थे जबकि दूसरे लोगों को ये सब प्राप्त नहीं था। कहा तो ये गया था कि अब श्रमिक लोगों की ही दुनियां होगी, उनका ही राज होगा, परंतु ऐसा हुआ नहीं। अभी भी कुछ लोग ही शासन व्यवस्था में थे और राजाओं की तरह ही वो शासन चला रहे थे। लोगों ने समझा था

कि समाजवाद यानिकि समाज का शासन यानिकि हमारा शासन, पर ऐसा कुछ निकला नहीं और ये व्यवस्था असफल हो गयी। बल्कि लोगों को पूंजीवादी व्यवस्था अधिक सही लगने लगी। उसमें उन्हें स्वतंत्रता अधिक दिखाई पड़ने लगी थी। इसलिए

धीरे धीरे रूस भी इसी पूंजीवाद पर आने लगा। पर इस बार मैंने इन सभी का समाधान खोज दिया है, वो भी मूल में जाकर। तो इस बार कोई कारण नहीं रहेगा कि जो सुख की अवस्था हम सब चाहते हैं वो ना आये। आप केवल पढ़कर भी इसे समझ सकते हैं कि इस नयी व्यवस्था से अपेक्षित परिणाम आ जायेगा। ये व्यवस्था लोगों को अच्छे या बुरे रूप में विभाजित नहीं करती, इसलिए ये व्यवस्था किसी भी मनुष्य के विपरीत नहीं है। इस व्यवस्था के आने से सभी सरलता से सहमत भी हो जायेंगे और इससे सभी का लाभ होगा। किसी भी मनुष्य को इस व्यवस्था के आने से कोई हानि नहीं है। इसे समझना बहुत आसान सा है। अपने अपने स्तर पर सभी इसको समझ सकते हैं। इस व्यवस्था के आने से सभी मनुष्य आर्थिक समानता को प्राप्त हो जायेंगे। सभी को प्रत्येक प्रकार की स्वतंत्रता समानरूप से ही प्राप्त रहेगी सदैव। सभी का जीवन एक समान रूप से उच्च गुणवत्ता वाला होगा। एक ऐसा स्वतंत्र विभाग होगा जिसमें कोई भी अपनी राय दे सकेगा यदि उसके पास किसी भी समस्या का कोई भी समाधान है। और इसको सभी आनलाईन देख भी सकेंगे। और ये ही नहीं शासन और प्रशासन के सारे कार्य आन लाईन देखे जा सकेंगे कि वो क्या कर रहे हैं, क्या करने जा रहे हैं और क्यों कर रहे हैं आदि। अंतिमरूप से जनता का निर्णय ही अंतिम होगा इस नयी व्यवस्था में। और ये अधिकार केवल मतदान के समय ही नहीं बल्कि मतदान के बाद भी सदैव ही जनता के पास रहेगा। इस नयी व्यवस्था में सभी का मान समान ही रहेगा। समान ही जीवन स्तर रहेगा। समान ही सभी प्रकार की स्वतंत्रताएं रहेंगी आदि।

प्रश्न 14:– सही और गलत का निर्धारण कैसे हो? नैतिक और अनैतिक क्या है? क्या किसी को किन्हीं विशेष परिस्थतियों में जान से मारना उचित है?

उत्तरः– जिससे सभी को सुख उत्पन्न हो वो सही है और जिससे दुख उत्पन्न हो वो गलत है। तो सही और गलत का निर्धारण सुख और दुख से ही होता है। सुख होने का अर्थ सही और दुख होने का अर्थ गलत। हम सभी सुखी होना चाहते हैं अर्थात हमारे जीवन का उददेश्य सुख प्राप्ति है। तो सुख ही कसौटी होगा कि जो हो रहा है वो सही है या गलत, ये जानने का। नैतिक का अर्थ होता है, नीति के अनुसार अर्थात जीवन को सुखी करने के लिए नीतियां बनाई जाती है। जोकि इसी बात को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं कि उनसे हमारे जीवन के उददेश्य की प्राप्ति हो। और जीवन का उददेश्य है सुखी होना। तो नैतिक और अनैतिक का निर्धारण भी जीवन के उददेश्य के आधार से ही होगा। जो करने से सुख होता है वो नैतिक और जो करने से दुख होता है वो अनैतिक। तो जो करने से हमारे जीवन का उददेश्य प्राप्त होता है वो सब नैतिक होगा और बाकि अनैतिक होगा।

यदि कोई मनुष्य किसी कारण से ऐसा मनोरोगी हो गया है, जोकि दूसरे लोगों की हत्याएं कर रहा है या कि कर सकता है और उसकी चिकित्सा उपलब्ध नहीं है तो उसको मृत्यु दिया जा सकता है। और यदि कहीं पर ऐसी परस्थितियां आ गयी हैं कि यदि आपने सामने वाले को नहीं मारा तो वो आपको मार देगा अर्थात आत्मरक्षा में भी आप संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों को मृत्यु दे सकते हो। लकिन यदि व्यवस्था की दृष्टि से इस बात का अवलोकन करें तो उस समय ये कार्यवाही की जाये परंतु साथ ही ये भी खोजना चाहिए कि कहीं व्यवस्था की किसी कमी के कारण तो ऐसी घटना नहीं हुई है। यदि कोई कारण दिखे तो उसे तुरंत सही करना चाहिए नहीं तो ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति होती रहेगी। और मेरी समझ में 99 प्रतिशत से अधिक इसी बात की संभावना है कि किसी भी दुर्घटना के लिए व्यवस्था ही जिम्मेवार होती है। क्योंकि मनुष्य स्वभाव से ही सुखप्रेमी होता है और वो स्वप्न में भी कभी कोई ऐसी क्रिया जानपूछ कर नहीं करता जिससे कि उसे दुख हो। या तो उस बारे में वो अज्ञानी होता है और या तो खराब व्यवस्था के कारण वो अपने आपको मजबूर पाता है वैसा करने को। तो कोई भी दुर्घटना होने पर व्यवस्था में कमी की जांच उच्चस्तर से होनी चाहिए।

प्रश्न 15:– हम कैसे जान सकते हैं कि कोई व्यवस्था सफल हो रही है या नहीं? अर्थात व्यवस्था की सफलता की कसौटी क्या है?

उत्तरः– यदि हम सभी के जीवन का उददेश्य सरलता से निरंतर प्राप्त हो रहा है तो हम कह सकते हैं कि व्यवस्था सफल है अन्यथा तो व्यवस्था असफल ही मानी जायेगी और उसमें सुधार का कार्यक्रम चलता रहना चाहिए। यानिकि हम सबके व्यक्गित सुख, पारिवारिक सुख, सामाजिक सुख और सामष्टिक सुख यदि निरंतर प्राप्त हो रहे हैं तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि व्यवस्था सफल है। यदि हमारे जीवन का उददेश्य प्राप्त हो रहा है तो यही कसौटी भी है। उददेश्य ही कसौटी होता है।

प्रश्न 16:– जीवन में कुछ भी आदर्शरूप में नहीं होता। सबके अपने लाभ और हानियां दोनों होते हैं। अबतक बहुत सारी व्यवस्थाएं आयीं और असफल रही। आपकी बतायी हुई व्यवस्था में ऐसा क्या है जिससे कि ये सफल हो जायेगी?

उत्तरः– मेरी खोज के अनुसार ये कथन भी सही नहीं है। जीवन में तीनों प्रकार की बातें होती हैं। ऐसी बातें भी होती हैं, जिनका केवल लाभ ही हो। ऐसी बातें भी होती है जीवन में, जिनसे केवल हानि ही होती है। और जीवन में ऐसी बातें भी होती हैं जिनका जीवन में लाभ और हानि दोनों होती हैं। हम सभी अपने जीवन में सुबह से सायंकाल तक तीनों प्रकार की बातों का अनुभव करते रहते हैं। इस बात को यदि व्यवस्था के संदर्भ में देखा जायें तो कहा जा सकता है कि व्यवस्था भी तीनों प्रकार की हो सकती है। एक वो जिससे केवल लाभ ही हो सदैव या ऐसी भी हो सकती है जिससे केवल हानि ही हो सदैव या ऐसी भी हो सकती है कि लाभ और हानि दोनों हों। साधारणतः पूर्ण हानि वाली कोई व्यवस्था अपने जीवन में लाता नहीं क्योंकि हानि कोई चाहता ही नहीं। तो दो प्रकार की व्यवस्थाओं का ही जीवन में उपयोग होता है। कम से कम मनुष्य अपने लाभ की बात को तो देखकर चलता ही है चाहे उससे किसी और को हानि ही होती हो। अब ये

अलग बात है कि दूसरे की हानि भी कोई नहीं चाहता पर जब वो देखता है कि उसके पास कोई ऐसा विकल्प नहीं है जिससे कि उनको लाभ भी हो जाये और दूसरे को हानि भी ना हो तो वो मजबूरी में ऐसे विकल्प को चुनता है। जिससे उसे लाभ हो जाता है और दूसरे को हानि हो जाती है। यदि हमको ऐसा विकल्प मिले, जिससे केवल लाभ ही होता हो और किसी को उससे हानि ना होती हो तो निश्चित रूप से हम सब ऐसे ही विकल्प को चुनेंगे। तो ऐसी भी व्यवस्था हो सकती है, जिससे कि सबको लाभ ही होता हो बल्कि ऐसी भी व्यवस्था हो सकती है, जिससे सबको अधिकतम लाभ हो और हानि कोई भी ना होती हो। और ये व्यवस्था जो मैंने लिखी है, ये उस कोटि की ही है। जिससे सभी को अधिकतम लाभ होगा और हानि किसी को भी नहीं होगी। आप सब इस व्यवस्था को पढ़कर आसानी से समझ भी सकते हैं कि हां ऐसा हो जायेगा। ऐसा होना कोई कठिन नहीं है बस एक बार बात हमारे ज्ञान में आ जाये। जैसे जब तक मोबाइल की खोज नहीं हुई थी तो तबतक ये कठिन तो क्या बल्कि असंभव था कि हम दूर रहते हुए भी एक दूसरे से बात कर सकें। पर खोज के बाद में सबके संज्ञान में ये बात आ गई है और अब आसानी से एक दूसरे से बात कर पाते हैं। तो बात बस ज्ञान की है और कुछ नहीं। जबतक किसी का आदर्शरूप का ज्ञान नहीं हो जाता तबतक ऐसा ही लगता है कि किसी का आदर्शरूप नहीं होता। जबकि जीवन में ऐसी कई बातें हैं जिनका आदर्शरूप हम अनुभव करते हैं। कई बार खाना हमें ऐसा स्वदिष्ट मिलता है कि ऐसा लगता है कि क्या इससे भी अधिक स्वादिष्ट खाना हो सकता है। कई बार वातावरण का ऐसा तापमान होता है कि हमें लगता है कि कांश ऐसा तापमान पूरे वर्ष रहे तो बहुत सुख हो जाये। कई बार हमें ऐसा लगता है कि इससे अच्छी पिक्चर नहीं हो सकती। तो कई बार आदर्शात्मक घटनाएं हमारे जीवन में होती है जबकि अभी तो सही व्यवस्था भी हमारे जीवन में नहीं है। अब जब सही व्यवस्था हमारे जीवन में होगी तो लगभग सबकुछ आदर्शात्मक रूप से ही हम सबके जीवन में सदैव ही घटित होता रहेगा। अब सोचो, यदि आपका जीवन सदैव ही आपकी ईच्छा के अनुरूप ही चलता रहे तो क्या ये आदर्श स्थिति नहीं

होगी किसी व्यवस्था की? निश्चित रूप से होगी। और ये सबके जीवन में होने ही वाला है।

प्रश्न 17:– प्रत्येक मनुष्य की अपनी समझ होती है कि उसके लिए क्या सही है। तो ऐसे में सभी मनुष्य कैसे किसी एक व्यवस्था के लिए आपस में सहमत हो सकते हैं?

उत्तरः– जी हां सभी की अपनी अपनी समझ होती है ये बात सही है। परंतु वह सारी प्रकार की समझ का तो एक फ्रेम ही होता है ना। जैसे किसी फुटबाल मैच में सब अपनी अपनी जगह पर खेलते हैं, परंतु सब एक ही मैच में एक दूसरे के साथ खेल रहे होते हैं। इसी प्रकार से एक व्यवस्था में सबकी अपनी अपनी जगह होती है, सबकी अपनी अपनी पसंद नापसंद होती है, सबके अपने अपने काम होते हैं, जिसके लिए अलग अलग प्रकार की समझ चाहिए होती है। भोजन में भी किसी को कुछ भोजन पसंद है और किसी को और कुछ पर व्यवस्था में तो सभी कुछ उपलब्ध रहता है जिसको जो चाहिए ले ले। तो विभिन्न प्रकार की समझ वाले होकर भी किसी ऐसी व्यवस्था के लिए सभी एकमत हो सकते हैं, यदि उस व्यवस्था में सभी का जीवन वैसा मिलता हो जैसाकि वो अपना जीवन जीना चाहते हैं। उदाहरण के लिए बाजार में यदि कोई ऐसा प्रोडक्ट आता है जोकि सबकी पहुंच में भी है और वो सबका जीवन भी आसान बना दे रहा है तो ऐसे प्रोडक्ट पर सभी आसानी से और शीघ्रता से एकमत हो जाते हैं और उसका उपयोग करते हैं। या कभी कोई समाज में नया नियम सरकार ने बनाया और वो सबके या अधिकतर के हित का हुआ तो सभी एकमत हो जाते हैं। तो ये नई व्यवस्था तो सभी के हित के लिए ही सारी बाते कर रही है, सारा ढांचा ही ऐसा बना है इस व्यवस्था में। तो कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि सभी लोग सहमत नहीं होंगे। हां जबतक लोगों को पूरा समझ नहीं आता तबतक कोई हल्के रूप से अपनी असहमती दिखा सकता है। पूरा समझ आने पर आसानी से सहमती आ जायेगी सबकी। और देर सबेर तो समझ में आ ही जाना है सबको।

प्रश्न 18:– क्या मृत्यु मनुष्य के लिए सदैव समस्या बनी रहेगी? क्या मनुष्य अमर हो सकता है?

उत्तरः– मनुष्य जीवित बने रहना चाहता है क्योंकि जीवन में वो अपनी ईच्छानुसार सारे प्रकार के सुख प्राप्त करना चाहता है। उसे ये अनुभव होता है कि जोभी उसको अभी 50 या 80 वर्ष की औसत आयु मिलती है उसमें उसकी ईच्छाएं पूरी नहीं होती है। अब देखते हैं कि क्या यदि उसको ऐसा जीवन मिल सके जिसमें उसको जन्म से ही सदैव के लिए सुखी जीवन मिल सके तो क्या उसकी आयु स्वभाविकरूप से अधिक हो जायेगी? और क्या तब उसका अनुभव ये होगा कि भाई बहुत हो गया, अब तो सारी ईच्छाएं पूर्ण हो चुकी हैं, चलो अब लम्बी नींद सो जाते हैं। यानिकि मृत्यु का अपनी ईच्छा से वरण करते हैं? और दूसरी बात ये है कि दुख, चिंताएं, अशुद्ध खानपान आदि से हमारी स्वभाविक आयु घट जाती है। यदि ऐसी व्यवस्था हो जाये कि जीवन में किसी भी प्रकार की दुख, चिंताएं पैदा ही ना हो और खानपान शुद्ध हो जाये यानिकि प्रत्येक प्रकार की संतुष्टि जीवन में अनुभव हो, तो स्वभाविकरूप से हमारी आयु बढ़ जायेगी। वैज्ञानिको का मानना है कि 150 से 200 वर्ष तक की औसत आयु मनुष्य प्राप्त कर सकता है। परंतु मेरा अनुमान है यदि जीवन में कोई दुख आदि ना उत्पन्न हों और सुख ही सुख हो, तो मनुष्य को औसत आयु 400 वर्ष आसानी से प्राप्त हो जायेगी। वो भी युवा के जैसे ही नाकि जीणशीर्ण अवस्था में। 200 या 400 वर्ष की आयु में तो निश्चित रूप से ऐसा अनुभव मनुष्य को नहीं होगा कि ईच्छाएं अधूरी रह गयी और मृत्यु आ धमकी, ऐसा मुझे लगता है।

तीसरी बात विज्ञान पर आधारित है वो है कि आज नहीं तो कल विज्ञान ऐसी अवस्था में पहुंच सकता है जोकि मृत्यु के सारे कारणों को जानकर इसप्रकार की सुविधा दे दे, कि भाई जिसको जबतक जीवित रहना है, वो जीवित बने रह सकता है। वो भी एकदम युवा रूप में। और जब इस जीवन से उपराम हो जाये तो ईच्छामृत्यु ले सकता है। मेरा अनुमान है कि इस नयी व्यवस्था के आ जाने पर बहुत शीध्रता से वैज्ञानिक इस ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हैं। क्योंकि इस नयी व्यवस्था में वैज्ञानिक भी सही दिशा में ही खोज

करेंगे नाकि अस्त्रों शस्त्रों की खोज करेंगे। और नयी व्यवस्था में तो वैज्ञानिकों की संख्या भी आज की तुलना में बहुत अधिक हो जायेगी। संसाधन भी उन्हें आज की तुलना में बहुत अधिक उपलब्ध हो जायेंगे। एक दिन मनुष्य अमरता को प्राप्त हो सकता है।

प्रश्न 19:– आपसी संबंधों के बीच की समस्याओं का समाधान इस व्यवस्था में किस प्रकार से होगा?

उत्तरः– उपर सारी पुस्तक पढ़ने के बाद आप इस बारे में बहुत तो समझ ही गये होंगे। आज के समय मनुष्यों के बीच के संबंध अच्छे नहीं रह पाते और उसके दो मुख्य मूल कारण हैं, पहला परिवार में सभी आर्थिकरूप से आत्मनिर्भर नहीं हैं। और दूसरा संबंधों की उचित शिक्षा नहीं है। अब इनको एक एक करके समझते हैं। हम यदि अपने परिवार का ही गहराई से अध्ययन करें तो पायेंगे कि उनमें जब भी कोई विवाद हुआ होगा, उसके मूल में हम धन को ही पायेंगे। और ऐसा इसलिए होता है क्योंकि पूरा परिवार धन के लिए एक आदमी पर निर्भर करता है। जिसको जो भी चाहिए होता है, वो उस आदमी से ही मांग करेगा अपनी। यदि उस आदमी के पास पर्याप्त धन हुआ तब तो ठीक है, नहीं तो वहां ही मनमुटाव हो जायेगा। इस व्यवस्था में तो सभी सरकार पर निर्भर करेंगे। सभी अपनी मांगे सरकार से ही सीधे मांग लेंगे। और लगभग सभी मांगे उनकी पूरी भी हो जायेंगी। ऐसी अवस्था में संबंधों के बीच तो धन आयेगा नहीं। अब तो संबंधों की वास्तविकता ही बचेगी। अब हम संबंध केवल प्रेम के लिए ही बनायेंगे। जिससे प्रेम अनुभव होगा और जबतक होगा, तबतक संबंध रहेंगे। नहीं तो संबंध विच्छेद हो जायेगा। अब संबंध केवल प्रेम के लिए ही बनेंगे, धन के लिए नहीं। और प्रेम तो ऐसा है कि एक से नहीं मिलेगा तो किसी और से मिल जायेगा। लेकिन धन में ऐसा नहीं था कि एक से नहीं मिलेगा तो किसी और से मिल जायेगा। इसलिय धन ही मूल समस्या रहती है संबंधों में भी। जोकि नयी व्यवस्था में सुलझ गयी है। अब संबंध केवल प्रेम आधारित ही बनेंगे। प्रेम नहीं होगा तो संबंध भी नहीं होंगे। अनावश्यक और अनचाहा भार नहीं होगा

जीवन में संबंधों का। दूसरा शिक्षा के द्वारा सभी को संबंधों को कैसे जीना चाहिए, इस विषय का ज्ञान भी अच्छे से मिल जायेगा। ये दोनों बाते होने से संबंधों में कभी किसी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

प्रश्न 20:– क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि किसी भी व्यवस्था के बदलने के लिए लोगों में भी सुधार होना जरूरी है? अर्थात जब तक लोग नहीं सुधरेंगे तो कितनी भी सही व्यवस्था हो वो असफल हो ही जायेगी? लोगों को बिना सुधारे आपकी ये व्यवस्था भी कैसे सफल होगी?

उत्तरः– कोई भी व्यवस्था मूलरूप से लोगों के लिए ही होती है। ऐसी स्थिति में जबतक हम ये ना जान लें कि लोग क्या हैं, कैसे हैं, क्यों हैं, कितने प्रकार के हैं आदि का ज्ञान प्राप्त ना कर लें, तबतक कोई भी व्यवस्था बनाने का या लाने का कोई अर्थ नहीं होता। अब देखें कि लोग क्या हैं। यदि हम लोगों का अवलोकन करें तो पायेंगे कि सभी अपने जीवन में अपने प्रकार का सुख पाना चाहते हैं और इसके लिए ही वो पूरे समय विभिन्न प्रकार से प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं। अब इसमें क्या गलत है जोकि कुछ लोग कह रहे हैं कि लोगों में सुधार होना चाहिए? अपने या अपनों के सुख के लिए प्रयास करना कौनसी गलत क्रिया है लोगों की? और आगे समझे कि चलो आप कहेंगे कि नहीं इसमें तो कुछ गलत नहीं है परंतु व्यवस्था के अनुसार लोग नहीं चलते, ये गलती है। तो आओ इसको भी समझें। यदि हम ऐसे लोगों के जीवन का अवलोकन करें जिन्हें हम कहते हैं कि ये गलत लोग हैं और व्यवस्था के अनुरूप नहीं चलत। हम पायेंगे कि उन सभी लोगों ने पहले कई प्रयास व्यवस्था के अनुरूप ही किये होते हैं। परंतु असफल हो जाते हैं। और जब वो व्यवस्था से पूरे तौर से निराश हो जाते हैं, तब वो दूसरे ऐसे प्रयास करके अपना सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते है या अपना परिवार पालने का प्रयत्न करते हैं। जिन्हें हम अनैतिक या व्यवस्था के विपरीत कार्य करना कहते हैं। दूसरे शब्दों में उसे अपराध कहते हैं। बस इसी कारण से तो हम उन्हें खराब लोग कह रहे हैं ना? और उनमें सुधार होना चाहिए, ऐसी बात कर रहे हैं। केवल बात ही नहीं कर रहे बल्कि बहुत से लोग, बहुत सी संस्थाएं और मौजूदा व्यवस्था भी पूरे प्रयास कर रही है, उन लोगों

के सुधारने का। परंतु सब असफल ही हो रहे हैं। किसी में कोई सुधार होता हुआ दिखाई नहीं पड़ रहा है। अब अपना या अपने परिवार का सुख चाहना और उसके लिए अपनी योग्यता, क्षमता आदि के द्वारा प्रयास करना कोई गलत बात है क्या? और यदि कोई गलत बात नहीं है तो उनमें क्या सुधार करना है? और व्यवस्था तो इसी उददेश्य से लायी जाती है ना कि सभी लोग सुखी जीवन जी सकें नाकि कुछ लोग ही? बस इतनी सी बात है कि आजतक हम ऐसी व्यवस्था नहीं ला पाये हैं, जिससे सभी लोग सुखी जीवन जी सकें वो भी बिना व्यवस्था के विपरीत जाये। तो इसमें लोगों की क्या गलती है? क्या वो अपने परिवार को दुखी अवस्था में ही देखते रहें? और अधिक दुखी होते रहें? अपने आपको कोसते रहें? या अपने समाज को कोसते रहें? या अपने पिछले जन्मों के पापों को कोसते रहें? या इस घटिया संसार में पैदा हो गये, इसे कोसते रहें? प्रत्येक मनुष्य सुख सुविधा से रहना चाहता है, जिन्हें वो प्रेम करता है उन्हें भी सुखी ही देखना चाहता है। मेरी खोज भी यही कहती है कि लोगों में कुछ भी गलत नहीं है। वो सब सही ही हैं। अपर्याप्त व्यवस्था के कारण उन्हें ऐसे उपाय करने को बाध्य होना पड़ता है। जोकि वो भी नहीं चाहते कि वो करें। तो लोग सब सही ही हैं उसके लिए अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। कौन नहीं जानता कि चोरी करना गलत है? सब जानते हैं। परंतु फिर भी करते हैं। वो इसलिए नहीं करते कि उनको ज्ञान नहीं है। वो इसलिए करते हैं क्योंकि वो बाध्य हैं चोरी करने के लिए। सुधार में तो ये ही होगा ना कि भाई उनको नहीं पता कि चोरी करना गलत काम है इसलिए उन्हें ये बताकर उनका ज्ञान वर्धन किया जाये ताकि फिर वो गलत काम ना करें? परंतु ये ज्ञान तो सभी को पहले से ही है। तो सुधार किस बात का? भाईयो बस आवश्यकता है एक ऐसी व्यवस्था लाने की जिसमें अपने और अपनों के सुख के लिए किसी को भी गलत रास्ते अपनाने के लिए बाध्य ना होना पड़े। यानिकि उनके सारे सुख सीधे रास्तों से मिल सकें। तो ये नयी व्यवस्था आसानी से सफल हो जायेगी और लोगों को भी नहीं सुधारना पड़ेगा क्योंकि कोई बिगड़ा हुआ ही नहीं है। हां कोई रोगग्रस्त है तो उनकी चिकित्सा होनी चाहिए।

प्रश्न 21:– ऐसा लगता है कि आपकी व्यवस्था में केवल भौतिक सुख सुविधाओं की ही बात हो रही है। परंतु ये तो कई लोगों के पास पहले से ही है। और हम देख रहे हैं कि वो भी सब तरह से सुखी नहीं हैं। तो इस नयी व्यवस्था के सफल होने पर भी तो लोग पूर्णरूप से सुखी नहीं होंगे। इस बारे में आपका क्या कहना है?

उत्तरः– ये संसार वस्तुतः भौतिक और आध्यात्मिक जगत करके बंटा हुआ नहीं है। ये तो समझने की दृष्टि से मनुष्य संसार को वर्गीकृत करता है। वर्गीकृत करके कुछ भी समझना और फिर उसके आधार से व्यवस्था करना आसान हो जाता है। उदाहरण के लिए पृथ्वी पर कहीं भी मध्य प्रदेश या राजस्थान करके कुछ नहीं होता है। लेकिन व्यवस्था की दृष्टि से ऐसा वर्गीकृत करने से वहां सारी व्यवस्था करना आसान होता है। ये सारा वर्गीकरण काल्पनिक होता है। जोकि सुविधा की दृष्टि से किया जाता है। उसका और कोइ अर्थ नहीं लेना चाहिए। यदि कोई और अर्थ लिया जाता है, तो अनावश्यक समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं। जैसे देशों का वर्गीकरण करके लोगों ने इसको मेरा देश और तेरा देश करके उसके साथ भावरूप में जुड़ गये हैं। और अब उसी को देशप्रेम और देशद्रोह करके देख रहे हैं। जबकि देशों का वर्गीकरण भी व्यवस्था की दृष्टि से ही करना चाहिए। यानिकि काल्पनिक रूप में नाकि भावनारूप में। हमें समझना चाहिए कि क्या काल्पनिकरूप में लें और क्या वास्तविकरूप में या भावनारूप में। भावनारूप से अर्थ होता है कि जो वस्तु वास्तविकरूप से है नाकि काल्पनिकरूप से। तो वास्तविक कहें या भावरूप कहें एक ही बात है। अब जैसे पूरी व्यवस्था ही एक कल्पना होती है। और इसकी कल्पना का उददेश्य है, वो उददेश्य है, कैसे हम सभी सुखी जीवन जी सकें। उसी प्रकार से भौतिक जगत या आध्यिात्मिक जगत भी एक कल्पना की जाती है। ताकि इस पूरे वास्तविक जीवन को हम जान सकें और फिर उस आधार से व्यवस्था करके सुखपूर्वक जीवन जी सकें। नहीं तो वास्तविकरूप से या भावनारूप से कुछ भौतिक या आध्यिात्मिक नहीं होता है। जो कल्पना है उसको काल्पनिकरूप में ही लेना चाहिए। और जिस उददेश्य के लिए उसकी कल्पना की गयी है, उसी

उददेश्य को ध्यान में रखकर उसे समझना चाहिए। ऐसा नहीं करने से बहुत सारी अनावश्यक समस्याएं हमारे जीवन में आने लगती है। आओ समझे कि कैसे। समग्र संसार है जिसमें सबकुछ है। अंदर बाहर और बीच सबकुछ। संसार का बाहरी हिस्सा, जिसे संवेदनाओं के रूप में हम अपने अंदर ले जाते हैं। जिससे कि हमें सुख या दुख अनुभव होते हैं। और संसार का अंदरूनी हिस्सा हैं हम स्वयं चेतन जोकि सारी ईच्छाएं करता है, इन सुख दुख आदि का अनुभव करता है, इनके बारे में विचार करता है, आकलन करता है और उसी आधार से संसार के बाहरी हिस्से में क्रियाकलाप करता है। तो ये अन्दर से लेकर बाहर तक एक ही जीवन है जिसका एक छोर अन्दर आपसे शुरू होता है और बाहर दूसरा छोर संसार तक फैला होता है। और बीच में ये संसार का हिस्सा, ये शरीर है। बाहर कुछ भी होता है तो यदि हम उससे संबंधित होते हैं तो उसका प्रभाव हमको अंदर में होता है जिससे हम सुखी या दुखी होते हैं। दूसरे शब्दों में हमारे अंदर जोभी प्रभाव हैं, जिन्हें हम शांति, अशांति, संतुष्टि, असंतुष्टि, सुख, दुख, भय, लोभ, चिंता, प्रेम, इर्ष्या, वैमनस्य, आदि जितने भी भाव हमको होते हैं वो सब बाहर कोई स्थिति होती है, जिनके कारण ये सारे अच्छे बुरे भाव हमको उत्पन्न होते हैं अंदर में। और समझने की दृष्टि से ही संसार के बाहरी हिस्से को भौतिक और संसार के अंदरूनी हिस्से को आध्यात्मिक कह देते हैं। बीच में भी कुछ है जिसे अधिदैविक कह दिया जाता है। तो ये जो सारे नाम आदि रखें हुए हैं, ये इसलिए रखे जाते हैं क्योंकि ऐसा करने से हम आसानी से समझ पाते है और हमारा आपस का व्यवहार भी सरल हो जाता है। अब जबकि सुख या दुख बाहर की स्थितियों के कारण हैं, तो हमें ये समझना होगा कि ये सुख या दुख होते किस प्रकार हैं। उसके बाद हमें अपनी व्यवस्था ऐसी बनानी होगी, जिससे केवल वो स्थितियां ही उत्पन्न हों जिनसे कि सभी को सुख ही हो। बस ऐसी एक व्यवस्था की कल्पना मात्र करनी हैं। और सौभाग्य से वो कल्पना मैंने कर दी है। एक ऐसी व्यवस्था बना दी है जिससे ये सम्भव हो जायेगा, कि हम सभी के जीवन में केवल सुख देने वाली स्थितियां ही उत्पन्न हुआ करेंगी। अबतक हम लोग इन दुखों से बचने के लिए जितने भी अध्यात्मिक क्रियाकलाप करते थे, उनकी कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी।

और ये अध्यात्मिक क्रियाकलाप करके भी हम केवल अपने दुखों को कुछ कम ही कर पाते थे जैसे कि असाध्य बिमारियों का उपचार करके जैसे तैसे जीवित बचे रहते हैं। बस इससे अधिक और कुछ लाभ किसी को कभी नहीं हुआ। तो इसलिए यदि भौतिकता से हमें सुख ही प्राप्त होता है तो अपने अंदर यानिकि हम आध्यात्मिकरूप से भी सुखी ही अनुभव करते हैं। उसके लिए अलग से कोई ध्यान, तप, जप आदि करने की आवश्यकता नहीं होती। और ये क्रियांएं इन कार्यों के लिए होती भी नहीं है। इनका कोई और ही उपयोग होता है जीवन में। इस बारे में कोई चाहें तो मुझसे अलग से बात कर सकते हैं या मेरी दूसरी पुस्तकें पढ़ सकते हैं जिनमं विस्तार से इसकी व्याख्या की गई है।

प्रश्न 22:– धनवान और बलवान लोग क्यों आपकी व्यवस्था को आने देंगे? इस नयी व्यवस्था में सभी लोग तो समान ही हो जायेंगे। जबकि वो लोग तो महान बनकर रहना चाहते हैं, नाकि सबके समान। तो इस बारे में आपने क्या सोचा है?

उत्तरः– मेरी खोजों के अनुसार कोई भी मनुष्य महान या छोटा नहीं बनना चाहता। अभी की व्यवस्था में लोग इसलिए महान बनना चाहते हैं क्योंकि उन्हें ऐसा लगता है, कि सुखी होने के लिए जीवन में उनको जो चाहिए, वो बिना महान बने मिलेगा नहीं। और जन्म के बाद से ही ऐसा वो अपने चारों ओर अनुभव भी करते हैं। वो देखते हैं कि जो लोग महान जैसे हो जाते हैं, उनके पास जीवन की अधिकतम सुख सुविधाएं आ जाती है। इसी लिए हर आदमी अपने से महान को पूजने लगता है, उसकी ओर आशा भरे नयनों से देखने लगता है। जैसेकि लोग मंदिरों में भी कितनी आशा भरे नयनों से भगवान की मूर्ति ओर देखते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हे महान परमात्मा हमें भी महान बनाओ ताकि हम भी आपकी तरह ही वैभवशाली हो जायें और सुखी जीवन जी सकें। यदि हम मनुष्य के मूल स्वभाव के अनुसार देखें जोकि मैंने अपनी खोजों में देखा, कि हमारा स्वभाव बस सुखी जीवन का है। और अब सुखी होने के लिए जो भी करना पड़ेगा वो हम करेंगे। यदि उसमें महान होना पड़े तो उसका प्रयास करेंगे, यदि चोरी करनी पड़े

तो उसका प्रयास करेंगे, किसी को मारकर यदि उससे सुख मिले तो वो भी करेंगे चाहे वो कोई अपना भाई बन्धु ही क्यों ना हो आदि। और आत्मिक रूप से तो हम सब भाई बन्धु ही हैं। जोभी हम एक दूसरे के साथ अच्छा या बुरा व्यवहार करते हैं, वो सब भाई बन्धुओं के साथ ही करते हैं। और वैसे भी ये कैसी महानता है, जिसमें हम औरों के मान का हनन कर ले रहे हैं? औरों की सुख सुविधाओं को अपने सुख के लिए प्रयोग कर रहे हैं? ये तो महानता भी नहीं है बल्कि इसे तो निम्न स्तर का कार्य ही कहा जायेगा। पर ये निम्न स्तर का कार्य भी तो हम सुख सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए ही कर रहे है ना? और यदि ये सारी सुख सुविधाएं हम सभी को सहज रूप में प्राप्त हो जायें, और उसके लिए हमें महान या निम्न बनने की आवश्यकता ना पड़े, तब किसको महान बनने का विचार आयेगा? किसी को भी नहीं। मनुष्य कभी भी अनावश्यक कर्म नहीं करता। मेरी खोज के अनुसार मनुष्य बिना आवश्यकता के कुछ भी नहीं करता है। मनुष्य सारे अच्छे और बुरे कार्य आवश्यकता होने पर ही करता है। इसलिए जो इस समय किसी महानता के पद पर आसीन हैं, या वो भी जो किसी निम्नता के पद पर आसीन हैं, जब वो सुनेंगे और समझेंगे कि कोई ऐसी व्यवस्था भी है, जिसके आने से सारी सुख सुविधाएं हमें सहज ही प्राप्त हो जायेंगी। वो लोग तो बहुत ही सुख का अनुभव करेंगे कि चलो ये मारा मारी का चक्कर अब नहीं करना पड़ेगा। शायद हम सभी लोग ये नहीं जानते कि महानता के पदों पर पहुंचने के लिए और उन पदों पर बने रहने के लिए उन्हें कितना कुछ खोना पड़ता है? कितनी हानि उठानी पड़ती है? बहुत प्रकार के दुख लेने पड़ते हैं। और कभी कभी तो जान भी देनी या लेनी पड़ती है। सारा जीवन इस भय में निकलता है कि पता नहीं कब कौन आकर हमारे पद को छीन ले। धनवान और बलवान लोगों का भी यही हाल रहता है। ये भी एक प्रकार की महानताएं ही हैं। कोई हमारा धन ना चुरा ले, इसका भय हमेंशा रहता है। और बल तो हमेंशा रहता भी नहीं। शरीर में तो उनका भय तो और भी अधिक रहता है कि कल को जब कमजोर हो जायेंगे या बीमार हो जायेंगे तो कोई भी आकर अपना बदला ले सकता है। तो ये सब उपाय भय पैदा करते हैं और फिर उसके लिए लोभ पैदा होता है और अपना सारा ध्यान

सुरक्षा में लगाना पड़ता है। थोड़ा सा चिंतन कीजिए। यदि सबके पास उनके ईच्छानुसार सुख सुविधा हों जायें तो क्यों प्रधानमंत्री या उन जैसे लोगों को किसी भी प्रकार की सुरक्षा की क्या आवश्यकता रह जायेगी? फिर क्यों कोई किसी पर आक्रमण करेगा? क्यों कोई किसी को ठगेगा? क्यों कोई किसी का अपमान करेगा? क्यों कोई किसी का शोषण करने की सोचेगा भी? क्यों कोई चोरी करेगा? क्यों कोई किसी को नीचा दिखाने के उपाय करेगा? क्यों कोई सुख सुविधाओं के कारण अपनी मान बड़ाई समझेगा? क्यों कोई किसी से इर्ष्या करेगा? क्यों कोई किसी के बच्चों का अपहरण करेगा? क्यों कोई अपनी मालकियत को लेकर युद्ध करेगा किसी से? क्यों कोई किसी भी प्रकार का भ्रष्टाचार करेगा? क्यों कोई किसी भी प्रकार का अपराध करेगा? और अपने से सोचकर देंखें कि यदि आपके पास वो सारी सुख सुविधाएं हों जोकि आप चाहते हैं, तो क्या आप फिर भी अपने को या औरों को दुख देने की सोचेंगे? और मेरे अनुसार आपका उत्तर आने वाला है कि नहीं हम क्यों किसी का बुरा चाहेंगे। तो बस ऐसे ही सभी के बारे में आप समझ सकते हैं। ये सब खराब या अपर्याप्त व्यवस्था के कारण हैं, कि सभी ओर मारा मारी है। और आजकल बन्दूकों के रहते शारीरिक बल का तो बहुत कोई अर्थ भी नहीं है। ऐसे सुख से भी क्या लाभ जोकि अपने साथ विभिन्न प्रकार के दुख भी लाता हो। हम सब तो सारे सुख इसप्रकार से चाहते हैं, कि उनके साथ कोई भी दुख ना आये। और ये सब इस नयी व्यवस्था से सम्भव हो जायेगा। इस नयी व्यवस्था में सारे सुख बिना किसी दुख को साथ लायें ही आयेंगे। इसलिए इस व्यवस्था को सभी लोग सहर्ष ही स्वीकार करेंगे और अपनी क्षमता से सभी सहयोग भी करेंगे।

प्रश्न 23:– अणु से पहले कोई चेतन कैसे हो सकता है? यदि है जैसाकि आप कह रहे हैं तो ये आप निश्चित रूप से कैसे जानते हैं?

उत्तरः– पहले हमें समझना होगा कि चेतन से हमारा क्या अर्थ है। जब हम कहते हैं कि चेतन और अचेतन तो वास्तव में हम क्या कहना चाह रहे हैं? चेतन से अर्थ ये है, चेतन वो जोकि ईच्छाएं कर सके, विभिन्न प्रकार के अनुभव कर सके, उनका सुख दुख के रूप में मुल्यांकन कर सके, पसंद

नापसंद कर सके आदि। और इनमें भी विशेष रूप से चेतन का अर्थ है कि वो ईच्छा कर सकता है। इसीलिय उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर का अर्थ होता है, वो जोकि ईच्छा को वर सके अर्थात जो ईच्छा कर सके। अब अणु तो ईच्छा कर नहीं सकता। हां कोई ईच्छा करने वाला अणु को अपनी ईच्छानुसार गति अवश्य दे सकता है। जैसेकि प्रत्येक दिन हम यानिकि चेतन बहुत सारी अचेतन वस्तुओं को अपने उददेश्य के अनुसार या अपनी ईच्छानुसार गति देते ही रहते हैं। इस बात को दूसरे ढंग से भी समझ सकते हैं। जैसे विज्ञान या कुछ नास्तिक दर्शन ये कह रहे हैं कि प्रारम्भ में अणु ही है कोई चेतन जैसा कुछ नहीं है। और आस्तिक दर्शन आत्मा या ब्रहम आदि नाम से उस चेतन को कह रह हैं कि वो प्रारम्भ से है। और ये ही दो संभावना भी हैं कि प्रारम्भ में या तो अणु होगा या चेतन होगा। तीसरी तो कोइ संभावना हो नहीं सकती। अब इसको तर्क से समझने का प्रयास करते हैं। मान लेते हैं कि पहले अणु ही था कोई चेतन नहीं था। तो प्रश्न उठेगा कि उसमें प्रथम गति किस प्रकार उत्पन्न हुई? क्योंकि बिना गति के तो इस संसार की रचना सम्भव नहीं है। अब यदि आप कहो कि उस अणु में पहले से ही गति भी थी, तो फिर प्रश्न उठता है कि उस अणु से ये ईच्छा करने वाला चेतन यानिकि जीव कैसे उत्पन्न हो सकता है। सर्वत्र जड़ता ही होनी चाहिए। हां चेतन से तो अणु पैदा हो सकता है क्योंकि यदि चेतन अणु होने की ईच्छा करे तो वो अणु हो सकता है, परंतु अणु तो कुछ होने की ईच्छा कर नहीं सकता। उदाहरण के लिए हम और आप जागे भी रह सकते हैं और निद्रा में भी। यहां जागने से अर्थ है कि हमारी चेतन अवस्था और निद्रा से अर्थ है कि हमारी अचेतन अवस्था। अचेतन का अर्थ जड़ होने से है। अचेतन का अर्थ जबकि हम कोई ईच्छा नहीं कर रहे होते हैं और नाही किसी पूर्व ईच्छा के अनुरूप कोई गति ही कर रहे होते हैं। हम निद्रा में विश्राम कर रहे होते हैं। विश्राम का अर्थ ही होता है कि हम कुछ नहीं कर रहे, ईच्छा भी नहीं। और अणु तो जड़ है। अब आप ही बताओं कि मूल में जड़ होना हो सकता है या कि चेतन होना? इस अंतर को समझे कि चेतन तो जब चाहे जड़ भी हो सकता है या चेतन बना रह सकता है। परंतु जड़ क्योंकि ईच्छा नहीं कर सकता इसलिए वो कभी भी अपनी अवस्था में परिवर्तन नहीं कर सकता।

यानिकि जड़ कभी भी चेतन नहीं हो सकता। वो हमेंशा जड़ अवस्था में ही रहेगा। अब प्रश्न ये उठता है कि अणु जोकि जड़ है जब वो अपनी अवस्था में परिवर्तन ही नहीं कर सकता तो अणु ये संसार कैसे बन सकता है? उस अणु में दूसरा स्तर कैसे उत्पन्न हो सकता है? कोई गति ही कैसे उत्पन्न हो सकती है? वो तो प्रारम्भ में जिस अवस्था में होगा, उसे सदैव उसी अवस्था में बने रहना होगा क्योंकि उसमें अवस्था परिवर्तन की कोई ईच्छा तो है नहीं, कि वो अपनी अवस्था का परिवर्तन करे। और भी समझें कि चेतन में एक उददेश्य रहता है, एक दिशा होती है। ईच्छा ही दिशा है या कहें कि ईच्छा ही उसका उददेश्य है। कोई भी गति करने के लिए किसी दिशा का होना तो परमआवश्यक है। बिना दिशा के कोई गति संभव ही नहीं है, ये तो आप समझ ही रहे होंगे। यानिकि बिना उददेश्य के कोई गति की संभावना हो ही नहीं सकती। और उददेश्य तो केवल चेतन का ही हो सकता है। जड़ के उददेश्य की तो संभावना है ही नहीं। तो इस निरंतर गतिशील संसार को देखकर हम कह सकते हैं कि प्रारम्भ में चेतन ही होगा नाकि जड़। इस संसार का यदि आप अवलोकन करें तो आप पायेंगे कि यहां सभी कुछ वर्तुलों में अस्तित्वगत है। उदाहरण के लिए जल, जल का यहां द्रव, वर्फ और भाप के वृत्त के सहारे अस्तित्व बना रहता है। वो निरंतर परिवतशील भी रहता है और तीनों अवस्थाओं में बना भी रहता है जिसके कारण हमें उसके जिस रूप का जितना प्रयोग करना होता है, हम कर पाते हैं। और हमारे उपयोग के समय भी वो निरंतर परिवर्तनशील बना ही रहता है। परंतु तब भी हमारा उददेश्य पूर्ण हो जाता है। उसकी परिवर्तनशीलता हमारे किसी उददेश्य के पूर्ण होने में कोई अड़चन नहीं बनती। और इस परिवर्तनशीलता के कारण ही ये संसार बना रहता है। यदि चेतन में ये परिवर्तनशील होने का गुण ना होता अर्थात दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यदि प्रारम्भ में अणु होता तो ये संसार उत्पन्न ही ना होता। क्योंकि परिवर्तनशीलता केवल चेतन में ही संभव है किसी जड़ में नहीं। यदि किसी को लगता है कि ये परिवर्तनशीलता जड़ में भी हो सकती है, तो वो दूसरे शब्दों में ये ही कह रहा है कि जड़, जड़ नहीं बल्कि चेतन है। तो इसप्रकार से प्रारम्भ में चेतन ही हो सकता है जड़ नहीं। जड़ता चेतन की ही एक ईच्छित अवस्था है

जिसे कि वो अपने प्रयोजन के अनुसार अपने में ही उसे उत्पन्न करता है। और प्रयोजन पूरा होने के बाद उसका विलय कर देता है। यानिकि अवस्था परिवर्तन कर लेता है। और आप पूछ रहे हैं कि मैं ये निश्चित रूप से कैसे जानता हूं। तो इस पर मैं आपको कहना चाहता हूं कि मैंने अपनी साधना के समय अपने अंदर ही अपना अध्ययन किया तो ये सब मुझे अपने अनुभव में आया। जिससे मैं इसे निश्चितरूप से जान सका और इसीलिस आप सभी को भी इतनी गहराई से समझा पा रहा हूं। क्योंकि कोई व्यक्ति बिना खोजे किसी बात की गहराई को नहीं समझ सकता और ना ही समझा सकता है। हां एक बार कुछ खोज लिया और उसकी अच्छे से व्याख्या कर दी तो बाकि के लोगों के लिए समझना आसान हो जाता है। पर प्रथम बार बिना खोजे, बिना अनुभव किये, बिना समझे संभव नहीं हो पाता कि कोई समझ सके। इन तथ्यों को मैंने अच्छे से कई कई बार अनुभव किया है, उन्हें समझा है, कैसे औरों को मैं समझा सकूं उस पर कार्य किया है। इसलिए मैं कह सकता हूं कि मैं जो भी कह रहा हूं वो निश्चितरूप से जानकर ही कह रहा हूं। और भी कई प्रकार से मैं समझा सकता हूं यदि किसी को आवश्यकता पड़े तो। मेरी इन बातों को आप जिस भी दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करेंगे, सही ही पायेंगे। मेरी ये बाते सभी दृष्टिकोणों पर सटीक उतरती हैं। आपके सभी दार्शनिक प्रश्नों के संतुष्टिपूर्ण उत्तर देती हैं।

प्रश्न 24:– धर्म अर्थ काम और मोक्ष के बारे में आपकी क्या समझ है?

उत्तरः– इस पर बहुत लोगों ने बोला है और लिखा है। परंतु मैंने जितना पढ़ा और सुना है, उससे मैं कभी संतुष्ट नहीं हुआ। बाद में जब मैंने इस विषय में खोज की तो मुझे जो इस वाक्य का अर्थ निकल कर आया वो मैं आप सभी से कहना चाहूंगा। ये धर्म अर्थ काम और मोक्ष हमारे जीवन का प्रारम्भ से लेकर अंत तक सबकुछ बता रहा है। ये बता रहा है कि धर्म से जीवन प्रारम्भ होना चाहिए और मोक्ष में उसका अंत होना चाहिए। और बीच में अर्थ और काम है। यहां धर्म से तात्पर्य है धारण करने योग्य। धारण करने योग्य जो है उसे ही धर्म कहते हैं। अब प्रश्न उठा कि हम ये कैसे जाने कि

धारण करने योग्य क्या है और क्या नहीं। इसका उत्तर भी इसी वाक्य में मिल जाता है और वो है कि जो जो भी धारण करने से हमें मोक्ष मिलता हो वो सब धर्म होगा और जो जो धारण करने से हमें बन्धन मिलता हो वो सब अधर्म होगा। इसप्रकार धर्म की कसौटी होगा मोक्ष। यानिकि जिस प्रकार का जीवन हमें मोक्ष देगा वो होगा धर्म और जिस प्रकार का जीवन हमें बन्धन में ले जायेगा वो होगा अधर्म। एक बात और यहां ध्यान में ले लेनी चाहिए कि ये जीते जी अवस्था की बात हो रही है। मृत्यु के बाद की बात यहां नहीं हो रही। यदि मोक्ष का तात्पर्य मृत्यु के बाद की अवस्था से होता तो उससे तो कभी हम नहीं जान पाते कि क्या धारण करने से मोक्ष होता है या क्या धारण करने से बन्धन होता है। और वैसे भी बन्धन जहां होगा मोक्ष की बात तो वहीं उपयोगी है। दोनों एक ही तल की बातें हैं। ऐसा तो हो नहीं सकता कि बन्धन तो इस संसार में हो रहा है और मोक्ष किसी और संसार में या संसार से परे किसी और लोक में होगा। यदि ये किसी और लोक की बात होती तो फिर हम ये कभी नहीं जान पाते कि धर्म क्या है। तो इससे हम समझ सकते हैं कि उपर जो चारों बाते की गई हैं वो सब जीवन से संबंध रखती हैं नाकि मृत्यु के बाद से। मेरी खोज के अनुसार मोक्ष का तात्पर्य है, जीवन की संतुष्टिदायक अवस्था। जहां हमें ये अनुभव हो कि हम जो भी ज्ञान पाना चाह रहे हैं वो हमें मिल रहा है, हम जो भी कार्य करना चाह रहे हैं वो कार्य कर पा रहे है, हम जो भी भोगना चाह रहें हैं वो भोग पा रहे हैं और हम जब भी विश्राम करना चाह रहे हैं वो कर पा रहे हैं। जब ऐसा जीवन हमें मिलता है, तो हमारे जीवन में एक संतोष उत्पन्न हो जाता है और यदि ये अवस्था हमारे जीवन में सदैव बनी रहती है तो इस अवस्था का नाम मोक्ष हैं। और यदि ऐसी अवस्था हमारे जीवन में नहीं आती तो उसे ही बंधन के नाम से जानना चाहिए। बंधन का तात्पर्य हम जो ज्ञान पाना चाह रहे हैं वो हमें नहीं मिल रहा, जो भी कार्य करना चाह रहे हैं वो कार्य करने को नहीं मिल रहा, जो भी भोगना चाह रहे हैं वो भोगने को नहीं मिल रहा और जब विश्राम करना चाह रहे हैं तो वो भी नहीं कर पा रहे हैं। तो बंधन की अवस्था कोई मनुष्य नहीं चाहता। अर्थात कोई मनुष्य नहीं चाहता कि उसकी कामनाओं की पूर्ति ना हो। सभी चाहते हैं कि उसकी सभी कामनाओं

की पूर्ति निरंतर होती रहनी चाहिए। और इसी अवस्था को मोक्ष कहना चाहिए। तो जीवन का उददेश्य हुआ मोक्ष यानिकि सदैव सुख की अवस्था का बने रहना। अब जब जीवन का उददेश्य निर्धारित हो गया तो प्रश्न पैदा हुआ कि इस अवस्था को प्राप्त कैसे किया जाये। तो समझने वालों ने इसे धर्म से प्रारम्भ किया। धर्म माने सबसे पहले हम ये सारा ज्ञान समझ सकें कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है, और उसे पाने के लिए हमें क्या धारण करना चाहिए और क्या नहीं। इसी को शिक्षा के माध्यम से सभी बच्चों को 5 वर्ष की आयु से 20 वर्ष की आयु तक शिक्षित कर दिया जाना चाहिए। जिससे सभी बच्चों को बड़े होते होते धर्म का बोद्य हो जाये। उसके बाद बात आती है अर्थ की कि अर्थ क्या है और इसकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है। तो यहां अर्थ का तात्पर्य ये है कि संसार में जिन वस्तुओं या सेवाओं आदि के उपभोग से हमें सर्वतोभावेन सुख की प्राप्ति होती है वो वस्तुएं या सेवाएं आदि ही अर्थ कहलाती है। और जिनसे हमें दुख प्राप्त होता है वो अनर्थ कहलाती हैं। अब इसके बाद आता है काम। काम का तात्पर्य है हमारी ईच्छाएं, हमारी कामनाएं। इस संसार में सभी मनुष्यों की कामनाएं अलग अलग होती हैं। और इसीलिए सबका अर्थ भी अलग अलग हो जाता है। किसी को किसी से सुख होता है और किसी दूसरे मनुष्य को किसी और वस्तु से सुख मिलता है। और एक ही मनुष्य को भी एक ही वस्तु से कभी सुख तो कभी दुख मिलता है। तो हमें किससे सुख मिलेगा ये तय होगा कि हमारी कामनाएं क्या है। हमारी कामना पूर्ति से ही हमें सुख होता है और हमारी कामना की पूर्ति यदि किसी कारण ना हो पायें तो इससे हमें दुख होता है। तो ज्ञान यानिकि धर्म के आधार से हमारी कामनाएं उत्पन्न होती हैं परंतु ये पूरी होती है अर्थ के द्वारा। और यदि हमारी कामनाएं निरंतर पूरी होती रहती हैं तो इससे मोक्ष की अवस्था उत्पन्न होती है। अब देखो इस वाक्य को कि ये कैसे हमारे पूरे जीवन की कहानी को बता रहा है। जीवन का लक्ष्य हुआ मोक्ष, जिसके लिए हमें कुछ धारण करना होगा। जिसे हम धारण करेंगे और यदि उससे हमें मोक्ष प्राप्ति होती है तो वो हुआ धर्म यानिकि धर्म क्या होगा इसकी कसौटी भी मोक्ष हुई। और मोक्ष होता है काम के द्वारा, अर्थात आप यदि जीवित हैं तो स्वभाविक है कि आप कामना भी करेंगे ही

नहीं तो जीवित होने का कोई तात्पर्य ही नहीं हुआ। तो हमारा मोक्ष निर्भर करता है कि हमारी कामनाएं निरंतर पूर्ति हो रहीं हों। और कामनाओं की पूर्ति हो सकती है केवल अर्थ के द्वारा ही। और अर्थ की प्राप्ति संभव है धर्म के द्वारा। और धर्म होता है कि हम मोक्ष प्राप्त कर सकें। इससे हम समझ सकते हैं कि ये चारों धर्म अर्थ काम और मोक्ष कैसे आपस में संबंधित हैं और कैसे एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। और कैसे ये मनुष्य के जीवन को एक सटीक दिशा प्रदान करते हैं।

प्रश्न 25:– आपकी नयी व्यवस्था के आने के बाद तो किसी को कोई दुख नहीं होगा तो फिर ये कर्म का सिद्धांत तो गलत सिद्ध हो जायेगा? जो जीव अपने पिछले जन्मों में पाप करके आयें हैं उनको उन पापों का दण्ड कैसे मिलेगा?

उत्तरः– मेरी खोज के अनुसार ऐसा नहीं है। इस संसार में अस्तित्व के द्वारा कोई दण्ड विधान नहीं बनाया गया है। इस संसार की रचना केवल और केवल सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करने के लिए ही हुई है। और ईच्छा उस ईश्वर ने ही की है, वो भी जब, जबकि केवल और केवल वो ही था। उसके अलावा और कोई वहां नहीं था। तो इश्वर ने ही इस संसार की कल्पना की और फिर स्वयं ही उस कल्पना को स्वीकार करके वो ये संसार बन गया। सृष्टा ही सृष्टि हो गया। रचियेता ही रचना हो गया। और जैसे बीज वृक्ष होते हुए अंत में फिर से बहुत सारे बीज हो जाता है वैसे ही वो एक सृष्टा मनुष्यों के रूप में अनेक हो गया। मनुष्य उन सभी गुणों से संपन्न है जोकि उस सृष्टा में थे। इस प्रकार से वो सृष्टा ही अब मनुष्यों के रूप में यहां पूर्णचेतन के रूप में स्थित है और बाकि सकल सृष्टि कहीं अचेतनरूप में है और कहीं अर्धचेतन और कहीं अधिचेतन रूप में स्थित है। वो ईश्वर ही अपनी कल्पना के अनुसार ये सृष्टि हो जाता है और उददेश्य होता है सभी सुखों को प्राप्त करने का। अब ईश्वर अपने आपको भला क्यों दंडित करेगा? इस बारे में और अधिक विस्तार से जानने के लिए मेरी पुस्तक 'जीवनदर्शन' का अध्ययन करें।

तो ऐसा कुछ नहीं हैं कि पूर्व जन्मों में किसी ने कोई पाप किये हैं और उन पापों का कोई दण्ड भविष्य में मिलेगा। ये दण्ड विधान तो केवल मनुष्यों ने ही कल्पित किया हुआ है। वो भी इसलिए कि अभी मनुष्य ऐसी व्यवस्था का ज्ञान नहीं कर पाया है जिसमें कि इस दण्ड विधान की आवश्यकता ही ना पड़े। पर अब मैंने इसका ज्ञान प्राप्त कर लिया है और ऐसी व्यवस्था कल्पित कर दी है। जिसमें किसी दण्ड विधान की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और सभी अपने ईच्छित सुखों को प्राप्त कर पायेंगे। इस नयी व्यवस्था को मैंने कुछ इसप्रकार से कल्पित किया है कि जिसमें एक के सुख कभी भी किसी और के लिए दुख का कारण नहीं बनते बल्कि इसका उल्टा होता है कि एक के सुख दूसरे के सुखों का कारण बनते हैं। यानिकि इस व्यवस्था में एक जितना अधिक सुख भोगेगा इससे औरों के लिए उतना ही सुख बढ़ेगा। अब आप सोचें कि जब सब अपने अपने सुखों को जितना अधिक प्राप्त करेंगे तो इससे दूसरे लोगों का उतना ही सुख बढ़ता चला जायेगा। इस नयी व्यवस्था में सुख का अतिरेक ही रहेगा। सब पुण्य ही होगा, कोई पाप नहीं होगा। मनुष्यों के पाप पुण्य के लिए वास्तक में गलत व्यवस्था उत्तरदायी होती है नाकि कोई मनुष्य। और इसका कारण होता है कि मनुष्य अभी उस ज्ञान तक नहीं पहुंच पाया है कि वो सही व्यवस्था की कल्पना कर सके। उदाहरण के लिए जबतक वैज्ञानिकों ने बिजली और बल्ब की खोज नहीं की थी, तो तव तक हम सभी रात्रि में अंधकार में ही रहने को बाध्य थे। अब आप क्या कहेंगे कि हम सब अपने किस पाप का दण्ड भोग रहे थे? या आप इसके लिए किसको अपराधी ठहरायेंगे? और जब वैज्ञानिकों ने बिजली और बल्ब की खोज कर दी और जो भी हमारे पास उसके निर्माण और वितरित की व्यवस्था थी उससे कुछ लोगों को प्रकाश प्राप्त करा सके और निरंतर और भी लोगों तक प्रकाश पहुंच रहा है। तो आप क्या कहेंगे कि अब लोग अपने किसी पूर्व जन्म के पुण्य के कारण ये सुख प्राप्त कर रहे हैं? वास्तव में ये सब सुख हम हमारे ज्ञान के कारण और दुख हमारे अज्ञान के कारण प्राप्त कर रहे हैं। और ये ज्ञान और अज्ञान यहां व्यक्तिगत लगता जरूर है, पर ये होता सामूहिक ही है। जिन भी लोगों को ये विशेष ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं, क्या उनमें उस समय के समाज का योगदान नहीं

होता? अब आप किसी भी वैज्ञानिक को ले लें। क्या उसके ज्ञानी बनने में इस मनुष्य समाज का योगदान नहीं होता? बिल्कुल होता है। उस जैसी व्यवस्था होती है समाज में तो उसके आधार से उसको शिक्षा, लालन, पालन आदि समाज से ही मिलता है। जिसके कारण वो उतना ज्ञानी बन पाता है। तो गहराई से अवलोकन करने पर पता चलेगा कि यहां सब सामुहिक ही है।

यदि आप पाप पुण्य जैसा कुछ कहेंगे भी तो वो सामुहिक ही होगा। व्यक्गित कहना उस व्यक्ति के साथ अन्याय करना ही हो जायेगा। पाप और पुण्य ज्ञान और अज्ञान से पैदा होते है। जिसका कारण सामूहिक होता है नाकि व्यक्तिगत। यहां इस संसार में हम जितना ज्ञान प्राप्त कर लेंगे तो उतने ही हम सब सुखी हो जायेंगे और जिन मामलों में हम अज्ञानी बने रहेंगे तो उन मामलों में हम सब दुख प्राप्त करेंगे। आशा है कि प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा।

प्रश्न 26:– क्या जीवन में पूर्ण सुख की अवस्था सम्भव है?

उत्तरः– जी हां संभव है। थोड़ा सा समझने का प्रयास करते हैं। कल्पना करें कि कोई माता पिता हैं जोकि सभी तरह से समृद्ध हैं। उनकी एक संतान हैं जोकि उनके पास ही रहती है। वो बच्चा जो कोई भी ईच्छा करता है तो समृद्धि के कारण उसकी वो सभी ईच्छाएं पूरी होती रहती हैं। जोकि उस समय के अनुसार संभव होती हैं। जैसे बुद्धा की कहानी हम लोग पढ़ते ही हैं। जिसमें उनके पिता एक राजा होते हैं। यानिकि उनके पास बहुत समृद्धि होती है। गौतम बुद्ध को 30 वर्ष तक की आयु तक कोई भी दुख अनुभव में नहीं आता। उसके बाद ही कुछ दुख उन्हें अनुभव में आते हैं और उन दुखों से परेशान होकर वो उनके समाधान के लिए राजमहल छोड़ देते हैं। बाद में संयासी हो जाते हैं। इस कहानी से मैं ये बताना चाह रहा हूं कि जिस प्रकार बुद्ध को 30 वर्ष की आयु तक कोई भी दुख अनुभव में नहीं आया उसी प्रकार से सभी का जीवन इतना समृद्धशाली बनाया जा सकता है, कि उनके जीवन में कोई दुख हो ही ना। अब जब कोई दुख

जीवन में होगा ही नहीं तो दुख किसी के अनुभव में भी नहीं आयेगा। अब रहा ये कि यदि किसी कारण से किसी के जीवन में आध्यात्मिक उत्सुकता जागृत हो जाती है, किसी भी आयु में, तो यदि उसकी भी व्यवस्था हो, तो कोई भी प्रकार का दुख जीवन में नहीं रहेगा। जैसे, यदि बुद्ध को ऐसी व्यवस्था प्राप्त होती, जिसमें कि वो कारण जाने जा सकते जिनको कि कहानी के अनुसार उन्होंने अपने लम्बे और कठिन प्रयास से व्यक्तिगत रूप से जाना। उन्हें किसी दुख से गुजरना नहीं पड़ता और सुखी सुखी ये सारा ज्ञान आसानी से उन्हें प्राप्त हो जाता और उनके जीवन में कोई दुख नहीं रहता। इस तरह से हम समझ सकते हैं कि जीवन को पूरी तरह से सुखी बनाया जा सकता है। यदि सभी प्रकार की व्यवस्था की जा सके तो। ऐसी व्यवस्था जिसमें हम जो ज्ञान चाहें वो मिल जाये या उसे प्राप्त करने की व्यवस्था हो, हम जो करना चाहें वो कर सकें, हम जो भोगना चाहें वो भोग सकें और हम जब विश्राम करना चाहें तो वो कर सकें, इसप्रकार दुख का कोई कारण मुझे दिखाई नहीं पड़ता। यदि किसी को दिखाई देता हो तो कृपया मुझे भी उससे अवगत करायें, आपका यहां सदैव ही स्वागत रहेगा। तो कह सकते हैं कि जीवन में पूर्ण सुख की अवस्था आसानी से संभव है। और मैंने ऐसी व्यवस्था खोज निकाली है, जिसमें ये सब आसानी से संभव हो जायेगा।

प्रश्न 27:– अरविन्दो दर्शन के अनुसार जीवन का उददेश्य है देवत्व की अभिव्यक्ति। इस बारे में आपकी क्या समझ है?

उत्तरः– इसका उत्तर तो आप भी बड़ी आसानी से निकाल सकते हैं। बस आपको ये पूछना है कि मान लिया कि हमने देवत्व को प्राप्त कर लिया तो अब आगे क्या होगा? क्योंकि उददेश्य का अर्थ होता है कि बात वहां जाकर समाप्त हो जाती है। वहां से आगे नहीं जाती। वहां पर फिर हम ये नहीं पूछ सकते कि अब आगे क्या। उदाहरण के लिए, जैसे किसी छात्र से हम पूछे कि शिक्षा प्राप्त करने का क्या उददेश्य है तो वो कहेगा कि एक अच्छा सा रोजगार पाने के लिए। तो ये अंतिम उददेश्य नहीं हुआ शिक्षा का

क्योंकि आप छात्र से फिर पूछ लोगे कि अच्छा सा रोजगार पाकर क्या करोगे? तो छात्र आपको कहेगा कि उससे मुझे सम्मान वाला जीवन जीने को मिलेगा। अब यहां भी बात समाप्त नहीं होती। आप उससे फिर पूछ लोगे कि सम्मान वाला जीवन पाकर क्या मिलेगा? तो छात्र आपको कहेगा कि ऐसा जीवन पाकर मैं परिवार सहित सुख का अनुभव करूंगा, संतुष्टि को प्राप्त करूंगा। तो अब यहां आकर बात समाप्त हो जाती है क्योंकि अब यहां हम नहीं पूछ सकते कि सुख या संतुष्टि पाकर क्या करोगे। अब ये प्रश्न नहीं बनता, यहां बात आकर समाप्त हो जाती है। अब यदि आप उससे पूछने का प्रयत्न करोगे तो वो अधिक से अधिक ये ही कहेगा कि मैं ऐसा जीवन जीना चाहता हूं या मेरी ऐसी ईच्छा है या मुझे अच्छा लगेगा आदि और इन सबका अर्थ भी यहीं होगा कि सुखी रहने की हमारी ईच्छा हमारे मूल में है। तो कोई बात ईच्छा से प्रारम्भ होती है और ईच्छापूर्ति पर जाकर समाप्त हो जाती है। इसी लिए हम कह सकते हैं कि जीवन का उददेश्य देवत्व को प्राप्त करना नहीं हो सकता बल्कि जीवन का उददेश्य सुख प्राप्त करना ही होगा। क्योंकि कोई भी ईच्छा का अंत ईच्छा की पूर्ति पर ही हो सकता है उसके पहले नहीं। देवत्व से कुछ लाभ हमें होता होगा ना? कोई सुख देवत्व होने से हमें मिलेगा जैसेकि एक अच्छा रोजगार मिलने से हमें मिलता है या कोई स्वादिष्ट भोजन करने से हमें मिलता है यानिकि सुख। तो हम समझ सकते हैं कि हर प्रारम्भ, सुख पर ही जाकर अंतिम हो जा रहा है। इसलिए जीवन का उददेश्य सुख प्राप्त करना ही होगा और कुछ नहीं। बाकि सब बीच के पड़ाव हो सकते हैं या साधन हो सकते हैं सुख को पाने के लिए नाकि अंतिम उददेश्य। तो सुख पर ही बात जाकर समाप्त होगी और कहीं नहीं।

प्रश्न 28:– जीवन में ऐसा भी कुछ है जोकि तर्क के द्वारा व्याख्यायित नहीं हो सकता? क्या सबकुछ तर्क के द्वारा समझाया जा सकता है? मनुष्य के जीवन में श्रद्धा का क्या स्थान है?

उत्तरः– जी हां सबकुछ को समझा और समझाया जा सकता है, तर्क

के द्वारा। लेकिन इस बात को समझने से पहले हमें तर्क क्या है और इसकी उपयोगित क्या है इसे समझना होगा। अभी लोग क्या कहते हैं तर्क के बारे में? वो कहते है कि क्या यदि हम हमारा अनुभव किसी को कोई तर्क देकर समझांये तो क्या उसको वो ही अनुभव होगा जोकि हमको हुआ? अब वो ये प्रश्न ही गलत कर रहे हैं। तर्क किसी भी अनुभव को समझाने के लिए होता है नाकि वैसा ही अनुभव कराने के लिए, ये बात हमें समझ लेनी चाहिए। जैसे पानी से प्यास बुझने का अनुभव होता है नाकि कोई मखमल का अनुभव। उसी प्रकार से प्रत्येक साधन का अपना अपना महत्व और उसका अपना परिणाम होता है। उसी प्रकार तर्क एक ऐसा साधन है, जोकि हमें विभन्न प्रकार की समझ प्रदान करता है। चाहे हमने उसका अनुभव नहीं भी किया हो तो भी। बस ये ही तर्क का परिणाम है। इससे अलग परिणाम की अपेक्षा करना, ये ही दर्शाता है कि अभी हमें तर्क के बारे में समझ नहीं है, कि ये क्या साधन है और हमारे जीवन में इसका क्या महत्व है। तर्क कोई अनुभव कराने का साधन नहीं होता। इसे ऐसे समझें कि मान लो कि जीवन के कुछ अनुभव आपके पास हैं और आपको कुछ और समझने की आवश्यकता है। तो आप अपने पास के अनुभवों से किसी ऐसी वस्तु या बात को समझना चाहते हैं, जिसका आपको कोई भी अनुभव नहीं है। आप अपने किये हुए अनुभवों के आधार से एक तर्क प्रस्तुत करते हैं, जिससे आपको उस बारे में बहुत सारी बाते समझ आ जाती हैं। लेकिन ऐसा नहीं हैं कि इससे आपकों उस वस्तु आदि का कोई अनुभव हो जायेगा। अनुभव तो तभी होगा जबकि आप उस वस्तु आदि के सम्पर्क में आयेंगे। परंतु ये तर्क वाली समझ का अपना एक उपयोग है हमारे जीवन में। और जिन अनुभवों को हमने लिया भी है, तो जबतक उन अनुभवों को एक साथ नहीं रखते तबतक हम कई सारी बातों को नहीं समझ सकते। तो यहां भी तर्क हमें कुछ ऐसा समझने में सहायता करता है जोकि हम केवल अनुभवों के आधार से नहीं समझ सकते थे। तो तर्क हमें कुछ भी समझने में सहायता करता है और यहीं तर्क का उददेश्य है। तर्क हमें सही और गलत का निर्णय भी कराता है। क्या करें क्या ना करें ये भी बताता है, क्या खायें क्या ना खायें ये भी बताता है आदि। इस प्रकार से हम तर्क का महत्व समझ सकते हैं अपने जीवन में।

ये जो मैं आपकों सब समझा रहा हूं ये सब भी मैं तर्क की सहायता से ही समझा पा रहा हूं, और आप भी समझ रहे हैं, तो वो भी तर्क की सहायता से ही समझ रहे हैं। तर्क की सहायता से कुछ भी समझा जा सकता है चाहे वो आत्मा आदि की बात ही क्यों ना हो। चाहे वो इंद्रियातीत की बात ही क्यों ना हो। होने और ना होने दोनों को तर्क की सहायता से समझा जा सकता है। बस तर्क करना आना चाहिए। ये भी एक कला ही है।

प्रश्न 29:– संस्कारों के बारे में आप क्या समझते हो? खराब संस्कारों को कैसे सही करेंगे इस नयी व्यवस्था में?

उत्तरः– संस्कार का अर्थ होता है– सोच समझकर दिया गया कोई आकार। अर्थात किसी को उपयोगी बनाना। आपने आर्युवेद में सुना होगा कि औषधियों का संस्कार किया जाता है। क्योंकि प्रकृति में बहुत सारी औषधियां इस रूप में नहीं पायी जातीं, कि उन्हें सीधे ही उपयोग में लाया जा सके। तो हम अपने उददेश्यों की पूर्ति के लिए उनका शोधन करना होता है, उनमें कई ऐसे तत्व मिले रहते हैं कि यदि उन्हें सीधे ऐसे ही उपयोग में लिया जाये तो वे या तो लाभ नहीं करेंगी या तो हानि करेंगी। इसके लिए उन औषधियों में से उन हानिकारक तत्वों को निकालने की प्रक्रिया को संस्कार के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जन्म के समय उनके पास कोई सूचना नहीं

होती, इस संसार के बारे में, इस समाज के बारे में। यदि वो बिना इन सूचनाओं के बिना ही बड़ा हो जायेगा तो इससे उसके और समाज के बीच तालमेल नहीं बैठेगा। जिसके कारण उसको भी और समाज को भी बहुत सारी परेशानियों का सामना करना होगा। बहुत सारे दुख उत्पन्न हो जायेंगे समाज में। उदाहरण के लिए यदि उसे सड़क पर चलने के नियमों के बारे में सूचित या शिक्षित ना किया जाये तो इससे होगा ये कि जब वो सड़क पर चलेगा तो वो किसी नियम का पालन नहीं करेगा। इसके कारण हर बार बहुत सारी दुर्घटनाएं होती रहेंगी जिनमें समाज को बहुत दुख उत्पन्न होता रहेगा। तो मनुष्य को इन्हीं सब उपयोगी सूचनाओं को देना या शिक्षित करना ही संस्कारित करना कहलाता है। या ये कहा जायेगा कि समाज उसका संस्कार कर रहा है या उसका शोधन कर रहा है। अर्थात उसे सभ्य बना

रहा है, उसे समाज में रहने लायक बना रहा है, उसे उपयोगी बना रहा है। इससे उसका और पूरे समाज का जीवन सुखी रहेगा। बस ये ही संस्कार है। ना इससे अधिक और ना इससे कम। संस्कार का अर्थ उपयोगी बनाना होता है। और उपयोगी बनाने का अर्थ होता है कि उसके उपयोग से जीवन में सुख होता है। इसका अर्थ ये नहीं होता कि कोई बिगड़ा हुआ पैदा हुआ है और उसे अब सुधारना है। इससे आप समझ सकते हैं कि पिछले जीवन के संस्कार का इस जीवन से कोई लेना देना नहीं होता है। और ना ही इस जीवन के संस्कारों का लेना देना अगले जीवन में होगा। इस जीवन के संस्कारों का लेना देना इसी जीवन से होता है। क्योंकि प्राकृतिक रूप से हमें अपना पिछला जीवन याद भी नहीं होता और ये जीवन भी याद नहीं रहेगा अगले जीवन में। इस जीवन में भी यदि आप किसी दूसरे देश में जाते हैं तो आपको वहां के नियम या कहें तो वहां के संस्कार सीखने होंगे नहीं तो आप वहां सुख से नहीं जी पायेंगे। आप भी दुखी रहेंगे और वहां का समाज भी दुखी होगा। और दुख तो कोई नहीं चाहता है। इसीलिए सभी को संस्कारित किया जाता है ताकि सभी लोग सुख से जी सकें। और बहुत अच्छा हो कि पूरे संसार में एक जैसे ही नीति नियम या कहें कि एक जैसे ही संस्कार हों जिससे कि उन्हें बार बार ना सीखना पड़े। इसी लिए मैं कह रहा हूं कि पूरी शिक्षा समानरूप से ही हो पूरे संसार में। इससे बहुत सारी समस्याएं उत्पन्न ही नहीं होंगी जोकि अभी निरंतर उत्पन्न हो रही हैं। एक कुछ कहता है और दूसरा कुछ और ही समझता है। और फिर समस्याओं के एक ऐसा दौर प्रारम्भ होता है जिसका कोई अंत नहीं दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि जैसे मनुष्य जाति इसका दुख भोगने के लिए अभिशप्त हो। और कुछ लोग हैं कि नासमझी के कारण इसे समाज की विभिन्नता समझकर पोषित करते रहते हैं और दुख भी उठाते रहते हैं। और फिर कहते रहते हैं कि सुख दुख जीवन के अभिन्न अंग हैं। दोनों ही जीवन में रहेंगे, इसका कुछ नहीं कर सकते। जबकि ये सत्य नहीं हैं। इसमें केवल अज्ञान ही कारण है।

खराब संस्कार का अर्थ केवल इतना होता है कि किसी को कोई गलत सूचना है किसी बारे में। बस जैसे ही ये पता चले कि ये सूचना या ज्ञान

गलत है तो उसे सही से परिवर्तित कर लें, यही संस्कार को सही करना होता है। और कुछ नहीं। आशा है कि आप मेरे कहने का अर्थ समझ चुके होंगे।

•••

अध्याय – 15

शारांश

इस पूरी पुस्तक का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुंच सकते हैं कि अब समाधान तो हमारे पास है इस पुस्तक के रूप में। इस पुस्तक में बतायी गयी व्यवस्था के द्वारा हम सभी एक अधिकतम सुन्दर, स्वस्थ और सुखी जीवन जी सकते हैं, वो भी बिना किसी दुख के। किसी भी प्रकार के दुख उस व्यवस्था में किसी को भी उत्पन्न ही नहीं होंगे और सभी प्रकार सुख सदैव हमें प्राप्त होते रहेंगे वो भी हमारी ईच्छानुसार। अर्थात हम अपनी ईच्छानुसार कोई भी ज्ञान पा सकेंगे। कोई भी कार्य करते रह सकेंगे। और कोई भी भोग करते रह सकेंगे। यानिकि हम कोई भी ज्ञान, कर्म और भोग को प्राप्त कर सकेंगे। और ये ही तीन प्रकार हैं कोई भी सुख को प्राप्त करने के मनुष्य जीवन में। सभी प्रकार के सुख इन तीनों प्रकार के द्वारा हम प्राप्त कर सकते हैं।

इस समाधान के बाद अगला प्रश्न यही होगा कि क्या हम ये समाधान चाहते हैं अपने और दूसरों के जीवन में? यदि नहीं चाहते तब तो बात ही समाप्त हो जाती है। अब ये लोग ये नहीं कह पायेंगे कि भाई हम तो चाहते हैं कि सबका जीवन सुखी हो लेकिन जब समाधान ही नहीं है तो क्या कर सकते हैं। अब लोगों को स्पष्टरूप से कहना पड़ेगा कि वे किस पक्ष में हैं। कि वे सबका सुख चाहते हैं कि नहीं। और यदि चाहते हैं तो हां बोलना होगा और यदि नहीं चाहते, तो स्पष्टता से ना बोलना होगा। अब यदि हां बोलने वालों का बहुमत होगा तो इस व्यवस्था को संसार में लाने का कार्य किया जायेगा। और यदि ना बोलने वालों का बहुमत हुआ तो फिर इस व्यवस्था को लाने का कार्य नहीं किया जायेगा। तो अभी तो इस व्यवस्था को विभिन्न माध्यमों के द्वारा सभी लोगों तक पहुंचा देना ही हमारा पहला लक्ष्य है।

दूसरा लक्ष्य तब प्रारम्भ होगा जब इसे हां कहने वालों का बहुमत होगा। तो देखते हैं कि किसका बहुमत आता है। मेरी समझ के अनुसार हां में बहुमत शीध्र ही आ जायेगा। और उसके बाद इसे लाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की जायेगी। इसके लाने की प्रक्रिया क्या होगी, उस पर भी मैं पुस्तक लिखूंगा ताकि आप सभी लोग ये जान सकें कि कैसे हम इस वर्तमान व्यवस्था से नयी व्यवस्था में स्थानान्तरित होंगे। ये मैं अभी बता देना चाहता हूं कि वर्तमान व्यवस्था से नयी व्यवस्था में परिवर्तित होने में किसी भी व्यक्ति को कोई समस्या नहीं होगी। ना कोई किसी से लड़ाई होगी, ना किसी के साथ कोई जबरदस्ती होगी। ये व्यवस्था परिवर्तन

केवल उन लोगों पर ही होगा जोकि इस नयी व्यवस्था में जीना चाहते हैं। और जो लोग पुरानी व्यवस्था में या किसी और व्यवस्था में जीना चाहते हैं, वो लोग मिलकर या अलग अलग अपनी कोई भी व्यवस्था बनाकर जीते रह सकते हैं। बस एक दूसरे को एक दूसरे के द्वारा कोई समस्या उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। अर्थात ये व्यवस्था सभी को पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करेगी। इस व्यवस्था में जीने वालों को ऐसा अनुभव होगा सदैव ही कि वो परमस्वतंत्र हैं। कभी भी किसी प्रकार की दासता आदि अनुभव में नहीं आयेगी।

सम्पर्क सूत्र– 9013383424 ये वाटसअप नम्बर भी है।

website- www.universallifemanagement.myfreesites.net

youtube- universallifemanagement

Facebook page-
https://www.facebook.com/groups/2320821141355985/

•••

सम्पूर्ण समाधान

नयी सामाजिक राजनैतिक अर्थ व्यवस्था

एक नयी व्यवस्था जिसके आ जाने पर कोई भी समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। जैसे आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, गरीबी, शोषण, दमन, उत्पीड़न, भविष्य की असुरक्षा, अराजकता, भ्रष्टाचार, अशांति, युद्ध, प्रतिद्वंदिता, भय, ईर्ष्या, दासता, बंधन, अपहरण, बलात्कार, युद्ध आदि।

1. सरकार की ओर से सभी को ईच्छानुसार शिक्षा एवं प्रशिक्षण, रोजगार, सुख-सुविधाएं एवं संरक्षण।

2. बिना धन के भी सभी वस्तुएं या सेवाएं प्राप्त करने का अधिकार।

3. व्यवस्था का नियंत्रण सदैव ही जनता के पास रहेगा।

4. सभी का जीवन उच्च गुणवत्ता वाला होगा।

लेखक विज्ञान में विश्वविद्यालय करने के बाद संयासी हो गये। उन्होंने विभिन्न प्रकार की खोजें की हैं। उन खोजों के आधार से इस व्यवस्था को लिखा है। उनकी आने वाली पुस्तकें हैं- 'जीवनदर्शन', 'आत्मज्ञान और उसके बाद'

ISBN #: 978-0-359-24671-7